धर्म साधना के सूत्र

प्रवचन-क्रम

1. धर्म परम विज्ञान है..2
2. ध्यान में मिटने का भय...17
3. परमात्मा की खोज...32
4. तीन सूत्रः बहना, मिटना, सर्व-स्वीकार...43
5. मनुष्य के अज्ञान का आधार...59
6. अमृत की उपलब्धि...61
7. प्राणों की प्यास...79
8. रहस्य का द्वार...97
9. जीवन की वीणा का संगीत...112 10...प्रेम ही परमात्मा है 128

धर्म साधना के सूत्र
पहला प्रवचन

धर्म परम विज्ञान है

प्रश्नः मैंने धर्मयुग में शायद, देर हो गई, एक आर्टिकल आपका पढ़ा था। उसमें आपने कहा कि आवागमन को न मानें, ऐसा मुझे लगा; कि कर्म और प्रारब्ध है, इसमें हमें नहीं पड़ना चाहिए। जब कि हिंदू धर्म में जो आवागमन है वह एक बेसिक बात है और जो आवागमन को नहीं मानता, हम समझें कि उसको हिंदू धर्म में फेथ नहीं है। इसके बारे में आपका क्या विचार है?

दो बातें हैं। एक तो आवागमन गलत है, ऐसा मैंने नहीं कहा है। आवागमन को मानना गलत है, ऐसा मैंने कहा है। और मानना सब भांति का गलत है। धर्म का संबंध मानने से है ही नहीं। धर्म का संबंध जानने से है। और जो मानता है, वह जानता नहीं है, इसीलिए मानना पड़ता है। और जो जानता है, उसे मानने की कोई जरूरत नहीं है। जानता ही है, तो मानने की कोई जरूरत नहीं है।
धर्म का मूल संबंध ज्ञान से है, विश्वास से नहीं।
तो जो आवागमन को जानता है, जो ऐसा अनुभव करता है, जिसकी ऐसी प्रतीति है, जिसका खुद का ऐसा अनुभव है कि आवागमन है, इस आदमी की जिंदगी में तो बहुत फायदे होंगे। लेकिन जो ऐसा सिर्फ मानता है कि आवागमन है, इसकी जिंदगी में बहुत नुकसान पहुंचेंगे। सबसे बड़ा नुकसान तो यह पहुंचेगा कि जिस बात को हम बिना जाने मान लेते हैं, उसे जानने की खोज बंद हो जाती है। खोजते हम उसी को हैं जिसे हम मान ही नहीं लेते। इसलिए विज्ञान खोज बन जाता है। और विश्वास खोज के द्वार को बंद कर देता है।
मेरे लिए धर्म भी परम विज्ञान है, सुप्रीम साइंस है। इसलिए मैं नहीं कहूंगा कि धर्म का कोई भी आधार फेथ पर है। कोई आधार धर्म का फेथ पर नहीं है। धर्म का सब आधार नॉलेज पर है।

प्रश्नः यह भी साइंस है?

साइंस, सुप्रीम साइंस! लेकिन साधारणतः धर्म के संबंध में समझा जाता
है कि वह विश्वास है, फेथ है। वह गलत है समझना, मेरी दृष्टि में। मेरी दृष्टि में, धर्म भी एक और तरह का ज्ञान है। और धर्म के जितने भी सिद्धांत हैं, वे किसी के ज्ञान से निःसृत हुए हैं, किसी के विश्वास से नहीं। इसलिए मेरा निरंतर जोर है कि मानें मत, जानने की कोशिश करें; और जिस दिन जान लें उसी दिन मानें। जान कर जो मानना आता है, उसका नाम तो श्रद्धा है; और बिना जाने जो मानना आता है, उसका नाम विश्वास है। श्रद्धा तो ज्ञान की अंतिम स्थिति है और विश्वास अज्ञान की स्थिति है। और धर्म अज्ञान नहीं सिखाता। इसलिए मैंने जो कहा है कि आवागमन को मत मानें, पुनर्जन्म को मत मानें, इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि आवागमन नहीं है। इसका यह मतलब भी नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि पुनर्जन्म नहीं है। मैं यही कह रहा हूं कि मान लिया अगर तो खोज बंद हो जाती है। जानने की कोशिश करें। और जानना तो तभी होता है जब सम्यक संदेह, राइट डाउट मौजूद हो। उलटा भी मान लें तो भी संदेह नहीं रह जाता। अगर मैं यह भी मान लूं कि पुनर्जन्म नहीं है, तो भी खोज बंद हो जाती है। अगर मैं यह भी मान लूं कि पुनर्जन्म है, तो भी खोज बंद हो जाती है। खोज तो सस्पेंशन में है। मुझे न तो पता है कि है, न मुझे पता है कि नहीं है। तो मैं खोजने निकलता हूं कि क्या है, उसे मैं जान लूं। धार्मिक आदमी को मैं मानता हूं कि वह गहरी से गहरी इंक्वायरी है। उससे गहरी कोई और खोज नहीं है। लेकिन जिनको हम धार्मिक कहते हैं उनको मैं धार्मिक नहीं कहता। उनकी तो सब इंक्वायरी बंद है। वे तो अंधविश्वासी हैं।
सुपरस्टीशन रिलीजन नहीं है। अंधविश्वास धर्म नहीं है।

प्रश्नः तो इसका मतलब यह हुआ कि यह जो कहा गया है कि महाजनः येन गतः स पंथा, वह गलत था। इसके बारे में क्या है आपका कहना?

पहली तो बात यह है--कौन महाजन है? यह निर्णय करना बहुत मुश्किल है। और
जब भी आप निर्णय करेंगे कि यह महाजन है, तो यह निर्णय आपका है; और आप महाजन के ऊपर हो गए, नीचे नहीं रहे। अगर आप कहते हैं राम महाजन हैं, तो यह निर्णय आपका है, यह आपका डिसीजन है। एक दूसरा आदमी कहता है कि राम महाजन नहीं हैं, बुद्ध महाजन हैं। यह निर्णय उसका है। जब भी आप कोई निर्णय लेते हैं, तो आप ही परम निर्णायक होते हैं, कोई महाजन निर्णायक नहीं होता, क्योंकि महाजन का निर्णय भी आप ही लेते हैं कि कौन महाजन है।
तो मेरा कहना है कि हमेशा आदमी अपने विवेक के पीछे चलता है, किसी महाजन के पीछे चलता नहीं। चल सकता नहीं। क्योंकि महाजन का निर्णय भी करना हो तो भी अपने ही विवेक से करना पड़ता है। दुनिया में हजार महाजन हैं, कैसे निर्णय करिएगा कि कौन महाजन है? जब भी निर्णय करिएगा तो जो अल्टीमेट डिसीसिव फैक्टर है वह आप हैं। तो जब आप ही अल्टीमेट डिसीसिव फैक्टर हैं तो मैं कहता हूं, सदा अपने पीछे चलिए। अगर आप किसी महाजन के पीछे चल रहे हैं, तो यह भी अपने ही पीछे चल रहे हैं। अगर आप कहते हैं कि नानक के पीछे चलूंगा, तो भी यह आप अपने ही निर्णय के पीछे चल रहे हैं, नानक के पीछे नहीं चल रहे। आदमी के पास कोई उपाय ही नहीं है कि अपने सिवाय किसी और के पीछे चल सके। यह इंपासिबिलिटी है।
मेरी आप बात समझे?
मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि चूंकि हर निर्णय आपका ही निर्णय होगा और किसी महाजन के ऊपर लिखा हुआ नहीं है भगवान की तरफ से कि वह महाजन है... । क्योंकि जीसस ईसाइयों को महाजन मालूम पड़ते हैं और यहूदियों को सूली पर लटकाने योग्य मालूम पड़ते हैं। कृष्ण हिंदुओं को भगवान मालूम पड़ते हैं, जैनों को नरक भेजने योग्य मालूम पड़ते हैं।
महाजन कौन है? महाजन का निर्णय भी आपका निर्णय है। सच्चा शास्त्र कौन है? यह भी निर्णय आपका निर्णय है। जब सभी निर्णय आपके हैं, तो मैं कहता हूं, महाजन आप ही हैं अंततः। अंततः जो महाजन है, वह आपकी ही आत्मा है, आप उसकी ही आवाज का पीछा करें। फिर वह जो भी निर्णय दे! वह अगर यह कहे कि नानक के पीछे जाओ, तो नानक के पीछे जाएं।
लेकिन मेरा जोर इस बात पर है कि आप जा रहे हैं सदा अपने ही पीछे। इस धोखे में मत पड़ना कि आप किसी और के पीछे जा सकते हैं। इसका कोई उपाय ही नहीं है, यह असंभावना है। हर आदमी अपने ही पीछे जाता है, चाहे गड्ढे में जाए और चाहे मोक्ष में जाए, चाहे नरक में जाए और चाहे स्वर्ग में जाए। यानी मैं यह कह रहा हूं कि यह साइकोलाजिकली असंभव है कि कोई आदमी किसी दूसरे के पीछे चला जाए। कैसे जाएगा? अगर आप मेरी भी बात मानते हैं, तो भी यह आप अपनी ही बात मान रहे हैं, मेरी बात नहीं मान रहे हैं। अगर मेरी बात इनकार करते हैं, तो भी आप अपनी ही तरफ से यह कर रहे हैं।
व्यक्ति की चेतना ही अंतिम निर्णायक तत्व है, दि अल्टीमेट डिसीसिव फैक्टर। और इसलिए इसके ऊपर कोई फैक्टर नहीं है। अगर एक आदमी कहता है, मैं भगवान को मानता हूं। तो यह भी उसका निर्णय है। कल वह कह सकता है, मैं नहीं मानता हूं। तो भगवान कुछ बाधा नहीं डालते। अगर हम भगवान को भी मानते हैं, तो भी हम अपने को ही मानते हैं। इसके सिवाय उपाय नहीं है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि महाजन के पीछे जाएं। जा नहीं सकते। मैं इतना
ही कहता हूं, अपने विवेक के पीछे जाएं। उसके अतिरिक्त कोई रास्ता ही नहीं है।

प्रश्नः आपके खिलाफ कुछ डेमांस्ट्रेशंस हो रही हैं और कुछ पोस्टर भी लगे हैं, अमृतसर में भी लगे हैं। तो यह चार्ज है आपके खिलाफ कि आप वाममार्ग को फैलाते हैं, कम्युनिस्ट हैं, नास्तिक हैं। इसमें कोई चीज सत्य है? उनका जो इलजाम है, किस कदर कुछ सच है या नहीं है? और अगर गलत है तो क्या पोजीशन है? हम तो यह समझना चाहते हैं।

इसमें थोड़ी सच्चाइयां हैं, उनके इलजाम में थोड़ी सच्चाइयां हैं। लेकिन सच्चाइयों से ज्यादा झूठ है। और जिस झूठ में थोड़ा सच मिला होता है वह झूठ

पूरे झूठ से ज्यादा खतरनाक हो जाता है। आधा सत्य पूरे असत्य से भी ज्यादा खतरनाक होता है, क्योंकि आधे सत्य में सत्य होने का भ्रम पैदा होता है। तीन शब्द आपने कहे, नास्तिक... ।
अब मेरी दृष्टि आपको समझाऊं तो ख्याल में आए। मेरी दृष्टि यह है कि नास्तिकता आस्तिकता का पहला चरण है। कोई आदमी बिना नास्तिक हुए आस्तिक नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता। क्योंकि जिस आदमी ने कभी इनकार नहीं किया, उसके स्वीकार का कोई मतलब नहीं है। जिसने कभी नो नहीं कहा, उसके यस का कोई मतलब नहीं है। जिसने बिना सोचे, बिना खोजे, बिना समझे स्वीकृति भर दी, उसकी स्वीकृति इंपोटेंट होगी। लेकिन जिसने खोजा, पूछा, प्रश्न उठाया, संदेह किया, इनकार किया, और सब इनकार और सब खोज के बाद कहा कि है, उसके है का कोई मतलब है।
तो मैं नास्तिक को आस्तिक का दुश्मन नहीं मानता हूं, यह मेरी तकलीफ है। मैं नास्तिकता को आस्तिकता का पहला चरण मानता हूं। जरूरी नहीं है कि सभी नास्तिक आस्तिक हो जाएं, पहले चरण पर भी रुक सकते हैं, तब वे भूल में पड़ गए। लेकिन अगर नास्तिक अपनी नास्तिकता में बढ़ता ही चला जाए और पूछता ही चला जाए, तो आज नहीं कल वह आस्तिकता पर पहुंच जाएगा। आस्तिकता पर पहुंचे बिना कोई उपाय नहीं है। नास्तिकता प्रारंभ है धर्म का और आस्तिकता अंत है।
तो मुझे कोई नास्तिक कह सकता है। लेकिन मैं समझता हूं कि मुझसे ज्यादा आस्तिक आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। क्योंकि मैं अपनी आस्तिकता में नास्तिकता को भी समा लेता हूं। और जो आस्तिक कहता है कि नास्तिक हमारा दुश्मन है, वह पूरा आस्तिक नहीं है। क्योंकि दुनिया का एक हिस्सा तो वह अपने बाहर छोड़ देता है। अगर परमात्मा कहीं भी है तो परमात्मा को नास्तिक उतना ही स्वीकार है जितना आस्तिक। अन्यथा नास्तिक के होने की जगह न रह जाएगी। वह बचेगा कहां? वह रहेगा कैसे? वह होगा कैसे?
तो साधारणतः जैसा समझा जाता रहा है कि नास्तिक और आस्तिक दुश्मन हैं, ऐसा मैं नहीं समझता। मैं तो समझता हूं कि नास्तिकता से आदमी शुरू करता है-- प्रश्न, जिज्ञासा, संदेह। और आस्तिकता पर उपलब्धि करता है--जब सब प्रश्न गिर जाते हैं, सब संदेह गिर जाते हैं, सब जिज्ञासाएं गिर जाती हैं, तब उसके मन से हां का भाव उठता है कि परमात्मा है। इसलिए मुझे कोई नास्तिक कह सकता है, क्योंकि मैं कहता हूं कि नास्तिकता सीखनी पड़ेगी अगर आस्तिक होना है, नहीं तो आप बोगस आस्तिक होंगे जिसमें कुछ नहीं होगा।
दूसरा आपने कहा कि वे कहते हैं मैं वाममार्गी हूं।
इसमें भी थोड़ी सच्चाई है। सच्चाई इसलिए है कि मैं पूरे जीवन को स्वीकार करता हूं, दि टोटल लाइफ। मैं उसमें कुछ भी इनकार नहीं करता। मैं कहता हूं, परमात्मा ने जो भी दिया है, जो उसे इनकार करता है वह दुश्मन है। जो भी दिया है उसका दुरुपयोग और सदुपयोग हो सकता है, लेकिन जो भी दिया है उसकी सार्थकता है। इस जीवन में जो भी है उस सबकी सार्थकता है।
क्रोध है, काम है, वासना है, मेरा मानना है उसकी भी जीवन में सार्थकता है, अन्यथा वह होता नहीं। जीवन में सेक्स है, उसकी सार्थकता है। और सेक्स की जो एनर्जी है वही अगर वासना से मुक्त हो जाए तो ब्रह्मचर्य बनती है। ब्रह्मचर्य और वासना में एक ही शक्ति काम करती है, दो शक्तियां नहीं। अगर मनुष्य की कामवासना दूसरे के प्रति बहती रहे तो सेक्स बन जाता है और यही कामवासना की पूरी ऊर्जा अपनी तरफ बहने लगे तो ब्रह्मचर्य बन जाता है। अगर पदार्थ की तरफ बहती रहे तो सेक्स हो जाता है और अगर परमात्मा की तरफ बहने लगे तो ब्रह्मचर्य हो जाता है।
वाममार्गी इसलिए वे मुझे कह सकते हैं, क्योंकि वाममार्ग की एक आधारशिला में यह बात है कि जीवन में जहर का भी ठीक उपयोग किया जाए तो वह अमृत हो सकता है। जीवन में बुरा कुछ भी नहीं है, वाममार्ग कहता है। और सभी चीजें अच्छी तरफ उन्मुख की जा सकती हैं। अगर कुशलता से काम लिया जाए तो कांटे भी फूल बन सकते हैं और अकुशलता से काम लिया जाए तो फूल भी कांटे सिद्ध हो सकते हैं। जिंदगी कुशलता है। इसलिए वाममार्ग कहता है, हम किसी चीज को इनकार नहीं करते, सभी चीज को परमात्मा की तरफ उन्मुख करते हैं।

जिसको हमने बुरा से बुरा कहा है उसको भी हम अच्छे की तरफ रूपांतरित करते हैं।
वाममार्ग की इस बात से मेरी सहमति है। और मेरा मानना है कि वाममार्ग
ही ठीक बात कह रहा है इस संबंध में। जिनको हम विरोधी तत्व मानते हैं--जैसे हम कहते हैं क्षमा। वाममार्गी कहता है कि क्रोध का ही रूपांतरण क्षमा है। जो आदमी क्रोध नहीं कर सकता वह आदमी क्षमा भी नहीं कर सकता। असल में क्रोध ही ट्रांसफार्म होकर क्षमा बनता है। इसलिए वाममार्ग कहेगा, हमारा क्रोध से कोई विरोध नहीं। हम नहीं कहते हैं, क्रोध छोड़ो। हम कहते हैं, क्रोध को बदलो।
यह मेरा भी कहना है। मैं भी कहता हूं, जिंदगी में कुछ भी छोड़ने योग्य नहीं, सब बदलने योग्य है। जिंदगी में कोई चीज निगेट करने योग्य नहीं है कि उसको काट डालो, जिंदगी में सब चीजें ट्रांसफार्म करने योग्य हैं कि उनको ऊंचा उठाओ। मिट्टी-कीचड़ ही ऊंची उठ कर कमल बन जाती है। जीवन में जो भी बुरा है वह सब शुभ हो सकता है।
इसलिए कोई मुझसे कह सकता है कि मैं वाममार्गी हूं। लेकिन वाममार्ग से मेरा कोई लेना-देना नहीं। मेरा किसी मार्ग से कोई लेना-देना नहीं है। मेरे लिए तो जीवन पूरा का पूरा स्वीकृत है। टोटल एक्सेप्टबिलिटी को मैं धर्म मानता हूं। निषेध को, निगेशन को, इनकार को मैं नासमझी मानता हूं।
और हमारे पास कोई उपाय भी नहीं है। अगर कोई आदमी कहता हो कि हम किसी आदमी के सेक्स को बिल्कुल काट डालेंगे, तो वह गलत बातें कह रहा है-- अवैज्ञानिक, अमनोवैज्ञानिक। न तो साइकोलॉजी उससे राजी होगी, न साइंस उससे राजी होगी, न बायोलॉजी उससे राजी होगी। सेक्स काटा नहीं जा सकता, सिर्फ बदला जा सकता है। इस जगत में कोई चीज नष्ट नहीं की जा सकती, यह विज्ञान का आधारभूत सिद्धांत है। यह धर्म का भी आधारभूत सिद्धांत है। इस जगत में सिर्फ चीजें बदली जा सकती हैं, नष्ट नहीं की जा सकतीं। अब हमारे पास इतनी ताकत है, लेकिन रेत के एक छोटे से कण को भी हम नष्ट नहीं कर सकते। हां, ज्यादा से ज्यादा हम दूसरी चीज में बदल सकते हैं। इस जगत में कुछ भी नष्ट नहीं होता, सिर्फ बदलता है।
तो मनुष्य के भीतर जो कुछ है उसके संबंध में हम दो रुख ले सकते हैं। एक
तो प्यूरिटन का रुख है; जिसको हम कठोर नीतिवादी कहते हैं, उसका रुख है। वह कहता है, ये-ये काट डालो, ये-ये गलत है। तो वह कहता है, सेक्स को काट डालो, क्रोध को काट डालो, बुराई को अलग कर डालो।

मैं मानता हूं वह अवैज्ञानिक बातें कह रहा है। बुराई को बदलो, काटो मत; कट सकती नहीं, मिट सकती नहीं। सेक्स को रूपांतरित करो; क्रोध को क्षमा बनाओ। यह हो सकता है। यही हो सकता है! इसलिए मेरी सहमति है इतनी बात से। और मैं मानता हूं कि इतनी बात से कोई भी आदमी जो थोड़ा सोच-विचार करेगा वह सहमत होगा। जिसके पास थोड़ी भी वैज्ञानिक बुद्धि है वह यह कहेगा कि जिंदगी में कोई भी ऊर्जा, कोई एनर्जी नष्ट नहीं होती, सिर्फ ट्रांसफार्मेशंस होते हैं।
हम बिजली से पंखा भी चला सकते हैं। हम बिजली से रेडियो भी चला सकते हैं। हम बिजली से आदमी को मार भी सकते हैं। हम बिजली से मरते हुए आदमी को बचा भी सकते हैं। बिजली न तो अच्छी होती, न बुरी होती। बिजली तटस्थ है, वह न्यूट्रल है। हम क्या उपयोग करते हैं, इस पर सब निर्भर करता है।
मनुष्य के पास जो भी शक्तियां हैं, हम उनका क्या उपयोग करते हैं, इस पर
सब कुछ निर्भर करता है। ऐसा क्रोध भी हो सकता है जो धार्मिक हो। और ऐसी शांति भी हो सकती है जो अधार्मिक हो जाए। जो मैं कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि ऐसे क्षण हो सकते हैं जिंदगी में जब कि तलवार धार्मिक हो जाए। और ऐसे क्षण हो सकते हैं जब कि अहिंसा अधार्मिक हो जाए।
तो मैं नहीं कहूंगा कि हिंसा को काट डालो। मैं कहूंगा, हिंसा को परमात्मा के लिए समर्पित कर दो। मैं जो कहूंगा वह यह कहूंगा कि जो भी हमारे पास है वह ईश्वर-उन्मुख हो जाए, बस। हर स्थिति में भेद पड़ जाएगा। इसलिए कोई रिजिड कानून मानने के मैं पक्ष में नहीं हूं। और जो लोग भी सख्त

कानून मानते हैं, वे जिंदगी को नुकसान पहुंचाते हैं। क्योंकि वह परिस्थितियों का उनको कोई ख्याल नहीं रह जाता।
एक बार इस मुल्क ने तय कर लिया कि हम अहिंसा को ऊंचा मानते हैं, तो फिर गुलामी आ जाए तो भी अहिंसा को हम ढोए चले जाएंगे।

प्रश्नः इससे क्या अव्यवस्था नहीं फैलेगी, अगर हम किसी कानून को मानते नहीं हैं तो?

नहीं-नहीं, मैं यह नहीं कह रहा हूं। इसी से व्यवस्था आएगी जो मैं कह रहा हूं। अव्यवस्था फैलती है सख्त नियमों से। जैसे हमने यह तय कर लिया कि इस घर के बाहर हम कभी न जाएंगे, और कल आग लग गई, तब अव्यवस्था फैलेगी। लेकिन अगर हमने यह तय किया हो कि आग लगी हो तो हम बाहर जा सकते हैं, तब कोई अव्यवस्था नहीं फैलेगी। अव्यवस्था हमेशा सख्त और मरे हुए डिसिप्लिन पैदा करवाते हैं। जब जरूरत बदल जाती है और ये बदलते नहीं, जब कि स्थिति बदल जाती है और नियम बदलता नहीं, तब अव्यवस्था पैदा होती है। अव्यवस्था नियम और स्थिति के बीच डिसहार्मनी का नाम है। लेकिन अगर हमारा नियम भी लोचपूर्ण हो और स्थिति के साथ बदलता हो, तो अव्यवस्था कभी नहीं फैलती।
दुनिया में जो अनार्की है, वह अनार्की उन लोगों की वजह से है जो व्यवस्था के लिए दीवाने हैं। वे इतनी सख्त व्यवस्था करते हैं कि जिंदगी तो रोज बदल जाती है और उनकी व्यवस्था नहीं बदलती, तब जिंदगी उनकी व्यवस्था को तोड़ देती है। अगर व्यवस्था लोचपूर्ण हो, फ्लेक्सिबल हो, तो अव्यवस्था कभी नहीं फैलेगी।
जैसे मेरी मान्यता है कि जैसे कि बाप है, वह अपने बेटे को सिखा रहा है। अभी बेटा छोटा है; शक्तिशाली नहीं है, शक्तिहीन है; अभी बाप बेटे को अनुशासन देगा। लेकिन कल बेटा रोज बड़ा होता चला जाएगा। और अगर बाप यही व्यवहार जारी रखता है--जो उसने दो साल के बेटे के साथ रखा था, वही वह पच्चीस साल के बेटे के साथ जारी रखता है--तो अव्यवस्था फैलेगी। क्योंकि बेटा अब दो साल का नहीं है, पच्चीस साल का है, लेकिन नियम दो साल वाले बेटे का लागू किया जा रहा है। अब उपद्रव होगा। नियम बदलना चाहिए, बेटा पच्चीस साल का हो गया। और एक हालत ऐसी भी आएगी कि बाप कमजोर हो जाएगा और बेटा ताकतवर हो जाएगा। उसके लिए नियम बदलता जाना चाहिए प्रतिपल।
जीवन बदलाहट है, जीवन एक फ्लक्स है, उसमें सब चीजें बदल रही हैं। इसलिए हमें, हमारे नियम को इतना लोचपूर्ण होना चाहिए कि किसी भी दिन जीवन को नुकसान न पहुंचाए, जीवन के साथ बदलता चला जाए, तो अव्यवस्था कभी नहीं फैलती।
जब हमने अहिंसा की बात तय की थी, तब हम एक स्वतंत्र मुल्क थे। तब हम अहिंसा की बात कर सकते थे। समृद्ध मुल्क थे, हम अहिंसा की बात कर सकते थे। फिर हमला हुआ, तब भी हम अहिंसा की बात जारी रखे, तब मुश्किल हो गई। तब अव्यवस्था फैली, क्योंकि हिंसा की हमारी हिम्मत न रही। क्योंकि हमने कहा कि हिंसा तो कभी ठीक हो नहीं सकती। लेकिन हमारी हिंसा ठीक नहीं होगी तो दूसरे की हिंसा ठीक हुई जा रही है, वह हमारे ख्याल में नहीं आया। अगर मैंने तलवार नहीं उठाई है वक्त पर, तो दूसरा तो उठा ही रहा है। और मैं अब भी हिंसा के सामने ही झुक रहा हूं, अहिंसा का नाम ले रहा हूं।
जीवन जो है वह प्रवाह है। उसमें सब रोज बदल जाता है। और उसकी रोज बदलाहट के साथ बदलाहट की तैयारी होनी चाहिए। इसलिए मैं किसी रिजिड कानून और किसी सख्त नीति के पक्ष में नहीं हूं।
इसका यह मतलब नहीं है कि मैं अनीति के पक्ष में हूं। मेरा मानना है, सख्त नीति ही अनीति पैदा करवाती है। तरल नीति चाहिए, लिक्विड मारेलिटी चाहिए, जो जिंदगी के साथ बदलने को सदा तैयार हो। जब सब बदल जाए, तो नीति को भी बदलने की हिम्मत रखनी चाहिए।
अब तीसरी बात और रह गई।

प्रश्नः आपके मुतल्लक कुछ अन्याय न हो जाए हमसे, इसलिए यह जो आपने वाममार्ग का समझाया है, वह तो हम समझ गए। लेकिन अखबार में इतना लंबा नहीं

आना। जो उनकी स्थिति है, वह क्वेश्चन मैं डायरेक्ट आपको पुट कर देता हूं। वे यह कहते हैं, वाममार्ग से उनका मतलब यह है कि आप शराब वगैरह पीना और व्यभिचार जो है इसकी खुली इजाजत हो, ऐसा प्रचार। उनका मतलब वाममार्ग से ऐसा है। तो आपका क्या कहना है?

मैं समझा। आप सीधा सवाल कर रहे हैं, जिंदगी में कोई सवाल सीधा होता नहीं। बड़ी मुश्किल है। और अगर मैं सीधा जवाब दूंगा तो वह गलत ही होगा, कोई उपाय नहीं है, इसमें कोई उपाय नहीं है।
अब जैसे आप यह पूछ रहे हैं, आप यह पूछ रहे हैं कि वे कहते हैं कि मैं खुले व्यभिचार की छूट देता हूं।
न तो मैं देता हूं और न वाममार्ग देता है। बड़ी मजे की बात है। मैं तो देता ही नहीं हूं, वाममार्ग भी नहीं देता है। यह सवाल ही नहीं है। यह तो जो समझ ही नहीं सकते, मेरा तो मानना यह है कि व्यभिचार पैदा हो रहा है उनकी वजह से जो इतनी सख्त नैतिकता को थोपते हैं कि व्यभिचार के अलावा छुटकारे का रास्ता नहीं रह जाता।
आप जान कर हैरान होंगे कि रूस में वेश्याएं समाप्त हो गईं। सिर्फ एक वजह से समाप्त हो गईं, क्योंकि विवाह की जो सख्ती थी वह समाप्त कर दी गई। तो रूस में वेश्या नहीं रह गई। आज एक ही मुल्क है जमीन पर जहां वेश्या नहीं है। क्योंकि वेश्या का कोई मतलब नहीं रह गया। जहां हम सख्त विवाह थोपेंगे, वहां वेश्या पैदा होगी, वह बाइ-प्रोडक्ट है। जब हम पति और पत्नी को सख्ती से रोक देंगे एक-दूसरे के साथ, तो वेश्या पैदा हो जाएगी।
और यह बड़े मजे की बात है कि कोई सोचता होगा कि रूस में बहुत तलाक हो गए। तो रूस में सबसे कम तलाक है, पांच परसेंट तलाक है; अमेरिका में चालीस परसेंट तलाक है। और वेश्या विदा हो गई, क्योंकि विवाह की सख्ती को तरल कर दिया गया। ऐसा भी नहीं कि विवाह रोज टूट रहे हैं, ऐसा भी नहीं है।
जिंदगी के नियम बड़े उलटे हैं। जब हम किसी चीज को बहुत जोर से दबाते हैं तो उलटी प्रतिक्रिया भी पैदा होती है, रिएक्शन पैदा होता है।
मैं व्यभिचार के पक्ष में नहीं हूं। बल्कि मेरा मानना है कि जो तथाकथित नैतिकवादी हैं, ये व्यभिचार पैदा करवा रहे हैं। और इन्होंने सारी दुनिया को व्यभिचारी कर दिया है। ये ही व्यभिचारी हैं।
और वाममार्ग का तो व्यभिचार से कोई संबंध ही नहीं है। और वाममार्ग के शब्दों को नहीं समझ पाते, इसलिए बड़ी तकलीफ हो जाती है। वाममार्ग के सारे के सारे शब्द पारिभाषिक हैं, पर्टिकुलर डेफिनीशंस से बंधे हैं। जब वाममार्ग कहता है, शराब में पूरी तरह डूब जाओ, तो जो शराब बाजार में बिकती है उसकी वह बात नहीं कर रहा। वह उस शराब की बात कर रहा है जिसमें चौबीस घंटे डूबा जा सकता है।
लेकिन बड़ा मुश्किल है, वह उसका पारिभाषिक शब्द है। वह उसका पारिभाषिक शब्द है, वह यह कह रहा है कि एक ऐसी शराब भी है जिसमें चौबीस घंटे डूबा जा सकता है। जब वह कह रहा है, मैथुन करो, तब वह उस मैथुन की बात नहीं कर रहा है जो आप कर रहे हैं। वह तो आप कर ही रहे हैं। वह आपसे कहने की कोई जरूरत नहीं है। वह कह रहा है, एक और मैथुन भी है जो व्यक्ति के और परमात्मा के बीच घटित होता है। वह उसकी बात कर रहा है। लेकिन अब वे पारिभाषिक मामले हैं।
तो पहली तो बात मैं यह कहता हूं कि न तो वाममार्ग कहता है कि व्यभिचार करो और मेरा तो सवाल ही नहीं उठता कि मैं कहूं कि व्यभिचार करो। मैं तो कहता ही यह हूं कि जो मैं कह रहा हूं उससे ही सद-आचार पैदा हो सकता है।
और तीसरी बात आपने पूछी कम्युनिस्ट की। तो दो बातें हैं। एक तो मुझसे ज्यादा कम्युनिस्ट विरोधी आदमी खोजना मुश्किल है। इसलिए, क्योंकि मेरी मान्यता है, मैं व्यक्तिवादी हूं, इंडिविजुअलिस्ट हूं। मैं मानता हूं व्यक्ति परम मूल्य है, समाज परम मूल्य नहीं है। मैं ऐसा नहीं मानता कि व्यक्ति समाज के लिए है, मैं मानता हूं कि समाज व्यक्ति के लिए है। मैं राज्य विरोधी हूं, अनार्किस्ट हूं। मैं मानता हूं राज्य के हाथ में कम से कम ताकत होती जानी चाहिए। उसी दिन अच्छी दुनिया पैदा होगी, जिस दिन राज्य सबसे कम ताकतवर होगा, उसके पास कोई ताकत नहीं होगी। राज्य के हाथ में जितनी ताकत होगी, उतना व्यक्ति की आत्मा का हनन होता ही है, होगा ही।

तो मेरे तो कम्युनिस्ट होने का उपाय नहीं है--इस अर्थों में। क्योंकि कम्युनिस्ट जो है वह स्टेट पर भरोसा रखता है, इंडिविजुअल पर नहीं। उसका भरोसा है कि व्यक्ति की कोई कीमत नहीं है, कीमत राज्य की और समाज की है।

प्रश्नः स्टेट फर्स्ट है।

हां, स्टेट फर्स्ट है और स्टेट के लिए व्यक्ति को कुर्बान किया जा सकता है।
मैं उलटा आदमी हूं। मैं कहता हूं कि व्यक्ति के लिए स्टेट को कुर्बान करना हो तो किया जा सकता है, व्यक्ति को कभी कुर्बान नहीं किया जा सकता। उसके दो कारण हैं। एक तो कारण यह है कि व्यक्ति के पास जीवंत चेतना है, आत्मा है। स्टेट के पास कोई आत्मा नहीं, वह डेड मशीनरी है। और मशीनरी के लिए कभी भी आत्मा को कुर्बान नहीं किया जा सकता। समाज के पास कोई आत्मा नहीं है। वह सिर्फ कलेक्टिव नाम है। समाज कहीं है भी नहीं। जहां भी जाइएगा, व्यक्ति मिलेगा। समाज खोजने से कहीं मिलेगा नहीं। समाज एक झूठ है, एक फाल्सहुड, एक मिथ, जो है कहीं भी नहीं, लेकिन मालूम बहुत पड़ता है कि है। लेकिन जहां भी जाइए, व्यक्ति है।
तो मैं तो व्यक्तिवादी हूं। और चाहता हूं कि व्यक्ति को परम स्वतंत्रता होनी चाहिए, सब तरह की। कम्युनिज्म व्यक्ति के सख्त खिलाफ है। वह व्यक्ति की सब स्वतंत्रता को हड़प जाने के पक्ष में है। इस लिहाज से तो मैं पूरी तरह कम्युनिस्ट विरोधी हूं।
लेकिन एक और अर्थ में मुझे कम्युनिस्ट कहा जा सकता है, जिस अर्थ में सभी आध्यात्मिक लोग कम्युनिस्ट हैं। मुझे इस अर्थ में कम्युनिस्ट कहा जा सकता है कि मैं मानता हूं कि प्रत्येक व्यक्ति के पास समान आत्मा है, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर समान परमात्मा है, इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को जीवन में समान अवसर होना चाहिए। अवसर की असमानता जितनी कम हो, उतना हम व्यक्ति के भीतर छिपे परमात्मा को समान आदर देने का मार्ग बनाते हैं। तो मेरी दृष्टि में बुद्ध, क्राइस्ट, कृष्ण, नानक जिस अर्थ में कम्युनिस्ट हैं, मैं भी कम्युनिस्ट हूं। क्योंकि मेरी मान्यता यह है कि किसी व्यक्ति को किसी व्यक्ति के ऊपर होने का हक नहीं है। सभी व्यक्ति समान हैं। हायरेरकी के मैं विरोध में हूं कि कोई किसी के ऊपर हो सके। कोई किसी के ऊपर नहीं होता।

प्रश्नः लेकिन गवर्नमेंट ऐसे चल ही नहीं सकती।

मैं अभी यह नहीं कह रहा। अभी ये दूसरी बात जो पूछ रहे हैं वह मैं कर रहा हूं। पीछे आप वह पूछ लें। अभी तो मैं यह कह रहा हूं कि मैं कम्युनिस्ट होने के बाबत क्या कहता हूं।
आप जो पूछते हैं कि फिर गवर्नमेंट चल नहीं सकती। यह थोड़ा सोचने जैसा मामला है। यह बड़ा सोचने जैसा है। दो-तीन बातें समझने जैसी हैं।
एक तो समझने जैसी बात यह है कि हम अक्सर... अगर हम कहें कि सारे लोग स्वस्थ हो जाएं, तो कोई सवाल उठा सकता है कि फिर अस्पताल नहीं चल सकता। सवाल उठा सकता है। लेकिन अस्पताल चलाने की जरूरत क्या है? वह जरूरत ही इसलिए है कि लोग बीमार हैं।
गवर्नमेंट जो है वह नेसेसरी ईविल है। क्योंकि लोग ठीक नहीं हैं इसलिए गवर्नमेंट है। उसके होने की कोई जरूरत नहीं है। सड़क पर पुलिस, चौरस्ते पर पुलिसवाला खड़ा करना पड़ रहा है, क्योंकि हम चोर हैं। और कोई कारण नहीं है उसके वहां खड़े होने का। गवर्नमेंट जो है वह हमारे ठीक न होने का परिणाम है। गवर्नमेंट सदा चलनी चाहिए, यह वैसी ही खतरनाक बात है जैसे कि डाक्टर का धंधा रोज चलना चाहिए। यह वैसी ही खतरनाक बात है।
अच्छी दुनिया तो वह होगी कि डाक्टर का धंधा न चले। तब भी हम डाक्टर को तनख्वाह दे सकते हैं इसकी कि उसका धंधा नहीं चलता है, इससे बड़ी कृपा है उसकी, वह दूसरी बात है। लेकिन डाक्टर का धंधा चलाने के लिए आदमी बीमार रहे, यह नहीं सोचा जा सकता।

गवर्नमेंट है इसलिए कि व्यक्ति जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। जिस दिन हम व्यक्ति को बदलने की प्रक्रिया में जितने गहरे उतर जाएंगे, गवर्नमेंट उतनी ही गैर-जरूरी होती चली जाएगी। इसलिए नेसेसरी ईविल है। और जितनी गवर्नमेंट गैर-जरूरी होगी, उतना ही सबूत होगा कि आदमी ठीक हो रहा है। नहीं तो और कोई सबूत भी नहीं होगा। अभी आदमी जितना बिगड़ता है, गवर्नमेंट हमें उतनी सख्त चाहिए पड़ती है।
अब जैसे हमारा मुल्क है, अब हमारे मुल्क में एक-एक आदमी के मन की आवाज
है कि गवर्नमेंट और सख्त होनी चाहिए। क्योंकि आदमी बिल्कुल बिगड़ी हालत में है। इस आदमी के साथ यह गवर्नमेंट कमजोर पड़ रही है। मगर इस आदमी के साथ! इस आदमी के साथ यह गवर्नमेंट कमजोर पड़ रही है। यह गवर्नमेंट नहीं सम्हाल पा रही है। अगर आदमी बुरा रहा तो गवर्नमेंट को मजबूत होना ही पड़ेगा, इसमें कोई उपाय नहीं है। अगर आदमी बीमार हुए तो हमें अस्पताल बढ़ाने ही पड़ेंगे, इसका कोई उपाय नहीं है। लेकिन चेष्टा हमारी यही होनी चाहिए कि अस्पताल कम से कम होते चले जाएं। और चेष्टा हमारी यही होनी चाहिए--दि लेस गवर्नमेंट दि बेटर। चेष्टा हमारी यह होनी चाहिए। और एक दिन ऐसा आना चाहिए...

प्रश्नः अगर गवर्नमेंट लेस हो, तो अनरेस्ट भी हो सकता है कंट्री में!

मेरी आप बात नहीं समझे। मैं आपकी बात समझा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि गवर्नमेंट लेस हो। मैं यह कह रहा हूं कि गवर्नमेंट की लेस जरूरत हो। तब अनरेस्ट नहीं होगा। यानि गवर्नमेंट की जरूरत रोज कम होती चली जाए। वह तभी कम हो सकती है जब हम व्यक्ति को रोज ऊपर उठाते चले जाएं। उसके बिना नहीं कम हो सकती। गवर्नमेंट कम होती है, जब हम व्यक्ति को ऊपर उठाते चले जाएं। अगर बिना व्यक्ति को उठाए हम गवर्नमेंट को कम कर दें, तब तो अनरेस्ट हो जाएगा। और अनरेस्ट ज्यादा दिन तक नहीं चल सकता, इसलिए गवर्नमेंट फिर वापस--ज्यादा डिक्टेटोरियल गवर्नमेंट वापस लौट आएगी। जिंदगी सदा एक बैलेंस है। उसमें आप बैलेंस ज्यादा देर नहीं तोड़ सकते। अगर आप आज गवर्नमेंट को कमजोर कर दें तो कल आप एक डिक्टेटर को पैदा करने वाले बन जाएंगे अपने आप।

प्रश्नः तो आप, आपके ख्याल में हिंदुस्तान की कितनी हिफाजत है?

वह दूसरी बातें हो जाएंगी, आपकी मतलब की बातें नहीं रह जाएंगी। आप अपनी बातें पूछ लें पहले।

प्रश्नः एक बात है कि हिंदुस्तान की सारी हिंदू संस्थाएं आपके विरुद्ध हैं। क्या आप कोई नये मत की बुनियाद रखने जा रहे हैं?

पहली तो बात यह है कि संस्थाएं मेरे विरोध में हो सकती हैं, हिंदू मेरे विरोध में नहीं हैं। और संस्थाएं मुर्दा चीजें हैं, जो हमेशा विरोध में होती हैं। संस्थाएं तो सदा विरोध में होंगी, क्योंकि संस्थाएं हमेशा पास्ट ओरिएंटेड होती हैं। वे बनती हैं दस हजार साल पहले, कोई पांच हजार साल पहले। तो जब भी कोई बात कही जाएगी जो आज काम की होगी, उसके खिलाफ संस्था पड़ेगी ही। क्योंकि संस्था हमेशा अतीत की होती है और बात अगर काम की है तो आज की होती है।
लेकिन हिंदू मेरे विरोध में नहीं हैं। नहीं तो मुझे सुन कौन रहा है? समझ कौन रहा है? मुझे प्रेम कौन कर रहा है?
मुझे कौन प्रेम करेगा? कौन समझेगा? कौन सुनेगा? अगर हिंदू ही मेरे विरोध में हैं, तब तो विरोध की मेरे जरूरत ही नहीं है। मैं बेमानी हो गया, मेरा कोई मतलब ही नहीं। अगर मेरे विरोध की जरूरत पड़ती है तो उसका मतलब ही यह है कि मुझे कोई सुनने और समझने को राजी हो रहा है। वह विरोध मेरा नहीं है। मेरे विरोध से क्या मतलब है! मैं एक आदमी, अगर मुझे कोई सुनता न हो, प्रेम न करता हो, समझता न हो, तो मुझे कोई काला झंडा दिखाने की जरूरत नहीं है। काला झंडा तो उनको दिखाया जा रहा है जो मुझे सुन रहे हैं। मुझसे क्या लेना-देना है! मुझसे कोई संबंध ही नहीं है।

प्रश्नः तो नया मत नहीं बना रहे हैं आप!

नहीं, बिल्कुल भी नहीं। क्योंकि मैं मानता हूं कि सब मत बंधन बनाने वाले हो जाते हैं--सब मत। जैसे पुराने मत बंधन बनाने वाले हो गए हैं। तो मैं वही नासमझी करूं जो कि दूसरी संस्थाएं मेरे साथ कर रही हैं, तब तो पागलपन होगा। पुरानी संस्था किसी ने बनाई थी कभी, पुराना मत किसी ने कभी बनाया था। वक्त निकल जाता है, मत बैठा रह जाता है। फिर वह मत डिगता नहीं। वह कहता है, हम हटेंगे नहीं। उसकी सब जरूरत खत्म हो जाती है। वह अपरूटेड हो जाता है। उसकी कहीं कोई जरूरत नहीं रह जाती। लेकिन वह बैठा रह जाता है। मैं किसी मत बनाने के पक्ष में नहीं हूं। मैं तो विचारशील आदमी के पक्ष में हूं, मत के पक्ष में नहीं हूं। मैं यह नहीं कहता कि सब लोग एक मत के हो जाएं। मैं यह कहता हूं कि सब लोग विचारशील हों। विचारशीलता तो एक फ्लूडिटी है और मत सदा एक रिजिडिटी है। मत हमेशा फिक्स्ड होता है और विचार कभी फिक्स्ड नहीं होता। मैं यह नहीं कहता कि आप एक पर्टिकुलर मत में बंध जाएं। मैं इतना सा ही कहता हूं कि आप सोच-विचार को मुक्त करें।
तो मैं किसी मत को जन्म देने वाला नहीं हूं। क्योंकि पुराने मतों ने
ही हमें इतनी दिक्कत दे दी है कि और एक नया मत बीमारी को बढ़ाएगा, कम नहीं कर सकता। मैं सख्त खिलाफ हूं।

प्रश्नः नये मत भी ऐसे ही बनते हैं, वैसे भी...

बनते हैं।...
और गंगा बड़ी स्वतंत्र है। आप रेल की पटरियां बिछा दो और गंगा से कहो
कि इस पटरी पर बहो। तब वह परतंत्र होगी। गंगा अभी पूरी स्वतंत्र है। और अगर किनारे भी चुने हैं तो यह गंगा का चुनाव है, यह आपका चुनाव नहीं। आपकी नहरें परतंत्र हैं, वह आपका चुनाव है। तो नहरें सागर तक नहीं पहुंचतीं। नहरों को सागर कोई कैसे पहुंचाएगा? किसलिए पहुंचाएगा? नहरें परतंत्र हैं। बाढ़ स्वच्छंद है। गंगा स्वतंत्र है।
इन तीनों बातों को समझ लें। ये तीन अलग बातें हैं। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता एक चीज नहीं हैं। और परतंत्रता ही स्वच्छंदता पैदा करती है। स्वच्छंदता सदा परतंत्रता से पैदा होती है। जब परतंत्रता बहुत ज्यादा हो जाती है तो स्वच्छंदता पैदा हो जाती है। वह एंटीडोट है। स्वतंत्रता पूरी हो तो स्वच्छंदता कभी पैदा नहीं होती। क्योंकि उसके पैदा होने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
आदमी स्वस्थ हो तो दवा कभी नहीं लेता, बीमार हो तो ही लेता है। आदमी स्वतंत्र नहीं है, परतंत्र है। इसलिए स्वच्छंदता बार-बार लौटती है। मैं स्वच्छंदता के सख्त खिलाफ हूं। और अगर स्वच्छंदता के खिलाफ हूं तो मुझे परतंत्रता के खिलाफ होना पड़ेगा। क्योंकि परतंत्रता के कारण स्वच्छंदता पैदा होती है। वह उसका रूट कॉ.ज है। मैं स्वतंत्रता के पक्ष में हूं, बाढ़ के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन गंगा अपना किनारा चुने, इस पक्ष में हूं। मैं यह नहीं कह रहा कि किनारे तोड़ कर बहे। जब तोड़ कर बहती है तब भी बड़े किनारे चुन कर बहती है। आप ही को ख्याल में है कि तोड़ कर बहती है, क्योंकि आप जिसको किनारा समझे थे वह किनारा नहीं रह जाता। गंगा तो सदा किनारा चुन कर ही बहेगी। गंगा तो किनारा चुन कर ही बहेगी; जिसको भी बहना है, किनारा चुनना पड़ेगा। लेकिन किनारा चुना हुआ हो स्वयं का, फोर्स्ड न हो। अगर फोर्स्ड है, तो उपद्रव होगा।
अब तक आदमी के ऊपर हम परतंत्रता थोपते रहे हैं। इसलिए जब मैं स्वतंत्रता की बात करता हूं तो आपको तत्काल स्वच्छंदता ख्याल में आती है। क्योंकि अगर जेलखाने में जाकर स्वतंत्रता की बात करिए तो जेलर को फौरन ख्याल आएगा--इससे स्वच्छंदता हो जाएगी। लेकिन बस्ती में स्वतंत्रता की बात करिए तो किसी को ख्याल नहीं आता कि स्वच्छंदता हो जाएगी। क्योंकि जेलर कहेगा--स्वतंत्रता यानि स्वच्छंदता। क्योंकि परतंत्रता इतनी भारी है कि कोई भी स्वतंत्रता स्वच्छंदता में ही ले जाने वाली है। ये सब कैदी

बाहर निकल कर भाग खड़े होंगे। तो वह कहेगा, यह स्वतंत्रता की बात मत करो, नहीं तो स्वच्छंदता हो जाएगी।
जो लोग भी स्वतंत्रता की बात को स्वच्छंदता का अर्थ देते हैं, वे जेलर
की तरह समाज की छाती पर बैठे हुए हैं। वे संस्थाएं हों, धर्म हों, मत हों, आर्गनाइजेशंस हों, कुछ भी हों। उन्होंने समाज को एक कारागृह बनाया हुआ है। वे पूरे वक्त डरते हैं--कि जरा सी स्वतंत्रता कि बस स्वच्छंदता हुई। और मेरा मानना है कि यही सारे लोग मिल कर कल स्वच्छंदता करा देंगे। सारी दुनिया में करवा रहे हैं। सारी दुनिया में करवा रहे हैं--चाहे यूरोप में हिप्पी पैदा हो रहा हो और चाहे बीटल पैदा हो रहा हो, बीटनिक पैदा हो रहा हो, और चाहे हिंदुस्तान में नक्सलाइट पैदा हो रहा हो, इसके जिम्मेवार वे लोग हैं जिन्होंने व्यक्ति को सब तरफ से गुलाम बनाया हुआ है।
यह बड़े मजे की बात है कि अगर गुलामी बहुत ज्यादा हो जाए तो आदमी दूसरी एक्सट्रीम पर चला जाता है। हमारी जिंदगी एक्सट्रीम में चलती है। अगर घड़ी का पेंडुलम बाएं जाता है तो फिर वह दाएं कोने तक जाता है। पेंडुलम को बीच में छोड़ दें तो न वह बाएं जाता है, न वह दाएं जाता है।
स्वतंत्रता अब तक स्वीकृत नहीं हो सकी है। मैं स्वतंत्रता के पक्ष में हूं, स्वच्छंदता के पक्ष में नहीं हूं। और चूंकि स्वच्छंदता के पक्ष में नहीं हूं इसीलिए परतंत्रता के विपक्ष में हूं।

प्रश्नः देखिए गीता और रामायण के मुतल्लक आपके बारे में ये बातें आई हैं कि आपने इन पर भी कुछ खंडन किया है, इनका खंडन किया है। या आपने यह कहा है कि इन किताबों से कोई ज्ञान प्राप्ति नहीं होती, बल्कि अज्ञान बढ़ता है। तो इसके बारे में आप अज्ञान का मतलब साफ करें।

एक बात, मैं शास्त्रों के विरोध में नहीं हूं, शास्त्रों के पकड़ने के विरोध में हूं, क्लिंगिंग। मैं इस बात के विरोध में नहीं हूं कि गीता मत पढ़ें, मैं इस बात के विरोध में हूं कि गीता को अंधे की तरह न पकड़ लें। हमारे दिमाग में क्लिंगिंग पैदा होती है, एक पकड़ पैदा होती है। यह जो पकड़ है, यह हमें स्वतंत्र नहीं करती, परतंत्र करती है, प्रिज्युडिस्ड बनाती है। गीता को जो आदमी बिना पकड़े पढ़ेगा, वह कुरान को भी पढ़ सकता है, उतने ही मौज और आनंद से। जो गीता को पकड़ कर पढ़ेगा, वह कुरान को उतने मौज और आनंद से नहीं पढ़ सकता। जो कुरान को पकड़ लेगा, वह फिर गुरुग्रंथ को उतने मौज और आनंद से नहीं पढ़ सकता। क्लिंगिंग से मेरा विरोध है।
मैं मानता हूं कि दुनिया के सभी शास्त्रों में, जिन्होंने कुछ जाना है, उन्होंने कुछ कहा है। इसलिए किसी एक शास्त्र को पकड़ लेने वाला आदमी, अपने को वृहत्तर अनुभवों से वंचित रख रहा है और अज्ञान की तरफ जा रहा है। उसकी ओपनिंग चाहिए, उसका मन सब तरफ खुला होना चाहिए। और वह खुला तभी हो सकता है जब एक की पकड़ न हो, एक।
दूसरी बात, दूसरा मेरा कहना यह है कि जिन्होंने भी सत्य को जाना--चाहे कृष्ण ने, चाहे क्राइस्ट ने--जैसे ही सत्य को कहा जाता है, वैसे ही हमारे पास तक सत्य नहीं पहुंचता, सिर्फ शब्द पहुंचते हैं। सत्य पहुंच नहीं सकता शब्दों से। जैसे मैंने किसी को प्रेम किया और मैंने आपसे कहा कि मैंने प्रेम किया और प्रेम बड़ा आनंदपूर्ण है। आपके पास प्रेम का अनुभव नहीं पहुंचता, सिर्फ प्रेम शब्द पहुंचता है। और अगर आपको प्रेम का कोई अनुभव न हो, तो यह प्रेम शब्द से आपको कुछ भी नहीं मिल सकता। कुछ मिल ही नहीं सकता, यह बिल्कुल कोरा शब्द रह जाएगा।
तो दूसरा मेरा कहना यह है कि जो लोग शास्त्रों को ही समझ लेते हैं कि इन्हीं से सत्य मिल जाएगा, खतरे में पड़ रहे हैं। इनसे शब्द ही मिल सकते हैं उनके जिनको सत्य मिला, सत्य नहीं मिल सकता। सत्य तो स्वयं ही खोजना पड़ेगा। जिस दिन सत्य मिल जाएगा, उस दिन ये शास्त्र गवाही बन जाएंगे बस--कि जो तुम्हें मिला है वही कृष्ण को भी मिला था, जो तुम्हें मिला है वही गीता में भी है, वही कुरान में भी है, वही बाइबिल में भी है। लेकिन कोई सोचता हो कि गीता कंठस्थ कर लेने से सत्य मिल जाएगा, तो यह गीता कंठस्थ तो कंप्यूटर को

भी हो सकती है। यह सिर्फ मेमोरी का काम है, इससे ज्ञान का कोई लेना-देना नहीं है।
तो जब मैं कहता हूं कि शास्त्र से सत्य नहीं मिलेगा, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि शास्त्र में सत्य नहीं है। शास्त्र में सत्य है--कहने वाले के लिए। शास्त्र में सत्य नहीं है--पढ़ने वाले के लिए। पढ़ने वाले के लिए क्या हो सकता है? शब्द हैं! कोरे शब्द हैं! जिनका उसके पास कोई कॉरस्पांडिंग अनुभव नहीं है। और बड़े मजे की बात है कि अगर उसके पास कॉरस्पांडिंग अनुभव हो, तो वह गीता की फिकर ही न करेगा। अगर उसके पास अपना अनुभव हो, तो वह कहेगा कि ठीक है, होगा गीता में, होगा बाइबिल में। जिसके पास अपना अनुभव नहीं है वह गीता को छाती से लगा लेगा। और यह जो छाती से गीता को लगा लेना है, यह खतरनाक है। यह कृष्ण तक पहुंचने में बाधा बनेगा।
गीता पढ़ें, मुक्त मन से! समझें, मुक्त मन से! इतना जानते हुए कि जो हम समझ रहे हैं वे शब्द हैं; अभी सत्य की यात्रा नहीं हुई। सागर तक पहुंचना है तो किताब में लिखे सागर की बात से नहीं, सागर तक ही पहुंचना पड़ेगा। इतना ख्याल बना रहे इसलिए मैं जोर निरंतर देता हूं कि शास्त्र से जरा सावधान रहना। और ऐसा नहीं कहता कि गीता के ही शास्त्र से, मेरी किताब से भी उतना ही सावधान रहना। क्योंकि यह सवाल नहीं है कि वह किसकी किताब है।
भ्रांति इससे पैदा होती है कि आदमी चाहता है कि सत्य बिना खोजे कहीं
से मिल जाए, खोजना न पड़े। उसको चोट लगती है। वह सोचता है--गीता से मिल जाएगा, जिंदगी भर पढ़ते रहेंगे तो मिल जाएगा। उसे चोट पहुंचती है। क्योंकि मैं यह कह रहा हूं कि खोजना पड़ेगा तो ही मिलेगा। सत्य इतना सस्ता नहीं कि तुम चश्मा लगा कर और थोड़ा सा मिट्टी का तेल जला कर और एक किताब पढ़ कर पा लोगे। मेरा मतलब यह नहीं है कि वहां सत्य नहीं है। जिसने कहा था, उसके लिए था। लेकिन तुम्हारे लिए उस दिन होगा, जिस दिन तुम जानोगे, उसके पहले नहीं हो सकता।

प्रश्नः आपने फरमाया कि गवर्नमेंटलेस सोसाइटी... क्योंकि रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण, ये हमेशा इकट्ठे ही चलते रहे हैं हर सोसाइटी में। ऐसा समाज हमने आज तक न देखा, न सुना जिसमें महज सतोगुणी ही तमाम लोग हों, रजोगुण, तमोगुण वाले लोग ही न हों; और उनके लिए कोई गवर्नमेंटल बॉडी की जरूरत न हो। अगर पंचायती बॉडी भी कोई कभी हुई, जो गवर्नमेंट लेवल तक न पहुंचती हो, वह भी एक तरह की गवर्नमेंटल बॉडी ही है। इसलिए मैं आपसे यह पूछना चाहूंगा कि क्या आपकी यह टॉक, यह गवर्नमेंट लेस बॉडी केवल आइडियलिस्टिक सोसाइटी के लिए है? यह प्रैक्टिकल भी है या महज आइडियलिस्टिक है?

पहली तो बात यह है कि ऐसा कभी हो ही जाएगा, ऐसा मैं नहीं कह रहा हूं। लेकिन ऐसे होने की आकांक्षा में बहुत कुछ हो जाएगा जो हितकर है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ऐसा कभी हो ही जाएगा। यह भी नहीं कह रहा हूं कि एक दिन ऐसा आ ही जाएगा जिस दिन नो गवर्नमेंट की सोसाइटी हो जाएगी। लेकिन नो गवर्नमेंट का ख्याल हो तो लेस गवर्नमेंट की सोसाइटी पैदा होती है।
आप मेरा मतलब समझ रहे हैं न? मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप एवरेस्ट पर पहुंच ही जाएंगे। लेकिन एवरेस्ट पर पहुंचने की आकांक्षा हो तो सतपुड़ा और विंध्याचल पर चढ़ना हो सकता है। इंपासिबल को लक्ष्य बनाना पड़ता है तो जो पोटेंशियल है वह पासिबल हो पाता है, नहीं तो नहीं हो पाता।
तो मेरी बात बिल्कुल आइडियलिस्टिक है, आप ठीक कह रहे हैं। यानि मैं बिल्कुल यूटोपियन बात कह रहा हूं कि यह तो आखिरी बात है कि जमीन पर अगर सारे लोग परमात्मा हो जाएं तो संभव होगी। जो कि संभव नहीं है। लेकिन अगर इसे ध्यान में रखा जाए तो हम लेसर गवर्नमेंट, एंड लेसर गवर्नमेंट की तरफ बढ़ते हैं।
और इस जगत में एब्सोल्यूट चीजें कभी नहीं होतीं। जब हम एक आदमी को कहते हैं कि सतोगुणी, तब भी कोई आदमी पूरा सतोगुणी नहीं होता। लेसर फर्क पड़ते हैं सिर्फ, रिलेटिव फर्क होते हैं। बड़े से बड़े आदमी में भी छोटे आदमी की छोटी मात्रा मौजूद होती है। और छोटे से छोटे आदमी में भी बड़े आदमी की

छोटी मात्रा मौजूद होती है। रावण में भी राम मौजूद होता है और राम में भी रावण का एक हिस्सा मौजूद होता है। इस पृथ्वी पर एक्झिस्ट होने के लिए, सब चीजें रिलेटिव हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम रावण हो जाएं। इसका मतलब यह है कि लक्ष्य तो रहे कि राम बनते रहें। राम बनने का लक्ष्य हो तो रावण को कम करते जाएंगे। हालांकि पृथ्वी पर, अस्तित्व में कोई भी व्यक्ति होगा, तो रावण का भी एक हिस्सा उसके भीतर रहेगा ही। इस पृथ्वी पर जैसे ही कोई एब्सोल्यूट हुआ कि वह मुक्त हो जाता है, वह मोक्ष चला जाता है। उसकी इस जगह पर कोई जमीन पर जगह नहीं रह जाती।
तो मैं आपकी बात को स्वीकार कर रहा हूं। मैं कह ही यह रहा हूं कि मैं
जो कह रहा हूं वह आदर्श है। और सभी आदर्श असंभव होते हैं, मेरा ही आदर्श नहीं। दूसरी बात कह रहा हूं कि सभी आदर्श असंभव होते हैं। और तीसरी बात यह कह रहा हूं कि असंभव आदर्श चुनना, जो संभव है उसे करने के लिए जरूरी है। और जब आप पूछते हैं कि कभी कोई ऐसी सोसाइटी थी?
कभी कोई ऐसी सोसाइटी नहीं थी। लेकिन जितनी कल्चर्ड सोसाइटी होगी, उतनी ही लेस गवर्नमेंट वाली सोसाइटी होगी। जितनी कल्चर्ड सोसाइटी होगी। क्योंकि कल्चर्ड का मतलब ही यह है कि जो काम गवर्नमेंट को करना पड़ता है, वह काम आदमी कर रहा है। अगर रास्ते पर बाएं चलाने के लिए पुलिसवाले की जरूरत पड़ती है, तो यह अनकल्चर्ड सोसाइटी है। और अगर यह कल्चर्ड सोसाइटी है, तो पुलिसवाला नहीं होगा, आदमी बाएं चलता है। जिस दिन सारे आदमी बाएं चलने लगेंगे, उस दिन हम पुलिसवाले को बेकार वहां खड़ा करके थकाना बेकार समझेंगे। हम उससे कहेंगे, तुमसे कोई और काम लिया जाए। कल्चर्ड सोसाइटी का मतलब ही यह है कि वहां गवर्नमेंट की कम जरूरत होगी।

प्रश्नः यह ज्यादा अच्छा होता कि अगर आप व्याख्यान में उसकी कमतर नीड
को डिस्कस करते, उसकी एब्सोल्यूट नॉन एनटिटी को डिस्कस न करते।

उसकी एब्सोल्यूट नॉन एनटिटी को ही डिस्कस करना पड़ता है, तभी कमतर नीड डिस्कस होती है। उसके कारण हैं। उसके कारण हैं। अगर हमें यहां प्रकाश की बात करनी हो, तो अंधेरे के खिलाफ रख कर सोचना पड़ता है। अगर हम ऐसा कहें कि प्रकाश सिर्फ अंधेरे का ही एक रूप है, तो प्रकाश को समझना मुश्किल हो जाता है। है सच्चाई वही। दुनिया में अंधेरे और प्रकाश में कोई एब्सोल्यूट फर्क नहीं है, रिलेटिव फर्क है।
समझने के लिए और बात करने के लिए सदा हमें चीजों को दो पोलेरिटी में तोड़ना पड़ता है। नहीं तो हम बात नहीं कर सकते। इस हाथ को हम बायां कहते हैं, इसको हम दायां कहते हैं। लेकिन बहुत गौर से देखें तो ऐसा बांटना मुश्किल है। क्योंकि कहां से बायां शुरू होगा? कहां से दायां शुरू होगा? और जिस जगह से हम शुरू करेंगे वह जगह कहां होगी? बाईं होगी कि दाईं होगी? हम मुश्किल में पड़ जाएंगे।
जिंदगी की सारी भाषा, बात करना, सभी की सभी पोलेरिटी में होती है। ठंडे और गर्म की बात करनी पड़ती है। दुख और सुख की बात करनी पड़ती है। सच्चाई उलटी है सदा। सब दुखों में थोड़ा सुख होता है और सब सुखों में थोड़ा दुख होता है। वह रिलेटिव है, वह जिंदगी की असलियत है।
प्रश्नः मैं तो यह कह रहा था कि आपकी बहुत सी बातें जबरदस्त प्रैक्टिकल हैं। यह आपने आज एक आइडियलिस्टिक बात कह दी और खुद उसको आपने तस्लीम कर दिया!

मैं तस्लीम कर रहा हूं। मैं तस्लीम कर रहा हूं। और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि वह इम्प्रैक्टिकल है। मैं कह रहा हूं कि आइडियलिज्म की बात का अपना एक प्रैक्टिकल अर्थ है। और वह अर्थ यह है कि जब भी हम असंभव आदर्श चुनते हैं तो जो ऑप्टिमम पासिबल है, वह संभव हो पाता है। जब हम एक आदमी से कहते हैं कि तुम परमात्मा हो जाओ, तब हम उसको श्रेष्ठ आदमी बना पाते हैं बस, और कुछ नहीं कर पाते। लेकिन अगर हम उस आदमी को कहें कि तुम श्रेष्ठ आदमी हो जाओ, तो हम उसको श्रेष्ठ आदमी न बना पाएंगे। जब हम आखिरी कोशिश करते हैं, तब हम थोड़ा सा पहुंच पाते हैं।

प्रश्नः इसलिए कहना पड़ता है।

इसलिए कहना पड़ेगा। और वह प्रैक्टिकल है, वह प्रैक्टिकल है।

धर्म साधना के सूत्र
दूसरा प्रवचन

ध्यान में मिटने का भय

रवींद्रनाथ ने एक गीत में कहा है कि मैं परमात्मा को खोजता था। कभी किसी दूर तारे पर उसकी एक झलक दिखाई पड़ी, लेकिन जब तक मैं उस तारे के पास पहुंचा, वह और आगे निकल चुका था। कभी किसी दूर ग्रह पर उसकी चमक का अनुभव हुआ, लेकिन जब तक मैंने वह यात्रा की, उसके कदम कहीं और जा चुके थे। ऐसा जन्मों-जन्मों तक उसे खोजता रहा, वह नहीं मिला। एक दिन लेकिन अनायास मैं उस जगह पहुंच गया जहां उसका भवन था, निवास था। द्वार पर ही लिखा थाः परमात्मा यहीं रहते हैं। खुशी से भर गया मन कि जिसे खोजता था जन्मों से वह मिल गया अब। लेकिन जैसे ही उसकी सीढ़ी पर पैर रखा कि ख्याल आया--सुना है सदा से कि उससे मिलना हो तो मिटना पड़ता है। और तब भय भी समा गया मन में--चढूं सीढ़ी, न चढूं सीढ़ी? क्योंकि अगर वह सामने आ गया तो मिट जाऊंगा! अपने को बचाऊं या उसे पा लूं? फिर भी हिम्मत की और सीढ़ियां चढ़ कर उसके द्वार पर पहुंच गया, उसके द्वार की सांकल हाथ में ले ली। फिर मन डरने लगा--बजाऊं या न बजाऊं? अगर उसने द्वार खोल ही दिया तो फिर क्या होगा? मैं तो मिट जाऊंगा। और तब प्राण इतने घबड़ा गए मिटने के ख्याल से कि सांकल धीरे से छोड़ दी कि कहीं भूल से आवाज न हो जाए, कहीं वह द्वार न खोल दे, पैर की जूतियां हाथ में ले लीं कि कहीं सीढ़ियों पर आवाज न हो जाए, कहीं वह द्वार न खोल दे, और फिर जो उस दिन से भागा हूं तो पीछे लौट कर नहीं देखा है। अब मुझे भलीभांति पता है, रवींद्रनाथ ने इस गीत में कहा, अब भलीभांति पता है कि उसका मकान कहां है। फिर भी उसे खोजता हूं, सिर्फ उसके मकान को बचा कर निकल जाता हूं। और सब जगह खोजता फिरता हूं। और पता है भलीभांति कि उसका मकान कहां है। लेकिन उसके मकान के पास जाकर डरता हूं, क्योंकि मिटने की हिम्मत अब तक नहीं जुटा पाया हूं। भगवान को तो पाना चाहता हूं, लेकिन खुद मिटना नहीं चाहता हूं। इन दोनों में कोई तालमेल नहीं हो पाता।
ध्यान में जैसे ही प्रवेश करेंगे, उसके द्वार पर जैसे ही खड़े होंगे, आपके सामने भी वही सवाल खड़ा हो जाएगा--यह तो अपने मिटने का वक्त आ गया। और तब भय से पीछे मत लौट आइएगा, अन्यथा जन्मों-जन्मों खोजते रहिए, उससे मिलना न हो सकेगा। भय बहुत छोटे-छोटे हैं, लेकिन छोटे-छोटे भय बड़ी-बड़ी संपदाओं को रोक लेते हैं। उसके पास पहुंच कर क्या होगा, कहना मुश्किल है।
एक मित्र कल आए। कल कोई सौ मित्रों ने बड़ा गहराई से प्रयोग किया। उनमें से बहुत से मित्र मुझे आकर मिले हैं। एक मित्र ने कहा कि मुझे तो लगा कि अब मैं पागल तो न हो जाऊंगा!
वह वही डर है, वही डर कि कहीं मैं मिट तो न जाऊंगा। इस डर ने उन्हें रोक लिया। अपने को सम्हाल लिया। आंखें खोल लीं, दरवाजे से उतर आए, श्वासें छोड़ दीं, जूते पैर के उठा लिए कि कहीं आवाज न हो जाए। कहीं पागल तो न हो जाऊंगा! प्रेम में अगर पागल होने का डर ख्याल में आ जाए तो प्रेम मर जाता है। और परमात्मा के द्वार पर अगर यह भय समा जाए कि कहीं पागल तो न हो जाऊंगा... । परमात्मा के लिए भी अगर पागल नहीं हो सकते हैं तो फिर और किस चीज के लिए पागल होंगे? और मजा यह है कि परमात्मा को छोड़ कर जो बुद्धिमान बने बैठे हैं, वे उन पागलों के मुकाबले कुछ भी नहीं जो उसके द्वार पर नाचते हुए प्रवेश कर जाते हैं।
अगर पागल ही होना है, तो धन के पीछे पागल होने से, यश के पीछे पागल होने से, पद के पीछे पागल होने से--उन सब चीजों के पीछे पागल होने से, जो पागल तो बना देंगी, लेकिन जिनसे मिलेगा कुछ भी नहीं, हाथ खाली के खाली रह जाएंगे-- उस परमात्मा के लिए पागल होना बेहतर है, क्योंकि उसके पागल होते से ही वह सब मिल जाता है जो फिर छीना नहीं जा सकता।
मैंने सुना है, सिकंदर मरा। जिस राजधानी में उसकी मृत्यु हुई और अरथी निकली, उस गांव के सारे लोग बहुत हैरान हुए! क्योंकि अरथी से दोनों हाथ, सिकंदर की अरथी के बाहर लटके हुए थे। हर कोई पूछने लगा कि कुछ भूल हो गई है मालूम होता है। ये हाथ बाहर क्यों लटके हुए हैं? और तभी गांव में लोगों को

पता चला कि सिकंदर ने मरने के पहले खुद ही कहा था कि मेरे दोनों हाथ बाहर लटके रहने देना। यह उसकी वसीयत है।
लोगों ने पूछा, लेकिन ऐसी पागलपन की वसीयत का मतलब क्या है? हमने तो किसी अरथी के हाथ कभी बाहर लटके नहीं देखे। भिखारी भी मरते हैं तो हाथ भीतर होते हैं। सम्राट मरे तो हाथ बाहर रहें? सिकंदर को यह क्या पागलपन सूझा?
उसके सेनापतियों ने कहा, हमने भी यही कहा था उससे। उसने कहा कि नहीं, मेरे हाथ बाहर ही लटके रहने देना। ताकि लोग ठीक से देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। जिंदगी भर पागल रहा और हाथ फिर भी खाली के खाली हैं। कुछ मिला भी नहीं, दौड़ा भी बहुत, लड़ा भी बहुत, परेशान भी बहुत हुआ, हाथ खाली के खाली जा रहे हैं। ये मेरे दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना। एक-एक आदमी देख ले कि सिकंदर भी खाली हाथ जा रहा है।
दो तरह के पागलपन हैं जमीन पर। एक जो परमात्मा की दिशा में जाता है, जहां हम अपने को खोकर सब पा लेते हैं। और एक जो अपने अहंकार की दिशा में जाता है, जहां हमें कुछ भी मिल जाए तो कुछ मिलता नहीं, अंततः हम खाली के खाली रह जाते हैं। तो अगर अहंकार के लिए ही पागल होना हो, तब तो हम सब पागल हैं। हम सब अहंकार के लिए पागल हैं। एक छोटे से मैं के लिए हम जिंदगी भर लगा देते हैं कि यह मैं कैसे मजबूत हो! यह मैं कैसे बड़ा हो! यह मैं कैसे लोगों को दिखाई पड़े! चुभे!
लेकिन वह पागलपन हमें दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि हम सभी उसमें सहमत और साथी हैं। वह नार्मल मैडनेस है, वह सामान्य पागलपन है जिसमें हम सब भागीदार हैं। और अगर एक गांव में सारे लोग पागल हो जाएं, तो फिर उस गांव में पता नहीं चलेगा कि कोई पागल हो गया है। बल्कि उस गांव में खतरा है कि किसी आदमी का अगर दिमाग ठीक हो जाए, तो सारा गांव विचार करने लगेगा कि मालूम होता है यह आदमी पागल तो नहीं हो गया!
सुना है मैंने ऐसा कि किसी गांव में एक जादूगर आया और उसने उस गांव के कुएं में कोई मंत्र पढ़ कर फेंक दिया, और कहा कि जो भी इसका पानी पीएगा, पागल हो जाएगा!
सांझ होते-होते तक सारा गांव पागल हो गया। एक ही कुआं था गांव में। एक कुआं और था, लेकिन वह सम्राट के महल में था। सम्राट बच गया, उसके वजीर बच गए, उसकी रानियां बच गईं, लेकिन पूरा गांव पागल हो गया। सम्राट बड़ा प्रसन्न था। और सांझ उसने अपने वजीरों से कहा, हम सौभाग्यशाली हैं कि हमारे पास अलग कुआं है। अन्यथा हम भी पागल हो जाते, सारा गांव पागल हो गया है।
लेकिन वजीरों ने कहा, सम्राट, आपको पता नहीं है, इससे बड़ा खतरा पैदा हो गया है। गांव में एक अफवाह उड़ रही है कि मालूम होता है सम्राट का दिमाग खराब हो गया है।
सम्राट ने कहा, क्या कहते हो? हमने तो उस कुएं का पानी पीया ही नहीं! वजीरों ने कहा, यही मुसीबत हो गई है। क्योंकि पूरे गांव ने तो उस कुएं
का पानी पी लिया है। अब वह पूरा गांव अपने को ठीक समझ रहा है। आपको पागल समझ रहा है। और पागल का एक लक्षण होता है कि वह सदा अपने को ठीक समझता है और दूसरे को पागल समझता है।
सांझ होते-होते गांव के लोगों ने महल को घेर लिया और उन्होंने कहा, ऐसे सम्राट को हम पसंद न करेंगे। सिंहासन छोड़ो! हम दूसरे सम्राट को बिठाएंगे जिसका दिमाग ठीक हो!
अब सम्राट मुश्किल में पड़ा। उसके पहरेदार भी पागल हो गए, उसके सिपाही
भी पागल हो गए, उसके सेनापति भी पागल हो गए। कौन उसे बचाएगा? सम्राट ने अपने वजीरों से कहा, अब क्या रास्ता है?
वजीरों ने कहा, हम थोड़ी देर इन पागलों को रोकने की कोशिश करते हैं। आप पीछे के दरवाजे से भागे जाएं और उस कुएं का पानी पी आएं जिसका पानी इन्होंने पीया है। अब और बचने का कोई रास्ता नहीं है।
सम्राट गया भागा हुआ पीछे के रास्ते से, उस कुएं का पानी पीकर लौटा। गया तब तो पीछे के रास्ते से गया था, आया तब तो सामने के रास्ते से आया। वह भी चला आ रहा था चिल्लाता हुआ, बड़बड़ाता, नाचता-चिल्लाता। गांव के लोगों ने

कहा, आश्चर्य! मालूम होता है सम्राट का दिमाग ठीक हो गया है! उस रात उस गांव में जलसा मनाया गया। और सारे लोगों ने भगवान को धन्यवाद दिया कि तेरी बड़ी कृपा है कि हमारे राजा का दिमाग ठीक कर दिया।
अगर पूरा गांव पागल हो तो बड़ी मुश्किल हो जाती है।
इस जमीन पर ऐसा ही हुआ है। हम सब अहंकार के लिए पागल हैं। इसलिए जब कोई परमात्मा की दिशा में पागल होता है, तो हमें लगता है कि यह पागल हो गया। सच्चाई उलटी है। हम सब पागल हैं; परमात्मा की दिशा पर जाने वाले लोग ही बस पागल नहीं हैं। लेकिन हमें ये पागल दिखाई पड़ने शुरू होते हैं। हमसे अनजान, अपरिचित लोक में जो जाता है, हमसे भिन्न, हमसे अज्ञात रास्तों पर जो कदम रखता है, वह हमें पागल मालूम होने लगता है। इसलिए बुद्ध भी पागल मालूम होते हैं, महावीर भी, नानक भी, कबीर भी, क्राइस्ट भी, सब पागल मालूम होते हैं। उस जमाने के लोगों को लगता है कि यह आदमी पागल हो गया। स्वाभाविक है, सदा से यह हुआ है। दुर्भाग्य है, लेकिन यही हुआ है कि जो सच में स्वस्थ हो जाते हैं, वे इन बीमारों के बीच अस्वस्थ मालूम पड़ने लगते हैं। उसमें हिम्मत जुटाने की जरूरत है, उसके रास्ते पर पागल होने से डरने की जरूरत नहीं।
किसी एक बहन ने मुझे आकर कहा कि उसे लगा कि वह कहीं मर न जाए, समाप्त न
हो जाए। सिंकिंग मालूम होने लगी, भेजा डूबने लगा, श्वास खो न जाए। बचाएंगे भी कब तक श्वास को हम? वह खो ही जाएगी। और कब तक बचेंगे डूबने से। चारों तरफ रोज लोगों को डूबते देखते हैं। लेकिन ख्याल नहीं आता कि हम डूब जाएंगे। आदमी की सबसे ज्यादा अदभुत बातों में एक यह है कि रोज चारों तरफ कोई मरता है, लेकिन यह ख्याल नहीं आता कि मैं मर जाऊंगा। उसी क्यू में खड़े हैं जिस क्यू का नंबर एक का आदमी मर गया, नंबर दो मरने की तैयारी कर रहा है, नंबर तीन हम खड़े हैं। लेकिन हम कह रहे हैं--बेचारा मर गया! जैसे हम मरने के बाहर हैं। और हमें पता नहीं कि उसके मरने से क्यू थोड़ा आगे सरक गया, एक जगह खाली हो गई, हम और थोड़े आगे पहुंच गए मौत के करीब। जब भी आप मरघट पर किसी को पहुंचा आते हैं, तो आपका क्यू में नंबर आगे चला जाता है, आप थोड़े आगे सरक जाते हैं। लेकिन वह ख्याल नहीं आता। मरना है, मिटना पड़ेगा। इस तरह दो तरह के मिटने हैं। एक तो वह मिटना है जो मजबूरी में हम मरते हैं, तड़पते और चिल्लाते हुए, उसमें मिटने का मजा भी चला जाता है। एक और मिटना भी है--कि हम अपनी राजी से, हम अपनी खुशी से उसमें डूबते चले जाते हैं।
जीसस का वचन है, जो कीमती है। जीसस ने कहा, जो अपने को बचाएगा वह मिट जाएगा। और धन्य हैं वे जो अपने को मिटा देते हैं, क्योंकि फिर उनका मिटना असंभव है, फिर वे बचा लिए जाते हैं। उलटे हैं इस दुनिया के रास्ते, परमात्मा के रास्ते बिल्कुल उलटे हैं। वहां वही बचता है जो खोने को राजी है, यहां वही बचता है जो खोने से अपने को बचाता रहता है। लेकिन हमारा बचा हुआ भी खो जाता है, और उसमें खोया हुआ भी बच जाता है।
खोने से मत डरना, मिटने से मत डरना, अन्यथा उसकी सीढ़ियों से वापस लौटना हो जाता है।
और बहुत से मित्रों ने आकर कहा कि बहुत कुछ उनके भीतर होना शुरू हुआ, लेकिन उन्हें भय समाया कि कोई देख लेगा तो क्या कहेगा? अगर हम नाचने लगेंगे, रोने लगेंगे, हंसने लगेंगे, आंसू बहने लगेंगे, तो लोग पूछेंगे कि यह भले अच्छे आदमी को क्या हो गया?
यह भी समझ लेना जरूरी है कि हम सदा दूसरों की आंखों में देख कर ही जीते रहेंगे या कभी अपने भीतर देख कर भी जीएंगे? कब तक हम दूसरों के ओपीनियन से जीएंगे कि दूसरा क्या कह रहा है? यह दूसरा कौन है? और इस दूसरे से प्रयोजन क्या है? इस दूसरे के आप गुलाम हैं? अगर आप नाच रहे हैं और सारा गांव भी कह रहा है कि पागल है, तो यह उसकी मौज है, उसे कहने दें। लेकिन आप उनके दूसरों के विचारों के गुलाम हैं? आप नहीं सोच सकते कि आपके भीतर क्या हो रहा है? नहीं, आप डर जाएंगे। आप कहेंगे, लोग क्या कहेंगे? ठहरो।
यह "लोग क्या कहेंगे", यह परमात्मा के रास्ते पर सबसे बड़ी बाधा है। मीरा दीवानी हुई उसके रास्ते पर, लोगों ने क्या कहा? लोगों ने कहा, बिगड़ गई। मीरा को सुनना पड़ा कि लोग कहते हैं कि मीरा बिगड़ गई। लेकिन कहने दो

लोगों को। अगर मीरा लोगों की बात मान कर लौट आए, तो लोग बड़े खुश होंगे।
लेकिन मीरा डूब गई, मीरा गई।
लोग क्या कहते हैं, उनका ओपीनियन क्या है, यह परमात्मा के रास्ते पर कभी बीच में मत आने देना। अन्यथा एक कदम बढ़ाना मुश्किल है। एक कदम भी बढ़ाना मुश्किल है। क्योंकि लोग तो कुछ न कुछ कहेंगे।
जिस दिन महावीर नग्न खड़े हो गए, उस दिन उस गांव के लोगों ने उनको पत्थर मार कर बाहर कर दिया। क्योंकि लोगों ने कहा, नग्न हो गए हो! पागल हो गए हो! और महावीर इतने निर्दोष हो गए थे कि उन्हें याद भी न रहा कि वस्त्र पहनने जरूरी हैं, उनकी समझ में भी न आया कि लोग क्या कह रहे हैं।
स्वाभाविक है, कभी चित्त इतना सरल और निर्दोष हो सकता है कि वस्त्रों
की भी याद न रह जाए।
लेकिन लोगों को तो रहेगी, क्योंकि लोगों को अपना नंगापन नहीं भूलता,
तो दूसरे के वस्त्र कैसे भूलेंगे! हम सब कपड़ों के भीतर नंगे होते हैं। और हमारा नंगापन हमें इतना घबड़ाए रहता है कि हमें दूसरा आदमी नंगा दिख जाए तो हम उसे भूल कैसे सकते हैं? चाहे वह भूल जाए, हम नहीं भूल सकते। हम तो कहेंगे कि कुछ गड़बड़ हो गई है। क्योंकि अगर उसके साथ गड़बड़ नहीं हुई तो एक दूसरा सवाल उठेगा कि फिर क्या हमारे साथ गड़बड़ हो गई है? उस सवाल से बचने के लिए हम उसी पर गड़बड़ थोप देते हैं।
जिन मित्रों ने मुझे आकर कहा कि लोग क्या कहेंगे, उन्होंने अपना रास्ता रोक लिया। वे कब तक लोगों के लिए बैठे सोचते रहेंगे? लोग कुछ न कुछ कहते ही रहेंगे। और लोगों के लिए रुकने वाला बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। मैंने सुना है, एक पूर्णिमा की रात शंकर और पार्वती--पूरा चांद है-- घूमने निकले हैं। साथ में उनका नंदी भी है। वे दोनों उसके साथ चल रहे हैं और नंदी चल रहा है। कुछ लोग मिले, उन्होंने कहा, देखते हो पागलों को! नंदी साथ है और पैदल चल रहे हैं दोनों! शंकर ने कहा कि लोग कुछ गड़बड़ बातें कह रहे हैं, हम दोनों बैठ जाएं। वे दोनों नंदी पर बैठ गए। रास्ते में दूसरे लोग मिले, उन्होंने कहा, देखते हो! बेचारा गरीब नंदी, और दो-दो उस पर सवार हैं! शंकर ने कहा, यह ठीक नहीं मालूम पड़ता, लोग कह रहे हैं कि दो-दो सवार हैं एक ही नंदी पर। पार्वती से कहा कि तू उतर जा। पार्वती उतर गई, अकेले शंकर सवार रहे। लोग रास्ते में मिले, उन्होंने कहा, देखते हो इस नासमझ को! औरत को नीचे चला रहा है और खुद नंदी पर बैठा हुआ है! पार्वती से शंकर ने कहा, लोग क्या कह रहे हैं, मैं नीचे उतरा जाता हूं, तू नंदी के ऊपर बैठ। पार्वती ऊपर बैठ गई, शंकर नीचे चले। रास्ते में लोग मिले, उन्होंने कहा, देखते हो इस औरत को! पति नीचे चल रहा है और खुद नंदी पर बैठी हुई है! शंकर ने कहा, बड़ी मुश्किल हो गई! तू भी नीचे उतर आ। लेकिन अब हम क्या करें? उन्होंने कहा, अब एक ही रास्ता है कि हम दोनों नंदी को उठा लें। क्योंकि अब तो और कोई रास्ता नहीं बचा, लोगों ने हर चीज में कुछ न कुछ कहा। अब हम नंदी को ऊपर उठा लें। अब वे दोनों नंदी को उठा कर चल रहे हैं। लोग बोले, देखते हो पागलों को! नंदी पर बैठना चाहिए था, तो उलटा नंदी को लेकर चल रहे हैं! शंकर ने कहा कि लोगो, हमें जीने दोगे कि न जीने दोगे? हम कुछ भी करें तो तुम मिल जाते हो।
लोगों के कोई चेहरे थोड़े ही हैं। लोग चारों तरफ मौजूद हैं। वे हर बात में कुछ कहेंगे। ऐसी कोई बात ही नहीं है जिसमें वे कुछ न कहें। अगर वे कुछ न कहें तो बहुत बुद्धिमान हैं। लेकिन इतने बुद्धिमान लोग कहां हैं? वे कुछ न कुछ कहेंगे ही। और अगर उनकी हर बात के लिए आप रुके रहे, तो रुक जाएंगे सदा के लिए।
लेकिन ध्यान रहे, आप रुक जाएंगे, मौत न रुकेगी उनकी बातें सुन कर। मौत
न रुकेगी, वह यह न कहेगी कि लोग क्या कहेंगे, हम आपको ले जाएं कि न ले जाएं! वह ले जाएगी, लोगों की बिल्कुल फिकर न करेगी। और आप लोगों की फिकर करते रहेंगे और मौत लोगों की बिल्कुल फिकर न करेगी। आपका सौदा महंगा हो जाएगा। जब मौत लोगों की फिकर नहीं करती तो जिंदगी भी क्यों फिकर करे? जिंदगी को भी फिकर नहीं करनी चाहिए। जब मौत तक फिकर नहीं करती, तो जिंदगी को तो करनी ही नहीं चाहिए।
लेकिन हम डरे हुए हैं, हमें चारों तरफ लोगों के चेहरे ख्याल में रहते हैं। हम उन्हीं को देख कर कपड़े पहनते हैं, उन्हीं को देख कर हंसते हैं,

उन्हीं को देख कर रास्तों पर चलते हैं। हमने एक मुखौटा बनाया हुआ है। हम एक एक्टिंग कर रहे हैं, जो चौबीस घंटे लोगों की मांग पूरी कर रही है। स्टेज पर जो एक्टर काम करते हैं, वे ही लोगों की मांग पूरी नहीं कर रहे हैं, हम भी लोगों की मांग पूरी कर रहे हैं। चारों तरफ लोग हैं, वे कह रहे हैं--ऐसे कपड़े पहनो, ऐसे उठो, ऐसे बैठो, ऐसे जीओ। सिर्फ एक बात वे छोड़ देते हैं, वे यह नहीं बताते कि कैसे मरो। क्योंकि उस पर उनका कोई बस नहीं है। जीना तो वे सब तरफ से घेर लेते हैं।
तो मैं ध्यान करने वाले मित्रों को कहूंगा, लोगों की फिकर मत करना।

एक और अंतिम प्रश्न, फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
एक मित्र ने पूछा है कि आपने जो ध्यान के लिए कहा, इससे चरित्र में और जीवन में कोई फर्क होगा कि नहीं होगा?

जरूर होगा! और इसके अतिरिक्त चरित्र और जीवन में फर्क और किसी रास्ते
से होते ही नहीं हैं। असल में ध्यान बदल देता है भीतर की चेतना को। और जब भीतर की चेतना बदलती है, तो बाहर का आचरण अपने आप बदल जाता है। रुक नहीं सकता बिना बदले। जब आप बदल जाएंगे तो आपका आचरण पुराना कैसे रह सकता है? बदलेगा। आपका पुराना आचरण आपकी चेतना से जुड़ा हुआ था। और जब चेतना ही बदल गई भीतर, तो आचरण वही नहीं रह सकता।
अब एक आदमी सिगरेट पी रहा है। सारी दुनिया उसको समझाए कि मत पीओ। मैं मानता हूं, वह रुकेगा नहीं। और अगर रुक जाएगा तो सिगरेट की जगह और कुछ इसी तरह का बेकार काम शुरू करेगा। अगर धुआं नहीं निकालेगा तो पान चबाएगा; अगर पान नहीं चबाएगा तो गाद चबाएगा; अगर गाद नहीं चबाएगा तो लोगों से बैठ कर बकवास करेगा। लेकिन वह होंठ चलाने की जो बेकाम आदत है वह जारी रहेगी। वह रुक नहीं सकता उससे। क्योंकि सिगरेट पीने वाला यह कह रहा है कि वह खाली नहीं बैठ सकता। खाली बैठने से बेचैनी होती है। सिगरेट खालीपन का सहारा है, नॉन आक्युपाइड के लिए आक्युपेशन है। जब आप बिल्कुल बेकार हैं और कोई काम नहीं, तब आप सिगरेट से काम खोज रहे हैं। और कोई नहीं कह सकता कि सिगरेट पीने वाला बुरा ही कर रहा है। क्योंकि अगर सब सिगरेट पीने वालों से सिगरेट छीन ली जाए, तो वे अनआक्युपाइड लोग और भी खतरनाक आक्युपेशंस खोज सकते हैं। हिटलर सिगरेट नहीं पीता था। और मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अगर वह सिगरेट पीता होता तो शायद दूसरा महायुद्ध न होता। हिटलर सिगरेट भी नहीं पीता, मांस भी नहीं खाता, अंडा भी नहीं खाता, हिटलर बड़ा साधु पुरुष था। पांच बजे सुबह उठता। कोई बुरी चीज नहीं खाता। चाय-काफी भी नहीं पीता। शराब तो बहुत दूर की बात है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उसने अपने को इतना अच्छा बना लिया था, जब कि भीतर सब बुरा था, तो फिर बुरे को बहने के लिए नये रास्ते खोजने पड़ते हैं।
नहीं, ऐसे सिगरेट ऊपर से छीनी तो खतरा है। सिगरेट जानी चाहिए भीतर से।
और अगर भीतर मन शांत हो जाए तो आपको अनआक्युपाइड होने में, खाली होने में इतना आनंद आने लगेगा कि सिगरेट के धुएं से आप उसको खराब नहीं करेंगे। इसलिए मेरे लिए सवाल सदा भीतर से है। एक आदमी मांस खाता है। मैं नहीं कहता, मत खाओ। क्योंकि जो मांस खा रहा है वह खतरनाक आदमी है। अगर वह मांस नहीं खाएगा तो किसी आदमी की गर्दन दबाएगा। अगर सीधी नहीं दबाएगा, ब्याज लेकर दबाएगा। अगर ब्याज लेने की तरकीब न मिलेगी तो और कोई जाल खोजेगा जिसमें वह दबाए किसी को। उससे तो अच्छा है वह मांस ही खा ले। ये जितने लोग गैर-मांसाहारी हैं जन्म से, वे खतरनाक आदमी हो जाते हैं, अच्छे आदमी नहीं रह जाते। उसका कारण है कि उनको दबाना पड़ता है दूसरी तरफ।
नहीं, मैं कहता हूं, भीतर मन शांत हो, आनंदित हो, तो किसी को दुख देने
की वृत्ति विलीन हो जाती है, तब आप मांस नहीं खा सकते। वह छोड़ना नहीं पड़ेगा, छूटेगा।
ध्यान का मूल सूत्र है कि आचरण बदलना नहीं पड़ता, बदल जाता है। आचरण बड़ी साधारण चीज है। असली चीज है अंतस। और जब भीतर आदमी बदलता है तो बाहर आचरण बदलता है। आचरण बदलेगा।

उन मित्र ने पूछा है कि कहीं यह थोड़ी देर के लिए एक विश्राम, थोड़ी देर
के लिए एक मनोरंजन होकर तो न रह जाएगा?

नहीं, इसे थोड़ी देर होने दें, यह आपकी पूरी जिंदगी को पकड़ लेगा। यह ध्यान ऐसा मेहमान है कि एक दफे भीतर घुस जाए, फिर आप इसको बाहर न कर पाएंगे। एक दफे भीतर भर घुस जाए, फिर इसे आप बाहर कर ही न पाएंगे। क्योंकि अपने साथ इतना आनंद लाता है, आनंद को कौन बाहर कर सकता है? अपने साथ इतनी शांति लाता है कि शांति को कौन बाहर कर सकता है? एक बार प्रयोग करके इसे भीतर आ जाने दें, फिर यह कभी बाहर न जा सकेगा। और कोई अगर कहेगा भी कि इसे बाहर हम कर देते हैं और आप करोड़ रुपये ले लो, तो भी आप करोड़ रुपये लेकर इसे देने को राजी न होंगे।

सुना है मैंने कि महावीर के पास उस जमाने का एक सम्राट श्रेणिक मिलने आया। और उस श्रेणिक ने महावीर से कहा कि मैंने सब पा लिया है, अब मैं यह ध्यान की बड़ी चर्चा सुनता हूं, यह ध्यान क्या बला है? कितने में मिल सकता है? मैं खरीदने को तैयार हूं।
श्रेणिक था, सम्राट था, चीजें खरीदने का आदी था। महावीर ने कहा, खरीदने से न मिलेगा, क्योंकि गरीब से गरीब आदमी भी बेचने को राजी नहीं होगा।
उस सम्राट ने कहा, जीत लेंगे, फौजें लगा देंगे। यह है क्या बला ध्यान? महावीर ने कहा, फौजें आदमी को काट डालेंगी, ध्यान को नहीं काट पाएंगी। फिर भी, उसने कहा, मुझे कोई रास्ता बताओ! मैंने सब पा लिया, अब यह ध्यान
भर रह गया है, यह खटकता है कि अपने पास ध्यान नहीं है। यह है क्या ध्यान? महावीर ने कहा कि तुम धन पाने के आदी हो, जमीन पाने के आदी हो, उसी तरह ध्यान को पाने चले हो? उसी ढंग से? तुम नहीं पा सकोगे। तुम्हारे गांव में एक गरीब आदमी है, उसके पास चले जाओ। महावीर ने नाम बता दिया और कहा कि उसे ध्यान मिल गया है, उससे तुम खरीद लो।
तो श्रेणिक उसके दरवाजे पर गया, रथ से उतरा, उसने देखा बहुत गरीब आदमी
का झोपड़ा है। उसने कहा, खरीद लेंगे, पूरे आदमी को खरीद लेंगे, ध्यान की क्या बात है! उसने बड़े हीरे-जवाहरात जाकर उसके दरवाजे पर डलवा दिए और कहा कि सम्हाल! और चाहिए हो तो और दे देंगे, जो तेरी मांग हो, ले ले। ध्यान दे दे!
उस आदमी ने कहा, बड़ी मुश्किल में डालते हैं आप। ध्यान तो आप अपना सारा साम्राज्य दे दें, तो भी मैं न दे सकूंगा। एक तो इसलिए न दे सकूंगा कि उससे बड़ी कोई संपत्ति नहीं। और इसलिए भी न दे सकूंगा कि वह मेरी आत्मा की आत्मा है उसे निकाल कर दे भी कैसे सकता हूं? अगर कोई लेना भी चाहे, उसे दे भी नहीं सकता हूं।
ध्यान, सब बदल जाता है, सब व्यक्तित्व। लेकिन साहस की जरूरत है।

अब हम ध्यान के लिए बैठेंगे।
जो लोग सिर्फ देखने के लिए आ गए हों, वे बीच से हट जाएंगे और किनारे पर खड़े हो जाएंगे। देखने में कोई एतराज नहीं है। देखते-देखते भी उन्हें कुछ हो सकता है। लेकिन इतना ख्याल रखेंगे कि जो लोग भी किनारे पर खड़े रहें, उनके कारण किसी को बाधा न पड़े। इतनी सज्जनता बरतेंगे तो बड़ी कृपा होगी कि उनके कारण किसी को बाधा न पड़े। वे चुपचाप खड़े देख सकते हैं। लेकिन बीच में कोई ऐसा आदमी न खड़ा रहे जो ध्यान नहीं कर रहा है। क्योंकि उसके कारण, यहां जो सारी तरंगें पैदा होती हैं ध्यान करने वालों की, उसको बाधा पड़ती है। जिसको ध्यान नहीं करना है वह चुपचाप किनारे पर खड़ा हो जाए। और जिन मित्रों को ध्यान करना है वे अपनी-अपनी जगह खड़े हो जाएं और जगह बना लें और बातचीत बिल्कुल न करें।
बातचीत न करें, अपनी-अपनी जगह चुपचाप खड़े हो जाएं। थोड़ा-थोड़ा फासले पर खड़े होंगे जो ध्यान करने के लिए खड़े हो रहे हैं, ताकि कोई किसी को छुए नहीं। और अपने चारों तरफ थोड़ी जगह बना लें, क्योंकि आप हिलने-डुलने लगें,

नाचने लगें, तो किसी को धक्का न लगे। और जिन लोगों को चुपचाप देखना हो, वे थोड़े दूर होकर खड़े हों, ताकि यहां जगह रह जाए। थोड़े हट कर खड़े हो जाएं।
और दर्शक मित्रों से फिर प्रार्थना कर देता हूं कि आपके कारण जरा भी बाधा न पड़े, इसका ख्याल रखेंगे, बात नहीं करेंगे, चुपचाप खड़े होकर देखते रहेंगे। जो दर्शक हैं वे थोड़ा दूर हट जाएं, ताकि साफ हो सके कि कौन ध्यान कर रहा है। जो दर्शक हैं वे थोड़े पीछे हट जाएं, उन्हें चुपचाप देखना है तो थोड़ा दूर हट कर खड़े हों, इतने पास खड़े न हों। और जो मित्र ध्यान करने खड़े हैं वे भी अपने आसपास थोड़ी जगह बना लें, क्योंकि आज दूसरा दिन है, आपको थोड़ी ज्यादा ताकत लगानी है। कल जिन्होंने हिम्मत नहीं की उन्हें भी आज हिम्मत करनी है।
सबसे पहले आंख बंद कर लें, जो लोग ध्यान में जा रहे हैं वे आंख बंद कर लें। यह आंख चालीस मिनट के लिए बंद हो रही है। अब इस चालीस मिनट में आंख नहीं खोलनी है। हां, बीच में खड़े हों तो आंख खोल कर न खड़े रहें। जो लोग यहां ध्यान के घेरे में खड़े हैं वे आंख बंद कर लें, वहां कोई एक व्यक्ति भी आंख खोले न खड़ा रहे। आंख बंद करिए, अन्यथा बीच से हट जाइए। और यह आंख चालीस मिनट के लिए बंद होती है। इस बीच कुछ भी हो जाए, आपको आंख नहीं खोलनी है, अन्यथा बाधा पड़ेगी।
आंख बंद कर ली है, अब तीन बार अपने मन में संकल्प कर लें--मैं प्रभु को साक्षी रख कर संकल्प करता हूं कि ध्यान में अपनी पूरी शक्ति लगाऊंगा; मैं प्रभु को साक्षी रख कर संकल्प करता हूं कि ध्यान में अपनी पूरी शक्ति लगाऊंगा; मैं प्रभु को साक्षी रख कर संकल्प करता हूं कि ध्यान में अपनी पूरी शक्ति लगाऊंगा। इस संकल्प को चालीस मिनट तक कम से कम याद रखना। पूरी शक्ति लगाएंगे, तो ही परिणाम आना शुरू होगा। और लोगों को भूल जाना। प्रभु को स्मरण करना हो तो लोगों को भूल जाना जरूरी है। कौन क्या देख रहा है खड़े होकर, उसकी चिंता नहीं करना। अपने काम को पूरा कर लेना।
पहले दस मिनट फास्ट ब्रीदिंग करनी है, तेज श्वास लेनी और छोड़नी है। किन्हीं को सुविधा हो तो वे नाक से लेकर मुंह से भी छोड़ सकते हैं। किसी को सुविधा हो तो नाक से लेकर नाक से भी छोड़ सकता है। ध्यान में रखने की एक ही बात है कि इतने जोर से लेनी है कि धीरे-धीरे आपका पूरा शरीर और पूरा मन सिर्फ श्वास ही लेने लगे।
शुरू करें। दस मिनट के लिए अपनी पूरी शक्ति श्वास पर लगा दें। गहरी श्वास फेंकें बाहर, तेजी से भीतर ले जाएं, तेजी से बाहर फेंकें। बस फेफड़े में श्वास भर जाए, बाहर फेंक दें। रोकनी नहीं है। बाहर निकल जाए, फिर फेफड़े में ले जाएं। जो मित्र ध्यान करने खड़े हैं वे पूरी ताकत लगा दें। ऐसा लगने लगे कि आप सिर्फ एक धौंकनी रह गए हैं जो श्वास ले रही, छोड़ रही। एक दस मिनट गहरी श्वास लेने से तत्काल परिणाम शुरू हो जाएगा। गहरी श्वास फेंकें और लें, लें और छोड़ें... धीमे नहीं चलेगा, कोई धीमे कर रहा है तो बेहतर है न करे... जोर से लें और जोर से छोड़ें... जितने जोर से श्वास की चोट पड़ेगी, कुंडलिनी उतनी ही शीघ्रता से जाग्रत होनी शुरू होती है। और जब कुंडलिनी आपके भीतर जागेगी तो पूरा शरीर इलेक्ट्रिफाइड मालूम पड़ने लगेगा, जैसे बिजली दौड़ने लगी। यह बिजली दौड़ने लगे तो घबड़ाएं न...
हां, गहरी श्वास लें और छोड़ें, श्वास लें और छोड़ें... जितना फास्ट हो सके... अपने को थका डालना है पूरी तरह... जितना फास्ट हो सके... शरीर हिलता है तो फिकर न करें, श्वास तेजी से लेंगे, शरीर हिलने लगेगा...
तेज श्वास लें, तेज छोड़ें... तेज श्वास लें, तेज छोड़ें... और तेज, और तेज,
और तेज... पूरी शक्ति लगा दें, यूं कि पसीना-पसीना हो जाएं... परमात्मा के द्वार पर थक कर गिरेंगे तो ही गिर पाएंगे... पूरी शक्ति लेगा देनी है, थका डालना है...
बहुत ठीक, बहुत मित्र बहुत ठीक से कर रहे हैं। कुछ मित्र धीरे कर रहे हैं, वे तेजी से लें। नहीं तो परिणाम नहीं होता, फिर करना बेकार हो जाता है। तेज श्वास लें और तेज छोड़ें... सारा शरीर कंपने लगे, उसकी फिकर न करें... श्वास लें और छोड़ें, श्वास लें और छोड़ें, श्वास लें और छोड़ें... सारा शरीर बिजली से भर जाएगा, मूव करने लगेगा, घूमने लगेगा, उसकी चिंता न करें...

और तेज, और तेज... आपसे ही कह रहा हूं, किसी और से नहीं... और तेज, और तेज,
और तेज, और तेज, और तेज... श्वास ही श्वास रह जाए... बस श्वास ही ले रहे हैं, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं... श्वास ही ले रहे हैं, और कुछ भी नहीं कर रहे हैं... और दूसरों की फिकर छोड़ दें, आप ही अकेले यहां हैं, ऐसा समझें और गहरी श्वास लें...
गहरी श्वास... भीतर शक्ति जगनी शुरू हो जाएगी... गहरी श्वास लें और शक्ति जगने लगे तो भयभीत न हों... शरीर शक्ति के साथ डोलने लगेगा, भयभीत न हों... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, और गहरी श्वास... जितनी ताकत आपमें हो, पूरी लगा दें, कुछ पीछे बचाएं नहीं...
पांच मिनट बचे हैं, पांच मिनट पूरी ताकत लगा दें, फिर हम दूसरे चरण में प्रवेश करेंगे... और जब पहले में आप पूरे थक जाएंगे तभी दूसरे में जा सकेंगे।
और गहरी श्वास... शरीर छलांग लगाने लगे, हिलने लगे, हाथ-पैर ऊंचे-नीचे होने लगें, फिकर न करें... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास... आंख बंद ही रहेगी, आप अपने शरीर की भी फिकर न करें देखने की, आंख बंद ही रहेगी... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास... पूरी ताकत लगाएं, जरा भी अपने को बचाएं मत, मैं आपको थका ही डालना चाहता हूं, ताकि आखिरी चरण में प्रभु के द्वार पर थक कर गिर जाएं असहाय... और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास...
तीन मिनट बचे हैं, पूरी ताकत लगाएं, फिर हम दूसरे चरण में प्रवेश करें... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास... कोई चिंता न करें, शरीर हिलने लगे, हाथ-पैर ऊंचे-नीचे होने लगें, जो भी होता हो हो, आप अपनी श्वास पर पूरा ध्यान लगा दें, पूरी ताकत लगा दें... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास...
दो मिनट बचे हैं, ताकत पूरी लगा दें... गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास... श्वास ही श्वास रह जाए, श्वास ही श्वास रह जाए, आप एक यंत्र मात्र रह जाएं श्वास के, और कुछ भी नहीं है, श्वास भीतर जाती, बाहर जाती। इसे पूरी ताकत से करें तो आप और श्वास अलग मालूम होने लगेंगे, साफ दिखाई पड़ने लगेगा--श्वास अलग, मैं अलग; श्वास अलग, मैं अलग; श्वास अलग, मैं अलग... लेकिन ताकत पूरी लगाएं तभी यह साफ फासला मालूम पड़ेगा... श्वास अलग, मैं अलग... शक्ति पूरी लगा दें... श्वास अलग, मैं अलग... गहरी श्वास... एक मिनट बचा है, पूरी ताकत लगाएं... मैं एक दो तीन कहूं तब आप पूरी ताकत लगा देंगे, जितनी आपकी सामर्थ्य हो...
एक! पूरी ताकत लगा दें। दो! पूरी ताकत लगा दें। तीन! पूरी ताकत लगा दें, पूरी ताकत लगा दें, श्वास ही श्वास रह जाए, श्वास ही श्वास रह जाए...

और अब हम दूसरे सूत्र में प्रवेश करते हैं। श्वास जारी रहेगी, श्वास तेजी से जारी रहेगी और अब शरीर को आप ढीला छोड़ दें। शरीर को जो करना हो करने दें। जैसे ही शरीर कुछ करने लगेगा, वैसे ही शरीर अलग, आप अलग, दिखाई पड़ने लगेगा। शरीर को छोड़ दें... रोता हो, रोए; हिलता हो, हिलता है; नाचता हो, नाचता है... जो भी हो रहा है, शरीर का कोई भी अंग कुछ भी करना चाहता है, उसे ढीला छोड़ दें, उसका सहयोग करें, उसे करने दें... शरीर मूव करने लगेगा, झूमने लगेगा, छोड़ दें... गहरी श्वास जारी रहे और शरीर को बिल्कुल मुर्दे की तरह छोड़ दें... जो भी शरीर में होना हो, होने दें... जब शरीर अपने आप यंत्र की तरह कंपने लगता है, नाचने लगता है, रोने लगता है, हंसने लगता है, तो भीतर साफ होने लगता है--मैं अलग, शरीर अलग। सुना है बहुत कि शरीर अलग है, उसे देखने का मौका है, उसे देख लें।
छोड़ें, दस मिनट के लिए अब शरीर को बिल्कुल छोड़ देना है... और वह जो भी करे उसमें सहयोग करें, उसे करने दें वह जो भी करे... रोने लगेगा कोई, रोए; हंसने लगेगा कोई, हंसे; नाचने लगेगा कोई, नाचे; गिर पड़ेगा कोई, गिर जाए... जो भी शरीर को करना है, आप उसमें जरा भी बाधा न दें... श्वास जारी रहेगी, श्वास जारी रहेगी, श्वास गहरी जारी रहेगी और शरीर को छोड़ दें...
हां, शरीर नाचे, नाचने दें; डोले, डोलने दें; गिर जाए, गिर जाने दें... ताकत पूरी लगाएं, छोड़ें...

और देखें बीच में एक भी व्यक्ति आंख न खोले, आपसे पहले कहा बाहर हट जाएं, कोई को अगर आंख खोलनी है, बीच के वातावरण को खराब न करें।
पूरी ताकत लगा दें, शरीर को जो होता है होने दें... ध्यान न लें कि कोई कहेगा पागल हो गए हैं, ध्यान न लें कि कोई कहेगा यह आप क्या कर रहे हैं, शरीर जो कर रहा है उसे करने दें... छोड़ें, संकोच न करें... बहुत से मित्र संकोच में रोक लेते हैं, फिर प्रयोग पूरा नहीं हो पाएगा... छोड़ दें... कुछ मित्रों ने छोड़ा है... छोड़ें, बाकी लोग भी छोड़ दें...
बातचीत न करें, जो मित्र देख रहे हैं वे कम से कम चुपचाप खड़े रहें, इतनी कृपा करें, चुपचाप देखते रहें।
छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ें... आपसे ही कह रहा हूं, किसी और से नहीं... बिल्कुल छोड़ दें, शरीर को जो होता है, होने दें... रोना आए, रोकें नहीं; हंसना आए, रोकें नहीं; शरीर नाचता हो, नाचने दें, रोकें नहीं... छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... छोड़ें, छोड़ें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें... पांच मिनट बचे हैं, शरीर को पूरी तरह छोड़ दें... शरीर को जो करना हो करने दें... शरीर को छोड़ दें, शरीर को छोड़ दें, शरीर को छोड़ दें... रोता है, रोए; हंसता है, हंसे; नाचता है, नाचे... छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें, छोड़ दें... बिल्कुल छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें...
देखें और दर्शक बीच में न आएं, अंदर न आएं, दर्शक बीच में अंदर न आएं, इतनी कृपा करें। बाहर खड़े रहें। इतना पागलपन न करें, बाहर खड़े रहें, बाहर से देखें, बीच में बाधा न डालें, बीच में न आएं।
छोड़ें... चार मिनट बचे हैं, पूरी तरह छोड़ दें, फिर हम तीसरे सूत्र में प्रवेश करें... छोड़ दें बिल्कुल शरीर को, जो होता है होने दें, जो होता है होने दें... शरीर हंसता है, हंसने दें; रोता है, रोने दें; चिल्लाता है, चिल्लाने दें; नाचता है, नाचने दें; शरीर की कोई भी क्रिया में बाधा न डालें, होने दें... छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ दें... शरीर जब अपने से काम करने लगेगा तब भीतर साफ दिखाई पड़ेगा--मैं अलग, शरीर अलग; मैं भिन्न, शरीर भिन्न... छोड़ें, छोड़ें...
और दर्शक कृपा करें, भीतर न प्रवेश करें, बाहर खड़े होकर देखते रहें।
छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ दें... पूरी तरह छोड़ें, अन्यथा चूक जाएंगे। कुछ मित्र एकदम छोड़े हुए हैं, कुछ अपने को रोके हुए हैं, रोकें नहीं, छोड़ दें, जो भी होता है होने दें... ठीक है, ठीक है, छोड़ें, बिल्कुल छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें...
तीन मिनट बचे हैं, पूरी तरह छोड़ें... शरीर डोलने लगे, नाचने लगे, रोने लगे, हंसने लगे, शरीर जो भी करता है करने दें, शरीर जो भी करता है करने दें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें...
देखें बात न करें आप, चुपचाप खड़े होकर देखते रहें।
छोड़ दें, शरीर जो करता है करने दें, शरीर जो करता है करने दें... रोकें नहीं और किसी का संकोच न लें, ये सब देखने वाले कोई भी साथी नहीं हैं, उन्हें देखने दें, उनका संकोच आप न लें...
और कृपा कर कोई बीच में न आए!
छोड़ दें, छोड़ दें, दो मिनट बचे हैं, छोड़ें, फिर हम तीसरे सूत्र में प्रवेश करें... छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, शरीर को छोड़ दें, जो हो रहा है होने दें, शरीर को जो हो रहा है होने दें... छोड़ दें, छोड़ दें, छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, शरीर जो कर रहा है करने दें, भीतर साफ दिखाई पड़ेगा--शरीर अलग, मैं अलग...
आप बात न करें, इतनी कृपा करें, चुपचाप खड़े रहें। चुपचाप खड़े रहें कम
से कम, बात न करें, चुपचाप खड़े रहें। और दर्शक कोई बीच में न आएं, इतनी नासमझी न करें। देख रहे हैं, यही काफी नासमझी है; करते तो समझदारी होती। तो देखते रहें, बाहर खड़े रहें।
छोड़ें, एक मिनट बचा है, पूरी तरह छोड़ दें, शरीर जो करता है करने दें, फिर हम तीसरे सूत्र में प्रवेश करेंगे... छोड़ें, छोड़ें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें, हंसता है, रोता है, नाचता है, जो करता है करने दें... छोड़ें, छोड़ें, बिल्कुल छोड़ दें, जरा भी रोकें नहीं... मैं एक दो तीन कहूंगा, आप छोड़ें...

एक! छोड़ें पूरी तरह। दो! छोड़ दें। तीन! छोड़ दें, जो भी हो रहा है होने दें... छोड़ दें, छोड़ दें, जो भी हो रहा है होने दें... छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें... छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें... छोड़ दें...

अब तीसरे सूत्र में प्रवेश करना है, श्वास जारी रहेगी, शरीर की गति जारी रहेगी। अपने भीतर दस मिनट तक पूछना है--मैं कौन हूं? पूरी ताकत लगानी है कि मन थक जाए, मन के भीतर पूछें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मन के भीतर ही पूछें--मैं कौन हूं? और शक्ति पूरी लगा दें।

देखें, दर्शक भीतर न आएं। सब पढ़े-लिखे लोग हैं, आपको कहना नहीं चाहिए। बाहर रहें, दर्शक बाहर रहें, दूर से देखते रहें।
मैं कौन हूं? दस मिनट मन की पूरी ताकत भीतर लगा देनी है। श्वास से अलग
हम हुए, शरीर से हम अलग हुए। मैं कौन हूं? दस मिनट तक तेजी से पूछें, मन से भी अलग हो जाएंगे। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... श्वास जारी रहेगी, शरीर कंपता रहेगा, भीतर पूछें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... अपनी पूरी ताकत भीतर लगा दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... कोई फिकर नहीं, पूरी ताकत लगाएं दस मिनट, फिर हम विश्राम करेंगे, दस मिनट अपने को थका लें, जो जितना थक जाएगा...
कितने पागल लोग हो, तुमसे कह रहे हैं कि बाहर रहो!
मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें, जितना थक जाएंगे उतनी शांति में प्रवेश हो सकेगा, दस मिनट के बाद फिर हम शांत हो जाएंगे... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें--मैं कौन हूं? पूछें अपने भीतर--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... शरीर को घूमने दें, श्वास को तेज रहने दें, भीतर पूछें--मैं कौन हूं? ...
एक पांच मिनट की बात है, पूरी ताकत लगा दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... कोई की फिकर न करें, अपनी फिकर करें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... थका डालना है बिल्कुल पांच मिनट में, ताकि हम गहरी शांति में जा सकें... मैं कौन हूं? ... थका डालें, थका डालें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...
कितने नासमझ हो लड़के बिल्कुल तुम, बाहर निकलो!
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें, पांच मिनट के लिए पूरी ताकत लगा दें... मैं कौन हूं? ... शरीर नाचे, नाचने दें; रोए, रोने दें; हंसे, हंसने दें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... बिल्कुल पागल हो जाएं, पूछें--मैं कौन हूं? एक तूफान उठा दें भीतर--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... बिल्कुल पागल हो जाएं, सब भूल जाएं, एक ही सवाल रह जाए--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... बिल्कुल तूफान उठा दें, जितना बड़ा तूफान, उतनी बड़ी शांति में जाना हो सकेगा, इस मौके को न चूकें, पूरी ताकत लगा दें...
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं... तीन मिनट बचे हैं, ताकत बढ़ाएं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... बिल्कुल पागल हो जाएं, अपने भीतर पूरी तरह पूछें-- मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी ताकत लगा दें, दो मिनट बचे हैं, फिर हम विश्राम करेंगे... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... दो मिनट, पूरी ताकत लगा दें, बिल्कुल पागल हो जाएं... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...
देखें, भीतर कोई प्रवेश न करे!
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... थका डालें, अपने को बिल्कुल थका डालें, सारी ताकत लगा दें, एक मिनट और बचा है, पूरी ताकत लगा दें, बिल्कुल पागल हो जाएं, अपने को बचाएं नहीं, पूरी ताकत लगा दें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...

एक! पूरी ताकत लगाएं। दो! पूरी ताकत लगाएं। तीन! पूरी ताकत लगा दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ...

अब छोड़ दें, अब विश्राम में चले जाएं। अब दस मिनट के लिए सब छोड़ दें, शरीर को भी छोड़ दें, श्वास को भी छोड़ दें, पूछना भी छोड़ दें, दस मिनट के लिए बिल्कुल जैसे मुर्दा हो गए।
और देखें, दर्शक अब कम से कम दस मिनट कोई बात न करें। दस मिनट, दर्शक कम
से कम दस मिनट अब चुप हो जाएं।
बिल्कुल दस मिनट के लिए जैसे मिट गए, समाप्त हो गए, जैसे मर गए, जैसे हैं ही नहीं। खड़े रहते बने, खड़े रहें; गिरने का भाव हो, लेट जाएं, बैठ जाएं। दस मिनट के लिए सब समाप्त हो गया, दस मिनट के लिए सब समाप्त हो गया, जैसे मिट ही गए, समाप्त ही हो गए, सब शून्य हो गया।
भीतर देखते रहें, भीतर देखते रहें, भीतर बहुत कुछ होगा, उसे देखते रहें... शरीर और आत्मा बिल्कुल अलग दिखाई पड़ेंगे, भीतर देखते रहें... भीतर प्रकाश ही प्रकाश भर जाएगा...
देखें, दर्शक जरा चुप रह जाएं। आश्चर्यजनक बात है! एक दस मिनट आप चुप
रह जाएं या बात करनी हो तो चले जाएं।
भीतर प्रकाश ही प्रकाश शेष रह जाएगा और हृदय से आनंद की धारा उठने लगेगी... भीतर देखें, भीतर अनुभव करें, प्रकाश ही प्रकाश, आनंद ही आनंद, शांति ही शांति, सब मौन हो गया, तूफान जा चुका और गहरी शांति रह गई। इसी शांति में परमात्मा की अनुभूति शुरू होती है, इसी आनंद में प्रभु का द्वार खुलता है, इसी प्रकाश में उसका मार्ग दिखाई पड़ता है... भीतर देखें, भीतर देखें, भीतर देखें, प्रकाश ही प्रकाश, आनंद ही आनंद, शांति ही शांति रह गई है... भीतर देखें, भीतर देखें, भीतर जो भी हो रहा है उसे देखें... प्रकाश ही प्रकाश, शांति ही शांति, आनंद ही आनंद... भीतर देखें, भीतर देखें, यह मौका न चूकें, भीतर ठीक से पहचान लें--यह क्या हो रहा है...
सब मिट गया, सब शांत हो गया... भीतर देखें, भीतर देखें, आनंद ही आनंद, शांति ही शांति, प्रकाश ही प्रकाश... भीतर देखें, भीतर देखें... भीतर, भीतर, बहुत सुना है भीतर क्या है, मौका आया उसे देखें... प्रकाश ही प्रकाश, आनंद ही आनंद, शांति ही शांति... इसी प्रकाश में उसका द्वार दिखाई पड़ेगा, इसी शांति में उसका मार्ग मिलेगा, इसी आनंद में नाचते हुए उसके भीतर प्रवेश हो जाएगा... भीतर देखें, भीतर देखें, इसी आनंद में नाचते हुए उसके मंदिर में प्रवेश हो जाता है... भीतर देखें, भीतर देखें...
मिट गए हैं, समाप्त हो गए हैं, वही शेष रह गया है। आप तो मिट गए, आप तो
खो गए, वही शेष रह गया है... भीतर, और भीतर... शांति ही शांति, आनंद ही आनंद, प्रकाश ही प्रकाश शेष रह गया... मिट गए, समाप्त हो गए, बूंद खो गई सागर में, अनंत शांति शेष रह गई है, असीम प्रकाश शेष रह गया है, अनंत आनंद शेष रह गया है... यही है द्वार उसका, यही है द्वार उसका, ठीक से पहचान लें भीतर... बाहर उसका कोई द्वार नहीं, बाहर उसका कोई मंदिर नहीं... यही है मंदिर उसका, यही है द्वार उसका, ठीक से पहचान लें... शांति ही शांति रह गई, आनंद ही आनंद रह गया, प्रकाश ही प्रकाश रह गया...

अब धीरे-धीरे आंख खोल लें। आंख न खुले तो दोनों हाथ आंख पर रखें और आहिस्ता से आंख खोलें। जो खड़े हैं वे दो-चार गहरी श्वास लेकर धीरे-धीरे बैठ जाएं। जो लेट गए हैं, गिर गए हैं, वे दो-चार गहरी श्वास लें और धीरे- धीरे उठ कर बैठ जाएं। कोई जल्दी न करें, बहुत आहिस्ता से करें, धीरे-धीरे। आंख न खुले तो पहले आंख पर हाथ रखें, बैठते न बने तो पहले दो-चार गहरी श्वास लें, उठते न बने तो पहले दो-चार गहरी श्वास लें। धीरे-धीरे बैठ जाएं, दो-चार बातें आपसे कहनी हैं वह कह दूं, फिर हमारी बैठक पूरी हो जाएगी।
जो पड़े हैं वे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर धीरे-धीरे उठें। जो गिर गए हैं वे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर धीरे-धीरे उठें। जो खड़े हैं वे भी दो-चार गहरी श्वास लें, फिर धीरे-धीरे बैठ जाएं। दो-चार गहरी श्वास लें, फिर धीरे- धीरे बैठ जाएं। जो पड़े हैं वे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर धीरे-धीरे उठ

आएं। दो-चार गहरी श्वास ले लें, श्वास लेकर आंख खोल लें, फिर बैठ जाएं, दो- चार गहरी श्वास ले लें, फिर आहिस्ता से बैठ जाएं।
दो-चार बातें आपसे कहनी हैं।
एक तो कल सुबह हम ध्यान का प्रयोग न कर सकेंगे, क्योंकि दर्शक इतनी भीड़-भाड़ करें, भीतर प्रवेश करें, तो संभव नहीं है। और अगली बार जब यहां ध्यान का प्रयोग हो तो जो लोग ध्यान में उत्सुक हैं, वे अपने नाम अभी से जीवन जागृति केंद्र को दे दें, ताकि उनको पास मिल सके, वे ही लोग भीतर प्रवेश कर सकें। कल ध्यान का प्रयोग सुबह नहीं होगा, सुबह चर्चा ही होगी, ध्यान के संबंध में जो आप पूछेंगे उसकी मैं बात कर लूंगा।
दूसरी बात, जिनको कुछ भी हुआ हो, और बहुत मित्रों को बहुत कुछ हुआ, कल
से भी ज्यादा आपने मेहनत ली। वह तो दुर्भाग्य आपका कि आपका गांव बहुत नासमझ है, अन्यथा कल गति और आगे जा सकती थी, वह नहीं संभव हो पाएगा। जिन मित्रों को कुछ भी हुआ हो वे आज तीन से चार के बीच मुझसे आकर मिल लें, और उन्हें कुछ और आगे गति के लिए समझना हो तो समझ लें। लेकिन जो भी आपको हुआ हो उसकी बात किसी और से आप मत करना, वे नहीं समझ सकेंगे कि आपको क्या हुआ। आप मुझसे बात कर लें और प्रयोग को जारी रखें।
यह प्रयोग अगर तीन सप्ताह आपने किया तो आपकी जिंदगी में कुछ नया शुरू
हो जाएगा। जिन्होंने कल ठीक से किया है उनके लिए कल से भी शुरू हुआ। जिन्होंने आज ठीक किया है उनके लिए आज से भी शुरू हुआ। और अगर तीन सप्ताह आपने किया तो फिर आप छोड़ न सकेंगे। घर में इसे कैसे करेंगे, वह मैं आपको समझा दूं। कमरे को बंद कर लें, छोटा कमरा बंद कर लें, सब द्वार-दरवाजे बंद कर दें। और संभव हो सके तो सारे वस्त्र अलग कर दें। वस्त्रों के कारण शरीर को पूरी गति लेने में बाधा पड़ती है। एक बिस्तर नीचे बिछा लें और उस पर खड़े हो जाएं। बैठ कर प्रयोग न करें, लेट कर न करें। जब प्रयोग आपको तीन सप्ताह में पूरा होने लगे, फिर आप बैठ कर, लेट कर, कैसे भी कर सकते हैं, लेकिन अभी खड़े होकर ही करें। खड़े हो जाएं, आंख बंद कर लें, घड़ी में अलार्म भर दें या घर में किसी को कह दें कि घंटा पूरा होने पर दरवाजा खटखटा दे। और घर के लोगों को कह दें कि रोने की आवाज आए, हंसने की आवाज आए, चिल्लाना आए, तो कोई चिंता नहीं करेगा, कोई दरवाजा नहीं खोलने की कोशिश करेगा। और स्नान करने के बाद ही करें, और करने के पहले पेट में कुछ न डालें तो ठीक होगा, अन्यथा वॉमिट हो सकती है। शरीर बहुत जोर से मूव करे तो जो आपने खाया-पीया है वह फिंक सकता है। इसलिए सुबह सबसे अच्छा है, खाली पेट करें। और रात अगर करना हो तो कम से कम खाने के तीन घंटे बाद करें या खाना फिर बाद में लें, इतना ख्याल रखें और तीन सप्ताह प्रयोग करें।
इस प्रयोग से किसी को भी कुछ पूछने जैसा लगे तो मुझे लिख कर पूछ ले सकता है। यह प्रयोग अदभुत है और यह प्रयोग आपके शरीर की न मालूम कितनी बीमारियों को विदा कर देगा, न मालूम कितनी बीमारियां आपके शरीर की अचानक समाप्त हो जाएंगी--जैसे जल गईं आग में। यह आपके मन के न मालूम कितने रोगों को ऐसे हटा देगा जैसे वे कभी थे नहीं। यह आपके चरित्र में सात दिन के भीतर परिवर्तन लाना शुरू करेगा, नहीं कहता सात साल! सात दिन के भीतर आपको फर्क दिखाई पड़ने लगेगा--जहां क्रोध आता था वहां क्रोध मुश्किल हो जाएगा, जहां झगड़े की वृत्ति थी वहां मैत्री की वृत्ति हो जाएगी, और जो जिंदगी के काम आपको बोझ मालूम पड़ते थे वे बोझ नहीं रह जाएंगे। और यह संसार आपको संसार नहीं, यह संसार आपको बहुत नई आंख से दिखाई पड़ने लगेगा। संसार और परमात्मा दो नहीं हैं, सिर्फ दो तरह की आंखें हैं। बीमार आंख संसार देखती है, स्वस्थ आंख परमात्मा को देखने लगती है, सिर्फ देखने के दो ढंग हैं। एक सात दिन मेरी मान कर करें, फिर आप छोड़ न सकेंगे। इक्कीस दिन मेहनत से करें, उसके बाद आपको करने के लिए मेहनत नहीं लगानी पड़ेगी, बल्कि आप ऐसे ही बैठेंगे द्वार बंद करके तो हो जाएगा।
परमात्मा करे आप सफल हो सकें, परमात्मा करे आप साहस कर सकें, परमात्मा करे आप संकल्प कर सकें।
हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

धर्म साधना के सूत्र
तीसरा प्रवचन

परमात्मा की खोज

नीत्शे ने कहा हैः गॉड इ.ज डेड, ईश्वर मर गया है। लेकिन जिसके लिए ईश्वर मर गया हो उसकी जिंदगी में पागलपन के सिवाय और कुछ भी बच नहीं सकता है। नीत्शे पागल होकर मरा। अब दूसरा डर है कि कहीं पूरी मनुष्यता पागल होकर न मरे! क्योंकि जो नीत्शे ने कहा था, वह करोड़ों लोगों ने स्वीकार कर लिया।
आज रूस के बीस करोड़ लोग समझते हैं--गॉड इ.ज डेड, ईश्वर मर चुका है। चीन
के अस्सी करोड़ लोग रोज इस बात को गहराई से बढ़ाए चले जा रहे हैं--गॉड इ.ज डेड, ईश्वर मर गया है। यूरोप और अमरीका की नई पीढ़ियां, भारत के जवान भी, ईश्वर मर गया है, इस बात से राजी होते जा रहे हैं। और मैं यह कहना चाहता हूं कि नीत्शे पागल होकर मरा, कहीं ऐसा न हो कि पूरी मनुष्यता को भी पागल होकर मरना पड़े। क्योंकि ईश्वर के बिना न तो नीत्शे जिंदा रह सकता है स्वस्थ होकर और न कोई और जिंदा रह सकता है।
असल में ईश्वर के मरने का मतलब ही यह होता है कि हमारे भीतर जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुंदर है, जो भी शुभ है, जो भी सत्य है, उसकी खोज मर गई। ईश्वर के मरने का यही मतलब होता है कि जिंदगी में रोशनी और प्रकाश की खोज मर गई। ईश्वर के मरने का यही मतलब होता है कि हम अपने शरीर होने पर राजी हो गए हैं और हमने अपनी आत्मा की खोज बंद कर दी है। हम वस्त्रों पर राजी हो गए हैं और हमने प्राणों की खोज बंद कर दी है। मंदिर अब भी खड़े हैं और उन मंदिरों में अब भी घंटियां बज रही हैं। आज भी चर्च हैं और उन चर्चों में आज भी परमात्मा को पुकारा जा रहा है। लेकिन आदमी के प्राणों का मंदिर तो गिरा हुआ दिखाई पड़ता है और आदमी की आत्मा का चर्च अब कहीं दिखाई नहीं पड़ता। पत्थर की दीवारें रह गई हैं, और उनमें किराए के पुजारी परमात्मा का नाम भी ले रहे हैं। लेकिन आदमी के प्राणों की प्यास और आदमी के प्राणों का प्रेम परमात्मा की तरफ अर्पित होना बंद हो चुका है। और इस सत्य को अगर ठीक से न समझा जा सके, तो शायद फिर हम उस प्रेम को दुबारा जगा भी न सकेंगे। जो बीमार ऐसा समझ ले कि वह स्वस्थ है, वह फिर बीमारी का इलाज करवाने नहीं जाता है। और जो अंधा समझ ले कि उसके पास आंखें हैं, वह फिर आंखों की तलाश क्यों करेगा?
इसलिए जब मैं आपसे यह कहता हूं तो आपके मन को बहुत तकलीफ होगी--वह तकलीफ मैं देना चाहता हूं--कि आपके प्राणों का मंदिर गिर चुका है और मंदिर में अब सिर्फ किराए के पुजारियों की आवाज के अतिरिक्त और कोई आवाज नहीं है। लेकिन यह कहना इसीलिए चाहता हूं ताकि यह सत्य ख्याल में आ जाए, तो शायद हम प्राणों के मंदिर को बनाने में लग जाएं। और वह जो परमात्मा छोड़ कर चला गया है हृदय को, उसे हम वापस खोजने निकल पड़ें।
लेकिन मंदिरों का पुजारी चाहेगा कि हृदय का परमात्मा न खोजा जाए। क्योंकि जब कोई हृदय के परमात्मा को खोज लेता है तो मंदिर के परमात्मा की फिक्र छोड़ देता है। निश्चित ही, धर्म के ठेकेदार चाहेंगे कि असली परमात्मा की प्रतिमा प्रकट न हो। क्योंकि अगर असली प्रतिमा प्रकट हो जाए तो बाजार में बिकने वाली प्रतिमाओं का क्या होगा? आदमी बहुत बेईमान है। और आदमी ने सबसे बड़ी बेईमानी अपने साथ की है। और वह बेईमानी यह है कि वह नकली परमात्मा से राजी होने को तैयार हो गया। और हम सही को खोजने नहीं जाते, जब तक नकली सब्स्टीट्यूट का काम करता हो। जब तक नकली से काम चल जाता हो, कौन असली को खोजने जाए?
फिर नकली धर्म बहुत सस्ता है। असली धर्म जिंदगी का दांव है। नकली ईश्वर के लिए हमें कुछ भी नहीं खोना पड़ता, असली ईश्वर के लिए हमें अपने को पूरा ही खो देना पड़ता है। नकली ईश्वर से हम खुद कुछ मांगने जाते हैं, असली ईश्वर को सिवाय अपने को देने के और कोई उपाय नहीं है। नकली ईश्वर आसान है, कम्फर्टेबल है, कन्वीनिएंट है, सुविधापूर्ण है। असली ईश्वर खतरनाक है, जिंदा आग है, उसमें जलना पड़ता है, मिटना पड़ता है, राख हो जाना पड़ता है। और

केवल वे ही अपने हृदय के मंदिर में परमात्मा को बुला पाते हैं जो अपने को राख करने के लिए तैयार हैं। इस धर्म की आग का नाम ही प्रेम है। कोई उसे प्रार्थना कहे, कोई उसे साधना कहे, कोई उसे पूजा कहे, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। लेकिन प्राणों में जो प्रेम की आग जलाने को तैयार है, वह परमात्मा को पाने का हकदार हो जाता है। लेकिन हकदार वही होता है जो खुद को खोने को तैयार है। यह बड़ी उलटी शर्त है। शायद इसीलिए हमने परमात्मा को खोजना बंद कर दिया। और शायद इसीलिए नीत्शे जैसे व्यक्ति कह पाते हैं कि नहीं, कोई ईश्वर नहीं है।
कहीं यह अपने को बचाने की कोशिश, कहीं यह अपने को बचाने का तर्क, कहीं
यह अपने को बचाने का आर्ग्युमेंट तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हम अपने को बचाने के लिए ईश्वर की तरफ पीठ करके खड़े हो जाते हैं?
ऐसा ही है! क्योंकि ईश्वर की तरफ जो मुंह करेगा, वह रुक न सकेगा, उसे बढ़ना ही पड़ेगा, उसे पूरा ही समर्पित हो जाना पड़ेगा। जिसने ईश्वर की तरफ आंख की, फिर वह एक क्षण रुक नहीं सकता, वह यात्रा पर निकल पड़ा। फिर तो यात्रा उसे पुकार ही लेगी और खींच ही लेगी।
यह कशिश ठीक वैसी ही है, जैसे कोई छत से छलांग लगा जाए और फिर पूछे कि
छत से छलांग लगाने के बाद जमीन पर पहुंचने के लिए मुझे क्या करना पड़ेगा? हम उससे कहेंगे, कुछ भी न करना पड़ेगा। तुम सिर्फ छलांग लगाओ, तुम सिर्फ एक कदम उठाओ, बाकी जमीन कर लेगी। जमीन का ग्रेविटेशन, जमीन की कशिश, जमीन का गुरुत्वाकर्षण तुम्हें खींच लेगा। सिर्फ एक कदम तुम उठाओ, बाकी जमीन कर लेती है। सिर्फ परमात्मा की तरफ आंख भर उठ जाए, बाकी काम परमात्मा कर लेता है।
लेकिन वह आंख का खतरा है, बड़ी डेंजरस बात है। इसलिए हम पीठ करके खड़े हो जाते हैं। इतना हमारा बस है। हम परमात्मा को पाने के लिए तो कुछ भी नहीं कर सकते, लेकिन खोने के लिए सब कुछ कर सकते हैं।
मुझसे लोग पूछते हैं, ईश्वर को खोजना है!
तो मैं उनसे पूछता हूं, उसे तुमने खोया कहां? क्योंकि जिसे खोया हो उसे खोजा जा सकता है। तुमने उसे खोया कैसे? क्योंकि खोने की कोई तरकीब हो, तो खोजने की तरकीब उससे उलटी ही होती है।
मैं उन्हें एक छोटी सी कहानी कहता हूं, वह मैं आपसे भी कहूं।
एक दिन बुद्ध सुबह-सुबह आए। जैसे आज आप यहां इकट्ठे हो गए हैं, उस गांव
के लोग उन्हें सुनने को इकट्ठे हो गए। वे अपने हाथ में एक रेशमी रूमाल लेकर आए। वे बैठ गए और उन्होंने रेशमी रूमाल में गांठें बांधनी शुरू कर दीं। उन्होंने पांच गांठें बांध दीं। और फिर बैठे हुए लोगों से पूछा कि मैं इन गांठों को खोलना चाहता हूं, क्या करूं? और फिर रूमाल को जोर से खींचा। खींचने से तो गांठें और भी बंध गईं। किसी एक आदमी ने खड़े होकर कहा, कृपा करके खींचिए मत, अन्यथा गांठें और बंध जाएंगी। तो बुद्ध ने कहा, मैं खोलने के लिए क्या करूं? तो उस आदमी ने कहा कि पहले मुझे गांठों को देख लेने दें कि वे किस ढंग से बांधी गई हैं। क्योंकि जो उनके बांधने का ढंग होगा, उससे उलटा उनके खोलने का ढंग है। और जब तक यह पता न हो कि कैसे गांठ बांधी गई है, तब तक खोलने का काम खतरनाक है, उसमें और गांठ बंध सकती है, और उलझ सकती है। पहले गांठ को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि वह कैसी बंधी है, तभी खोलने का काम शुरू करना उचित है।
तो मैं, जो लोग ईश्वर के बाबत पूछते हैं, उनसे कहता हूंः तुमने खोया कहां? तुमने खोया कैसे? गांठ बंधी कैसे?
पर उन्हें कोई भी पता नहीं है; क्योंकि शायद यह खोने की घटना न मालूम कितने जन्मों पहले घटी हो। उन्हें कोई याद नहीं है। उन्हें पता ही नहीं है कि उन्होंने कभी खोया। और ध्यान रहे, जिसे यह भी पता नहीं है कि मैंने परमात्मा को खोया, उसकी खोज कभी आथेंटिक, प्रामाणिक नहीं हो सकती। क्योंकि जिसे हमने खोया ही नहीं है, उसे हम खोजने क्यों निकलेंगे? इसलिए जितने लोग ईश्वर को खोजते दिखाई पड़ते हैं, वे सिर्फ दिखाई पड़ते हैं, खोजने कोई निकलता नहीं। हम खोज उसी को सकते हैं, जिसके खोने की पीड़ा गहन हो गई हो, जिसके अभाव का कांटा जोर से गड़ रहा हो, जिसका विरह अनुभव हो रहा हो। और मिलन का आनंद भी तो केवल उसी के साथ हो सकता है, जिसके विरह की पीड़ा हमने

झेली है। हम ईश्वर के विरह में जरा भी पीड़ित नहीं हैं। कोई भी पीड़ित नहीं है।
हां, लोग पीड़ित हैं। लेकिन उनके पीड़ित होने के कारण बहुत दूसरे हैं। कोई धन के न होने से पीड़ित है, कोई यश के न होने से पीड़ित है, कोई पद के न होने से पीड़ित है, कोई ज्ञान के न होने से पीड़ित है; किसी के कोई और कारण होंगे--स्वास्थ्य नहीं होगा; किसी के कोई और कारण होंगे--बड़ा मकान नहीं होगा; लेकिन ऐसा आदमी खोजे से मुश्किल से कभी मिलता है जो परमात्मा के न होने से पीड़ित है। उस आदमी को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं जो परमात्मा के न होने से पीड़ित है।
क्या हम परमात्मा के न होने से पीड़ित हैं?
कोई भी पीड़ा नहीं। परमात्मा के न होने से हमारा काम बराबर चल रहा है। हां, कभी-कभी किसी दुख में उसका स्मरण आता है। वह भी स्मरण उसका नहीं है, वह भी स्मरण दुख का है और इस आशा का है कि शायद उसके स्मरण से यह दुख दूर हो जाए। इसीलिए सुख में लोग परमात्मा को याद नहीं करते। लोग कहते हैं, दुख में परमात्मा की याद आती है। लेकिन जिस परमात्मा की याद दुख में आती है, वह याद झूठी है। क्योंकि वह दुख के कारण आती है, परमात्मा के कारण नहीं आती। इसलिए धार्मिक आदमी मैं उसको कहता हूं जिसे सुख में परमात्मा की याद आती है। लेकिन सुख में तो सिर्फ उसे ही याद आ सकती है, जिसे उसका अभाव खटक रहा हो, जिसे उसका खोना खटक रहा हो। जिसके पास महल हो, धन हो, सब हो, और फिर भी कहीं कोई खाली जगह हो जो धन से भी न भरती हो, मित्रों से भी न भरती हो, पत्नी से भी न भरती हो, पति से भी न भरती हो। उस एंप्टीनेस में परमात्मा के बीज का पहला अंकुरण होता है--उस खाली जगह में। क्या वह खाली जगह आपके पास है? क्या आपके हृदय का कोई कोना है जो किसी भी चीज से भरता नहीं है, खाली ही रह जाता है? आप सब डाल देते हैं और खाली ही रह जाता है?
नसरुद्दीन के संबंध में मैंने एक कहानी सुनी है। इस फकीर के पास एक दिन एक आदमी आया और उस आदमी ने नसरुद्दीन को कहा, मैं परमात्मा को खोजना चाहता हूं, कोई रास्ता बताओ! लोगों ने कहा है कि तुम रास्ता बता सकते हो। नसरुद्दीन ने कहा, अभी तो मैं कुएं पर पानी भरने जाता हूं, तुम मेरे साथ हो लो। हो सकता है कुएं पर पानी भरते में ही तुम्हें रास्ते का भी पता चल जाए। और अगर पता न चले तो तुम लौट कर मेरे साथ चले आना, मैं तुम्हें रास्ता बता दूंगा। लेकिन ध्यान रखना, लौट कर चले आना, इसके पहले ही चले मत जाना।
उस आदमी ने कहा, आप भी क्या बात करते हैं? मैं परमात्मा को खोजने निकला हूं!
वह नसरुद्दीन के साथ हो लिया। नसरुद्दीन ने दो बाल्टियां अपने हाथ में लीं, रस्सी उठाई और उस आदमी से कहा कि जब तक मैं पानी भर न लूं, तब तक सवाल बीच में मत उठाना। यह तुम्हारे संयम की परीक्षा होगी। फिर लौट कर तुम सवाल पूछ लेना।
उस आदमी ने कहा, मुझे क्या मतलब तुम्हारे पानी भरने से और सवाल उठाने से! मैंने सवाल उठा दिया है कि मैं ईश्वर को खोजना चाहता हूं, रास्ता क्या है?
नसरुद्दीन कुएं पर पहुंचा। उसने एक बर्तन तो कुएं के पाट पर रख दिया।
उस आदमी के मन में ख्याल तो उठा कि यह क्या कर रहा है? क्योंकि उस पाट में कोई तलहटी न थी, वह बॉटमलेस था, वह पोला था दोनों तरफ से! पर उसने सोचा कि मुझे मना किया है प्रश्न पूछने को। तो थोड़ी देर रुका। नसरुद्दीन ने बाल्टी पानी की भरी कुएं से और उस बर्तन में डाली जिसमें कुछ भी रुक नहीं सकता था, क्योंकि वह तो पोला था दोनों तरफ से, उसमें कोई पेंदी न थी। एक बाल्टी पानी नीचे बह गया। नसरुद्दीन ने दूसरी बाल्टी डाली, तब उस आदमी के बर्दाश्त के बाहर हो गया, वह भूल गया कि वचन दिया है कि मैं सवाल नहीं उठाऊंगा। उसने कहा, यह क्या पागलपन कर रहे हैं? इस बर्तन में कभी पानी भरेगा नहीं।
नसरुद्दीन ने कहा, शर्त टूट गई, अब तुम जा सकते हो। क्योंकि मैंने कहा
था जब तक मैं पानी न भर लूं और लौट न आऊं, तब तक तुम सवाल न उठाना।

उसने कहा, तो वह तो शर्त टूटती ही, क्योंकि यह तो कभी भी, कितनी ही जिंदगी पानी भरते रहो, इस बर्तन में भरने वाला नहीं है। मैं तुम जैसा पागल नहीं हूं।
वह आदमी नसरुद्दीन को छोड़ कर चला गया। जाते वक्त नसरुद्दीन ने कहा कि
जो अभी पागल भी नहीं है, वह परमात्मा की खोज पर कैसे निकलेगा?
वह आदमी लौट गया। लेकिन रात नसरुद्दीन का वह वचन कि "जो आदमी पागल नहीं है, वह परमात्मा की खोज पर कैसे निकलेगा?" उसकी नींद पर डोलता रहा, उसके सपनों में घुस गया। उसकी बार-बार करवट बदली और वे शब्द उसे गूंजे और सुनाई पड़े। एक तो वह आदमी पागल था। लेकिन उसे यह लगा कि कितना भी पागल हो, क्या इतना पागल हो सकता है कि ऐसे बर्तन में पानी भरे जिसमें पानी टिकता ही न हो! फिर उसे ख्याल आया कि उस आदमी ने घर से चलते वक्त यह भी कहा था कि अगर तुम मौन से मेरे साथ रहे, तो हो सकता है पानी भरने में ही तुम्हारे सवाल का जवाब भी मिल जाए। कहीं वह जवाब तो नहीं दे रहा था?
तो वह सुबह भोर होने के पहले ही नसरुद्दीन के पास वापस पहुंचा और उसने कहा, मुझे माफ करो, मुझे लगता है कि मुझसे भूल हो गई। मुझे सवाल नहीं उठाना था, मुझे चुपचाप देखना था। कहीं तुम मेरे लिए कोई शिक्षा तो नहीं दे रहे थे?
नसरुद्दीन ने कहा, इससे बड़ी और शिक्षा क्या हो सकती थी! मैं तुम से यही
कह रहा था कि तुम मुझे पागल कह रहे हो, और अपनी तरफ नहीं देखते कि जिस मन में तुम भरते चले जा रहे हो, जिंदगियों से सब कुछ, वह अभी तक खाली का खाली है, उसमें कुछ भी नहीं भर पाया, वह बिना पेंदी का बर्तन है।
एबिस की भांति है हमारा मन, एक खड्ड की भांति, जिसमें नीचे कोई तलहटी नहीं है। बॉटमलेस एबिस, एक गहरी खाई, जिसमें कोई भी नीचे तलहटी नहीं है। जिसमें हम गिरे तो गिरते ही रहेंगे, कहीं पहुंच नहीं सकते, गिरते ही रहेंगे अनंत-अनंत तक, एड इनफिनिटम गिरते रहेंगे और कहीं पहुंचेंगे नहीं। लेकिन इस मन में हमने बहुत सी चीजें भर दी हैं। अब तक कोई चीज भरी नहीं है। बूढ़े का मन भी उतना ही खाली होता है जितना बच्चे का। लेकिन हिसाब कौन लगाए? बल्कि कई बार तो बूढ़े का और भी ज्यादा खाली हो जाता है, क्योंकि जिंदगी भर का अनुभव और भी रिक्तता, और भी खालीपन से भर जाता है। लेकिन हम जोर से भरे चले जाते हैं। हमारा तर्क यह है कि अगर मन खाली है तो और जोर से भरो तो भर जाएगा।
लेकिन अब तक मन जरा भी नहीं भर सका, तो कितने ही जोर से भरने से भी भर नहीं सकेगा। अगर रत्ती भर भी भर गया हो, तो फिर पहाड़ भर भी भर सकता था। लेकिन रत्ती भर भी मन नहीं भरता। मन एक खालीपन है, मन एक एंप्टीनेस है, जिसमें कभी कुछ नहीं भरता।
सिकंदर के बाबत मैंने सुना है कि वह उदास हो गया, क्योंकि उसके एक मित्र ने एक फकीर की खबर उसको लाकर दी थी। उसके मित्र ने कहा था कि मैं एक फकीर के पास से गुजर रहा था, उसने एक खबर भेजी है सिकंदर तुम्हारे लिए। उसने यह कहा है कि मैंने सुना है, सिकंदर पूरी दुनिया जीतने निकला है! तो उस फकीर ने कहा, मेरी खबर सिकंदर से कह देना कि जब तुम पूरी दुनिया जीत लोगे तो फिर क्या करोगे? क्योंकि दूसरी और दुनिया नहीं है।
अभी सिकंदर ने दुनिया जीत नहीं ली थी, अभी सिर्फ जीतने निकला था। लेकिन वह उदास बैठ गया और उसने कहा कि अरे, यह तो मैंने सोचा ही नहीं! अगर मैं पूरी दुनिया जीत लूंगा तो फिर क्या करूंगा? दूसरी दुनिया तो नहीं है। वह उदास हो गया सिकंदर इस ख्याल से भी कि दूसरी दुनिया नहीं है। तो क्या इतनी पूरी दुनिया भी सिकंदर के मन को न भर पाएगी कि दूसरी दुनिया की जरूरत फिर बाकी रह जाए? रह ही जाएगी।
मैंने सुना है, सिकंदर जब मरा तो उसने कहा था, मेरे दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं, मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं हैं।
सभी लोग खाली हाथ जाते हैं। लेकिन खाली हाथ जाते हैं, यह बड़ा सत्य नहीं है। खाली हाथ जाते इसलिए हैं कि जिंदगी भर खाली हाथ रहते हैं। अन्यथा जाएंगे कैसे खाली हाथ? खाली हाथ हम मरते हैं, क्योंकि जिंदगी भर हम खाली हाथ होते हैं। और खाली हाथ का हमें कोई भी पता नहीं। उस खाली जगह का कोई

पता नहीं जो हमारे हृदय में है। उस खाली जगह का बोध आदमी में धर्म की जिज्ञासा पैदा करता है।
ईश्वर को खोजने मत निकलें, पहले अपने हृदय की खाली जगह को खोजें। इसके पहले कि मेहमान को निमंत्रण दें, घर में जगह है, उसे साफ-सुथरा कर लें और फिर... । उसे खोजने मत निकलें, वह शायद द्वार पर ही खड़ा है। आपकी खाली जगह साफ हो जाए, वह भीतर प्रवेश कर जाएगा। लेकिन हमारे हृदय में कोई खाली जगह है? अगर खोजेंगे तो बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे, विचार ही विचार भरे हुए मिलेंगे, वासनाएं ही वासनाएं भरी हुई मिलेंगी, इच्छाएं ही इच्छाएं भरी हुई मिलेंगी, कहीं कोई खाली जगह दिखाई नहीं पड़ेगी और फिर भी मन हमेशा खाली लगेगा। पूरे वक्त कुछ न कुछ भरा है, ऐसा प्रतीत होगा; और पूरे समय खाली हैं, कुछ भी हाथ में नहीं है, यह भी प्रतीत होगा। यही आदमी का पैराडॉक्स है, यही आदमी की उलझन है--खाली है बिल्कुल, भरे होने का सिर्फ सपना है, सिर्फ ख्याल है।
विचार, वासनाएं, इच्छाएं--इनसे कोई कभी भर नहीं सकता। लेकिन इनसे ही
हम भरे हुए मालूम पड़ते हैं। और ये बिल्कुल हवा में खींची गई लकीरें हैं या कहिए पानी पर खींची गई लकीरें हैं, खींच भी नहीं पाते और मिट जाती हैं। लेकिन हम इन्हीं में भरे हुए जी लेते हैं और एक दिन खाली हाथ विदा हो जाते हैं। न मालूम कितने जन्मों तक ऐसी कहानी चलती है। और फिर हम भूल ही जाते हैं इस बात को कि कुछ जो हो सकता था, वह होने से वंचित रह गया है। कुछ जो हमारे भीतर प्रकट हो सकता था, वह प्रकट नहीं हो पाया। कोई द्वार जो खुल सकता था, वह बंद रह गया। कोई बीज जो टूट सकता था, वह अनटूटा रह गया। कोई झरना जो खुल सकता था, वह नहीं खुल पाया। लेकिन लंबे समय और लंबी यात्रा में यह बात भूल जाती है। और हमारी यात्राएं एक दिन की यात्राएं नहीं हैं, हमारी यात्राएं लंबी यात्राएं हैं।
लेकिन एक जन्म में भी हम भूल जाते हैं। अगर आपसे मैं पूछूं कि पांच वर्ष की उम्र के पहले की कोई याददाश्त आपको है? तो शायद ही आपको कोई याददाश्त हो। आप थे तो जरूर, लेकिन पांच साल से पहले की कोई याददाश्त नहीं है। आप थे जरूर, अन्यथा आप आज नहीं हो सकते थे। लेकिन याददाश्त कोई भी नहीं है। लेकिन अगर आपको सम्मोहित किया जाए और गहरी तंद्रा में ले जाया जाए तो आपको पांच साल के पहले की याददाश्त आनी शुरू हो जाएगी। न केवल पांच साल के पहले की याददाश्त, बल्कि मां के पेट में जो आपके अनुभव हुए, वे भी याद आ जाते हैं। अगर मां गिर पड़ी हो और आप पेट में रहे हों, तो उसकी भी याददाश्त आपके पास छिपी पड़ी है। आप जब पहली दफे मां के गर्भ में प्रविष्ट हुए, उसकी याददाश्त भी आपके भीतर छिपी पड़ी है। और आप जब पिछले जन्म में मरे और खाट पर पड़े थे, उसकी याददाश्त भी आपके भीतर पड़ी है। वे सारी याददाश्तें भीतर संगृहीत हैं। और इन याददाश्तों का... एवरेस्ट की चोटी बहुत छोटी है और पैसिफिक महासागर बहुत गहरा नहीं है। एक-एक आदमी के भीतर याददाश्तों की जितनी परतें हैं, उनके मुकाबले एवरेस्ट की चोटी छोटी है और पैसिफिक महासागर की गहराई कम है।
इन सारी याददाश्तों में एक बात भूल गई है कि मैं अब भी खाली हूं। और यह याद न आ जाए, तो हमारे जीवन में परमात्मा की खोज शुरू नहीं हो सकती। परमात्मा की खोज, परमात्मा शब्द को सुनने से नहीं हो सकती। शब्द "परमात्मा" परमात्मा नहीं है। परमात्मा की खोज किसी दूसरे आदमी को परमात्मा खोजते देख कर पैदा नहीं हो सकती। और अगर होगी तो उधार होगी, असली नहीं होगी। और कम से कम परमात्मा के दरवाजे पर नकली चीजें, उधार चीजें, बारोड चीजें नहीं चलती हैं, वहां कुछ अपना ही लेकर मौजूद होना पड़ता है। कुछ अपना! वहां वह ज्ञान काम नहीं पड़ेगा जो दूसरों से मिला, वहां वे शब्द काम नहीं पड़ेंगे जो दूसरों से सीखे गए, वहां वे सिद्धांत काम नहीं पड़ेंगे जो परंपराएं सिखा जाती हैं। वहां तो अपना ही कुछ निवेदन करना होगा। लेकिन हमें तो परमात्मा भी एक नकल है, इमिटेशन है। पिता को देख कर बेटा परमात्मा को खोजने लगता है। पड़ोस को देख कर आदमी परमात्मा को खोजने लगता है। बड़ों को मंदिर में जाते देख कर छोटे बच्चे मंदिर में चले जाते हैं। और वे बड़े भी अपने बड़ों को देख कर मंदिर में चले गए हैं। और उनके बड़ों

ने भी यही किया है। क्या हम परमात्मा को सिर्फ इमिटेशन बना सकते हैं? क्या हम किसी के पीछे चल कर कभी परमात्मा को पा सकते हैं?
असंभव है यह बात! क्योंकि जो अर्ज, जो प्राणों की प्यास अभी मेरी नहीं है... । और झूठी प्यास नहीं होती। और झूठी प्यास का आदमी सरोवर तक कभी नहीं पहुंच सकता। और अगर झूठी प्यास का आदमी सरोवर के पास भी पहुंच जाए तो पानी को पहचान नहीं पाता कि यह पानी है। क्योंकि पानी को पहचानने के लिए अपनी प्यास चाहिए। प्यास ही पानी की पहचान है! उसको पहचानेगा कौन?
परमात्मा तो चौबीस घड़ी चारों तरफ मौजूद है। लेकिन प्यास न होने से कोई उसे काशी खोजने जाएगा, कोई मक्का खोजने जाएगा, कोई जेरुसलम खोजने जाएगा, कोई कैलाश खोजने जाएगा। प्यास न होने से हमें कहीं और खोजने जाना पड़ता है। प्यास हो तो श्वास-श्वास में, हवा के कण-कण में, वृक्ष के पत्ते- पत्ते में वह मौजूद है। वही मौजूद है, और तो कोई भी नहीं है। उसके अतिरिक्त और किसी का कोई अस्तित्व नहीं है।
लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं चलता। उसका हमें कोई पता नहीं चलेगा। नहीं चलेगा इसलिए कि जैसा यह बाहर चल रहा है, ऐसा ही उपद्रव हम सबके भीतर भी चल रहा है। विचारों का झंझावात है भीतर, वह चल रहा है जोर से। हम उसमें लगे हैं। खाली जगह का कोई पता नहीं चलता। खाली जगह का बोध ही नहीं होता, कहीं कोई पीड़ा नहीं पकड़ती।
वह पीड़ा पकड़ सकती है। अगर हम नानक को देखें, या कबीर को, या रैदास को,
या फरीद को, या महावीर को, या बुद्ध को, या जीसस को, या मोहम्मद को, तो इनकी जिंदगी में हम दो मौके पाएंगे। लेकिन हम बड़े बेईमान हैं अपने साथ। और हम उनमें से एक मौके को देखना ही नहीं चाहते, सिर्फ दूसरे को देखते हैं। नानक की जिंदगी में दो मौके पाएंगे। एक वह वक्त है जब नानक रोते हुए हैं और एक वह वक्त है जब वे आनंद से भर गए हैं। एक वह वक्त है जो पीड़ा और विरह का है और एक वह वक्त है जो फुलफिलमेंट का है, जो पा लेने का है। लेकिन हम सिर्फ पा लेने के वक्त को देखते हैं और पीड़ा के वक्त की बात ही नहीं करते। एक समय है मीरा का जो रोने का है और एक समय है जो नाचने का है। हमने नाचने का तो याद रख लिया, रोने की बात ही हम भूल गए। बुद्ध की जिंदगी में एक वक्त है जब रोशनी आ गई, लेकिन एक वह वक्त भी है जब अमावस की काली रात है।
हम भी रोशनी चाहते हैं, लेकिन अमावस की काली रात कौन चाहेगा? हम भी मिलना चाहते हैं, लेकिन विरह कौन भोगेगा? हम भी परमात्मा के आनंद में डूबना चाहते हैं, लेकिन उसकी पीड़ा?
हमने किसी मां को बच्चा पैदा होते देख लिया है। और जब बच्चा पैदा होता
है और मां की आंख पहली बार अपने बच्चे को देखती है, तो उसकी आंखों के आनंद का कोई पारावार नहीं है। लेकिन प्रसव की पीड़ा कौन भोगेगा? वह प्रसव की पीड़ा के बाद यह मुस्कान है।
तो हमने नानक की मुस्कुराती तस्वीर तो ख्याल में रख ली और हम सोचते हैं कि कब वह मौका आए कि हम भी ऐसे ही आनंद से भर जाएं! लेकिन हम वह तस्वीर छोड़ दिए हैं ख्याल जो रोती हुई है, जब प्राण आंसू-आंसू हो गए हैं, जब कि हृदय क्षार-क्षार है, जब कि सिवाय आंसुओं के और कुछ भी नहीं है, जब कि सिवाय पुकार के और कुछ भी नहीं है। वह हमारे ख्याल में नहीं है।
परमात्मा को आधा नहीं चुना जा सकता, उसको पूरा ही चुनना पड़ेगा। उसका पहला हिस्सा पहले पूरा करना पड़ेगा, तब दूसरा हिस्सा पूरा होता है। फूल तो कोई भी पसंद कर लेता है, लेकिन बीज बोने की मेहनत भी है। और फूल तो कोई भी मुस्कुरा कर स्वागत कर लेता है, लेकिन वृक्षों को बड़ा करने का संकल्प भी है। धर्म के संबंध में एक बुनियादी भ्रांति है और वह यह है कि धर्म आनंद का द्वार खोल देता है। लेकिन आनंद का द्वार उसके लिए ही खुलेगा, जिसके लिए यह पूरा जगत पीड़ा और दुख बन जाए, उसके पहले वह आनंद का द्वार नहीं खुलेगा। जिसे अभी पीड़ा ही नहीं अनुभव हुई, उसे आनंद का कोई अनुभव नहीं हो सकता है। तब हम उधार हो जाते हैं।
नानक ने भी भजन गाए हैं, लेकिन वे आनंद में गाए गए भजन हैं। और हमने अभी पीड़ा भी पार नहीं की, तो हम उन भजनों को गाएंगे, वे उधार हो जाएंगे, उनका कोई अर्थ नहीं रह जाएगा।

मीरा भी नाची है। कोई नर्तकी मीरा से अच्छा नाच सकती है। लेकिन उस नाचने में मीरा का आनंद नहीं होगा। क्योंकि उस नाचने के पहले मीरा की पीड़ा, मीरा की आग, मीरा की लंबी दुखद यात्रा नहीं है।
परमात्मा के दो पहलू हैं। एक विरह का, पीड़ा का, दुख का; और फिर आनंद का द्वार है। यह जो विरह और पीड़ा और दुख और अंधकार का रास्ता है, इस पर हम कोई भी न चलना चाहेंगे। हम सब चाहेंगे आनंद मिल जाए; हम सब चाहेंगे परमात्मा मिल जाए। इसलिए हम इस आधे परमात्मा की खोज पर, एक झूठी आधी खोज पर जीवन गंवा दें, अनेक जीवन गंवा दें, हमारा मिलन नहीं हो सकता है। वह जो आधा हिस्सा है पहले, वह कैसे पैदा हो, वही मैं कह रहा हूं। वह तभी पैदा होगा जब हमें हमारी जिंदगी की फ्यूटिलिटी, जिंदगी की व्यर्थता, जिंदगी की मीनिंगलेसनेस, उसकी अर्थहीनता का बोध हो।
सुबह उठते हैं, सांझ फिर सो जाते हैं; जन्मते हैं, मर जाते हैं; कमाते हैं, गंवाते हैं; पूरी जिंदगी की यह सारी कथा बिना किसी बड़े अर्थ के, बिना किसी बड़े प्रयोजन के--जैसे कि कोई तिनका लहरों पर डोलता रहता हो इस किनारे से उस किनारे, इस किनारे से उस किनारे, उस किनारे से इस किनारे, और सोचता हो कि मैं यात्रा कर रहा हूं--हम भी ठीक ऐसे ही जीते हैं और सोचते हैं कि यात्रा कर रहे हैं। यात्रा सिर्फ धार्मिक आदमी के जीवन में होती है। बाकी लोगों के जीवन में इस किनारे से उस किनारे होना होता है। यात्रा सिर्फ उनकी जिंदगी में संभव है, जिनकी जिंदगी में वह डायमेंशन, वह द्वार, वह आयाम खुल जाता है, जिसका नाम धर्म है।
लेकिन धर्म के नाम पर तो हमने पागलखाने खड़े कर रखे हैं। धर्म के नाम
पर तो हमने विक्षिप्तताएं, मैडनेसेस खड़ी कर रखी हैं।
आज सुबह मैं आया तो मुझे धर्म का नया रूप दिखाई पड़ा। मैं बहुत आनंदित हुआ, क्योंकि परमात्मा की लीला अपार है और उसकी लीला देखने जैसी है। सुबह जब मैं आया तो काली झंडियां लेकर स्टेशन पर बहुत लोग खड़े देखे, तो मैंने सोचा कि संन्यासियों का स्वागत काली झंडियों से करने का रिवाज शायद नया है। पर मुझे यह पक्का नहीं हुआ कि मेरे ही स्वागत के लिए खड़े हैं, क्योंकि मेरे स्वागत के लिए इतने लोग आएंगे, इसका मुझे भरोसा नहीं। क्योंकि धार्मिक आदमी के स्वागत के लिए इतने लोग कहां आते हैं! शायद सोचा कि कोई और आता होगा। लेकिन जब वे मित्र मेरे ही पास आकर नारे लगाने लगे, तब मुझे पता चला कि नहीं, वे मेरे लिए आए हैं। तब तो मुझे और हैरानी हुई कि वे स्वागत बड़े मजेदार शब्दों में कर रहे हैं! वे मुझे कह रहे हैं कि आप अधार्मिक आदमी हो, लौट जाओ!
एक बात तो मुझे पक्की हो गई कि कम से कम उन्हें इतना पक्का है कि वे धार्मिक आदमी हैं।
धार्मिक आदमी होना इतना आसान है? और धार्मिक आदमी स्टेशनों पर काली झंडियां लिए हुए खड़े मिलेंगे? धार्मिक होने का उनका पक्का ख्याल ही उन्हें धार्मिक होने से रोक लेगा। और दूसरा अधार्मिक है, यह सिर्फ अधार्मिक आदमी ही सोच सकता है। अन्यथा दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। धार्मिक आदमी का प्रयोजन इस बात से है कि मैं धार्मिक हूं या नहीं हूं? दूसरे से क्या प्रयोजन है?
मैंने सुना है एक फकीर के बाबत, हसन के बाबत, कि एक रात उसने परमात्मा
से प्रार्थना की कि मेरे पड़ोस में एक आदमी रहता है। यह बहुत अधार्मिक है। तू इसे दुनिया से उठा ही ले। यह चोर भी है, बेईमान भी है, नास्तिक भी।
रात सपने में परमात्मा ने उससे कहा, हसन, तू मुझसे भी ज्यादा समझदार मालूम होता है! इस आदमी को मैं चालीस साल से श्वास दे रहा हूं, इस आदमी को चालीस साल से भोजन दे रहा हूं, इस आदमी से चालीस साल में मैंने कोई शिकायत नहीं की, तू मुझसे भी ज्यादा धार्मिक हो गया मालूम होता है! क्योंकि तुझे यह आदमी अधार्मिक मालूम होने लगा!
दूसरे को अधार्मिक देखने का ख्याल ही, दूसरे की चिंता करने का ख्याल
ही अधर्म है। अपनी चिंता करने का ख्याल ही धर्म है। लेकिन हम दूसरे की चिंता में इतने उलझे हैं कि सिर्फ एक आदमी के बाबत नहीं सोचेंगे, वह अपना होना, बाकी सबके बाबत सोच लेंगे।

कभी आपने ख्याल शायद न किया हो, आप शायद अपने संबंध में सोचने से भर वंचित रह जाएंगे और सारी दुनिया के बाबत सोच लेंगे। सुबह से उठ कर सांझ तक दूसरे के संबंध में सोचेंगे, सिर्फ अपने संबंध में नहीं सोचेंगे। जिंदगी गुजर जाएगी। एक नहीं, बहुत जिंदगी गुजर सकती हैं। अपने संबंध में जो नहीं सोचेगा, वह अपने भीतर के खालीपन का अनुभव भी नहीं कर पाएगा। और जिसे भीतर का खालीपन पता नहीं चलेगा, उसकी जिंदगी में परमात्मा की खोज शुरू नहीं होगी। भीतर का खालीपन एक पहलू है, परमात्मा की खोज उसी सिक्के का दूसरा पहलू है।
क्या आपको लगता है कि भीतर कोई कमी है? लगता है भीतर कोई अभाव है? लगता
है भीतर कुछ खाली-खाली है?
तो आपकी जिंदगी में परमात्मा की किरण उतर सकती है। लेकिन इस खालीपन
को ठीक से समझें। और समझ कर इस खालीपन से भागने और बचने की कोशिश मत करें। क्योंकि बचने के बहुत उपाय हैं। एक आदमी अपने भीतर के खालीपन से बचने के लिए सिनेमा में जाकर बैठ सकता है, तीन घंटे भूल जाएगा। दूसरा आदमी संगीत सुन सकता है, और भीतर के खालीपन को भूल जाएगा। तीसरा आदमी ताश खेल सकता है। चौथा आदमी सिगरेट पी सकता है। पांचवां आदमी भजन-कीर्तन करके भी अपने भीतर के खालीपन को भूलने की कोशिश कर सकता है। यह असली भजन-कीर्तन नहीं है, यह सिर्फ भुलावा है, फार्गेटफुलनेस है। यह अपने को भुलाना है, अपने को जानना नहीं है।
अगर भीतर का खालीपन दिखाई पड़े तो उससे एस्केप न करें, भागें मत, उस खालीपन में खड़े हो जाएं, उस खालीपन में खड़े हो जाएं। उस खालीपन में खड़े होने से ही पीड़ा शुरू हो जाएगी। उस खालीपन में खड़े होते से ही नीचे की जमीन खिसक जाएगी, ऊपर का आकाश खो जाएगा। उस खालीपन में खड़े होते से ही एक आह उठेगी, जो परमात्मा की खोज बन जाती है।
लेकिन खालीपन में खड़े होने को कोई भी राजी नहीं है। और जो आदमी राजी
हो जाता है, उसकी जिंदगी बदल जाती है। हम सब भागते हैं। जरा खालीपन लगा, अखबार उठा कर पढ़ने लगेंगे। जरा खालीपन लगा कि कहीं उलझने की कोशिश करेंगे--कहीं भी आक्युपाइड, कहीं भी लग जाएं, कहीं भी डूब जाएं--चाहे शराब हो, चाहे संगीत हो, कहीं भी अपने को भुलाने की कोशिश करेंगे।
जो आदमी अपने को भुलाने की कोशिश करेगा, वह आदमी परमात्मा की खोज पर नहीं जा सकता है। जो आदमी अपने को नहीं जानता है, इस अज्ञान में खड़ा हो जाएगा, जो आदमी भीतर कुछ भी नहीं है मेरे, शून्य है, इस शून्य में बैठ जाएगा, वह आदमी प्रभु के स्मरण को उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि इस खालीपन में इतनी पीड़ा है, इस खालीपन में इतना अथाह दुख है, इस खालीपन में इतना दंश है, इस खालीपन में इतनी आग है कि वह सारी आग आपके भीतर परमात्मा की पुकार बन जाती है। उसके बिना परमात्मा की पुकार नहीं बनती।
मुझे याद आता है, फरीद की जिंदगी में मैंने सुना है कि फरीद एक दिन सुबह स्नान करने जा रहा था और एक आदमी ने रास्ते में पूछा, मेरी परमात्मा की खोज कब शुरू होगी?
तो फरीद ने कहा, आओ मेरे साथ स्नान कर लो, खोज शुरू करवा दूं।
वह आदमी फरीद के साथ गया। फरीद और वह, दोनों आदमी स्नान करने उतरे। जब
उस आदमी ने डुबकी लगाई, तो फरीद ने उसकी गर्दन पकड़ कर पानी में पकड़ लिया जोर से। फरीद उसे दबाए चला गया। वह आदमी तो बहुत हैरान हुआ! फकीरों से ऐसी आशा नहीं होती है। हालांकि फकीर कभी-कभी आपके हित में आपकी गर्दन पकड़ लेते हैं। लेकिन फकीरों से ऐसी आशा नहीं होती है। उस आदमी ने सोचा भी नहीं था कि यह आदमी मेरी जान ले लेगा। उसे क्या पता कि यह आदमी जान दे रहा है। लेकिन गर्दन दब रही है, वह आदमी पूरी ताकत लगाया। फरीद मजबूत आदमी है, छूटना आसान नहीं है। पूरी शक्ति लगा दी उस आदमी ने, पूरी शक्ति लगा कर फरीद के चंगुल से बाहर होकर खड़ा हो गया। आंखें लाल हो गईं। उसने कहा कि आप आदमी कैसे हैं? मैं तो सोचता था मैं एक ईश्वर को पा लिया आदमी के पास आया, तुम हत्यारे निकले! यह तुम क्या कर रहे थे? मुझे मार डालते!
फरीद ने कहा, ये बातें पीछे हो लेंगी। पहले जरूरी बात हो ले। मैं तुमसे यह पूछता हूं कि जब तुम पानी के नीचे डूबे थे, तो कितने ख्याल तुम्हारे मन में थे?

उसने कहा, कितने ख्याल? ख्याल का सवाल ही न था! जिंदगी में पहली दफा ख्याल न थे। सिर्फ एक ख्याल था--एक श्वास कैसे मिल जाए? एक श्वास कैसे ले लूं? और यह भी थोड़ी देर तक ख्याल रहा, फिर ख्याल मिट गया, फिर तो मेरा रोआं- रोआं चिल्लाने लगा--श्वास! फिर विचार न रहा श्वास का, रोआं-रोआं कंपने लगा, कण-कण बोलने लगा, हृदय की धड़कन-धड़कन चिल्लाने लगी--एक श्वास! फिर यह विचार न रहा, मेरे प्राण चिल्लाने लगे--श्वास!
तो फरीद ने कहा कि परमात्मा भी उस दिन मिल जाएगा, जिस दिन पूरे प्राण चिल्लाएंगे--परमात्मा!
स्मरण का यही अर्थ है। स्मरण का अर्थ झांझ-मजीरे पीट कर राम-राम चिल्लाना नहीं है। क्योंकि जिस राम-राम को बहुत दफे चिल्लाना पड़े, तो क्या मतलब है? अगर प्राण एक बार भी चिल्ला दें तो बात पूरी हो जाती है। और निष्प्राण जिंदगी भर कोई चिल्लाता रहे तो कुछ पूरा नहीं होता, सिर्फ समय खराब होता है।
फरीद ने उस आदमी को कहा, जिस दिन तेरे श्वास और रोएं-रोएं में एक ही आवाज रह जाएगी, आवाज भी नहीं कहना चाहिए, एक ही पुकार, एक ही अभीप्सा, एक ही प्यास रह जाएगी--परमात्मा! तो उस दिन बात पूरी हो जाएगी।
लेकिन इसके लिए ठीक वैसे ही, जैसे फरीद ने उसे नदी में दबा दिया, प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं की शून्यता में दबाना पड़ता है, स्वयं के अभाव में दबाना पड़ता है। वह जो स्वयं की फ्यूटिलिटी है, वह जो स्वयं की व्यर्थता है, वह जो स्वयं का खाली हिस्सा है भीतर, उसमें दबाना पड़ता है। उसमें दबते ही स्मरण है।
लेकिन स्मरण का मतलब नाम नहीं है। स्मरण का मतलब शब्द नहीं है। स्मरण
का मतलबः पुकार! स्मरण का मतलबः प्यास! स्मरण का मतलबः प्राणों की अकुलाहट! विचार नहीं, शब्द नहीं। मन का काम नहीं है परमात्मा के द्वार पर, पूरे प्राणों का काम है। मन तो बड़ी छोटी चीज है, एक कोने में है। हमारा पूरा प्राण बहुत बड़ी चीज है। उस पूरे प्राण से जब पुकार उठती है तो घटना घट जाती है। लेकिन उस पूरे प्राण से पुकार उठाने के लिए, अपने खालीपन को खोज लेना जरूरी है।
कठिनाई नहीं होगी उस खालीपन को खोजने में, वह सबके भीतर मौजूद है। सिर्फ आंख उठाने की जरूरत है। कई बार ऐसा हो जाता हैः जो बहुत निकट है वह इसीलिए दिखाई नहीं पड़ता क्योंकि बहुत निकट है। हम भूल जाते हैं, उसका स्मरण ही भूल जाते हैं। दूर की चीजें दिखाई पड़ती रहती हैं, पास की चीज भूल जाते हैं। जिसकी छाती पर कोहिनूर पड़ा हो उसे नहीं दिखाई पड़ता, दूसरों को दिखाई पड़ता है। भीतर ही हमारे वह खालीपन है, वह जगह है, वह मंदिर है, वह गुरुद्वारा है, वह मस्जिद है, जहां से परमात्मा का उदय हो सकता है। लेकिन उसे हम देखने नहीं जाएंगे, उसे हम खोजने नहीं जाएंगे, क्योंकि बहुत निकट है। काशी बहुत दूर है, मक्का बहुत दूर है, कैलाश बहुत दूर है, वहां हम चले जाएंगे।
लेकिन एक बात ध्यान रहे, जो मैं यहां हूं, काशी भी पहुंच कर यही रहूंगा, मैं नहीं बदल जाऊंगा। जगह बदलने से आदमी नहीं बदलते। जगह बदलने से आदमी बदलते होते तो दुनिया कभी की धार्मिक हो गई होती। जगह बदलना बहुत आसान है। हां, आदमी बदलने से जगह जरूर बदल जाती है। लेकिन जगह बदलने से आदमी नहीं बदलते। स्वयं को बदलना पड़े।
आज एक ही सूत्र आपसे कहता हूं। क्योंकि वे मित्र बहुत थक जाएंगे और उनके गले भी दुख जाएंगे, उन पर भी दया करनी चाहिए। क्योंकि जब तक मैं बोलूंगा, वे चुप नहीं होंगे, तो पाप मेरे ऊपर ही लगेगा।

(इस पूरे प्रवचन के दौरान कुछ लोग प्रवचन-स्थल के बिल्कुल पास में ही लाउडस्पीकर लगा कर जोर-जोर से कीर्तन करने के बहाने शोरगुल मचा कर ओशो के प्रवचन में बाधा डालने का प्रयास करते रहे।)

धर्म साधना के सूत्र
चौथा प्रवचन

तीन सूत्रः बहना, मिटना, सर्व-स्वीकार

मेरे प्रिय आत्मन्!
ध्यान के संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी जरूरी हैं। सबसे कठिन और सबसे जरूरी बात तो यह समझना है कि जैसा शब्द से मालूम पड़ता है तो ऐसा लगता है कि ध्यान भी कोई क्रिया होगी, कोई डूइंग होगी, कुछ करना पड़ेगा। मनुष्य के पास जो भी शब्द हैं वे सभी शब्द बहुत ऊंचाइयों पर जाकर अर्थपूर्ण नहीं रह जाते हैं। तो ध्यान से ऐसा ही लगता है कि कुछ करना पड़ेगा। जब कि वस्तुतः ध्यान कोई करने की बात नहीं है। ध्यान हो जाने की बात है। आप ध्यान में हो सकते हैं, ध्यान कर नहीं सकते।
इसे ऐसा समझिए कि जैसे हम प्रेम शब्द का उपयोग करते हैं तो उसमें भी यही भ्रांति होती है, समझ में आता है कि प्रेम भी करना पड़ेगा। आप प्रेम नहीं कर सकते हैं, प्रेम में हो सकते हैं। और होने और करने में बहुत फर्क है। अगर आप प्रेम करेंगे तो वह झूठा हो जाएगा। किए हुए प्रेम में सच्चाई कैसे होगी? किया हुआ प्रेम अभिनय और एक्टिंग हो जाएगा।
यही सबसे बड़ी कठिनाई भी है। क्योंकि जो चीज की जा सकती हो, हम कर सकते हैं। कठिनाई हो, पहाड़ हो, चढ़ना हो, मुश्किल पड़े, कर लेंगे। लेकिन जो चीज होने वाली है उसके लिए हम क्या करें?
जापान में एक बहुत बड़ा सम्राट हुआ। उसने सुनी खबर कि पास के पहाड़ पर
एक संन्यासी लोगों को ध्यान सिखाता है। बहुत लोगों ने खबर दी कि बहुत शांति मिली है, बहुत आनंद मिला है और प्रभु की झलक दिखाई पड़ी है। तो वह सम्राट भी गया। दूर-दूर तक पहाड़ में फैला हुआ आश्रम था। बीच में बड़ा भवन था, मंदिर था, चारों तरफ भिक्षुओं के रहने के स्थान थे। सम्राट ने जाकर उस संन्यासी को कहा, बूढ़े वृद्ध संन्यासी को, कि मुझे एक-एक बात समझा दें कि यहां साधक क्या-क्या करते हैं। और जहां जो करते हों, वह जगह मुझे बता दें। मैं पूरी बात समझने आया हूं।
तो वह संन्यासी उस सम्राट को लेकर आश्रम में घूमने लगा। उसने वह जगह बताई जहां भिक्षु भोजन करते थे, उसने कहा, यहां भोजन करते हैं।
सम्राट ने कहा, भोजन वगैरह में मुझे उत्सुकता नहीं है, असली बात करें।
जहां स्नान करते थे, उस भिक्षु ने कहा, यहां स्नान करते हैं।
उस सम्राट ने कहा, बेकार मेरा समय खराब मत करो।
यहां भिक्षु अध्ययन करते हैं; यहां सोते हैं।
उस सम्राट ने कहा, ये सब छोटी-छोटी चीजें छोड़ो, वह जो बीच में स्वर्ण-शिखर वाला मंदिर है, वहां क्या करते हैं?
लेकिन बड़ा आश्चर्य, जब भी वह सम्राट उस बीच के स्वर्ण-शिखर वाले मंदिर
की बात करे, वह संन्यासी एकदम बहरा हो जाए! और सब सुने, उतनी बात भर न सुने! पूरा आश्रम घूम लिया गया, जो देखने योग्य मालूम पड़ता था, वह भवन भर छोड़ दिया गया। द्वार पर आकर संन्यासी ने सम्राट को विदा दी। सम्राट ने कहा, या तो मैं पागल हूं या आप पागल हैं। जो देखने जैसा मालूम पड़ता है, उस भवन के आप पास भी न ले गए। व्यर्थ की चीजें दिखाईं--स्नान कहां करते हैं, भोजन कहां करते हैं। इस बीच के भवन में क्या करते हैं? तुम बहरे क्यों हो जाते हो जब मैं उसके संबंध में पूछता हूं?
उस संन्यासी ने कहा, आपका प्रश्न मुझे बहुत मुश्किल में डाल देता है। आपने कहा था कि जहां जो करते हों वह मुझे बता दें। वह भवन तो उस स्थान के लिए बना है, जहां जब हमें कुछ भी नहीं करना होता तब हम चले जाते हैं। वह हमारा ध्यान भवन है, मेडिटेशन हॉल है। वहां हम कुछ करते नहीं, वहां हम कुछ भी नहीं करते। जब तक हमें करना होता है तब तक ये सब स्थानों पर हम होते हैं। जब किसी व्यक्ति को न-करने में, नॉन-डूइंग में जाना होता है, तब वह उस भवन में चला जाता है। और आप पूछते हैं--क्या करते हैं? तो मैं मुश्किल में पड़ जाता हूं। अगर मैं कहूं ध्यान करते हैं, तो गलत होगा। क्योंकि ध्यान का मतलब ही यह है--मन की ऐसी स्थिति जब हम कुछ नहीं करते।

तो ध्यान के लिए पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि वह आपका करना नहीं है। और ख्याल रहे, जहां करना होगा वहां टेंशन होगा, तनाव होगा। न करने में ही विश्रांति और शांति हो सकती है। लेकिन न करने को हम बिल्कुल भूल गए हैं। हम चौबीस घंटे कुछ न कुछ कर रहे हैं। रात भी सपना देख रहे हैं, कुछ नहीं करने को बचा है तो सपने में ही कुछ कर रहे हैं। खाली होना मुश्किल है। न करने में एक क्षण को रुकना मुश्किल है।
लेकिन यह बड़े आश्चर्य की बात है कि करने से संसार में जो कुछ है वह सब मिल सकता है, लेकिन करने से परमात्मा नहीं मिल सकता। परमात्मा को पाना हो तो न करने में उतरना पड़ता है। उसका आयाम अलग है। उसकी यात्रा का रास्ता बहुत भिन्न है। क्यों ऐसी बात है?
असल में करने के द्वारा जो भी हम पा लेंगे, वह हमसे बड़ा नहीं हो सकता। हमारा किया हुआ हमसे बड़ा कैसे होगा? आप कितना ही बड़ा मकान बना लें, मालिक से बड़ा नहीं हो सकता। और आप कितने ही बड़े पद पर पहुंच जाएं, पद सदा आपके नीचे हो जाएगा, आप पद के ऊपर हो जाएंगे। असल में कोई आदमी ऐसा काम नहीं कर सकता जो उससे बड़ा हो, कैसे करेगा? अपने से बड़े को कैसे किया जा सकता है? हम जो भी करेंगे, अपने से छोटा होगा। परमात्मा हमसे छोटा नहीं है, इसलिए हमारी करने की पकड़ के बाहर हो जाता है, हम उसे कर नहीं सकते।
यह भी ध्यान रहे कि जब भी हम कुछ करते हैं, तो करने में हमारा अहंकार, ईगो मजबूत होता है। मैंने किया! तो मजबूत होता है। और परमात्मा की तरफ जिन्हें जाना है उनका अहंकार पिघल जाना चाहिए, मजबूत नहीं होना चाहिए। वह जितना मजबूत होगा उतना उससे मिलना मुश्किल है। इसलिए करने के द्वारा हम परमात्मा को कभी न पा सकेंगे, क्योंकि करना हमारे मैं को मजबूत करता है। एक आदमी बड़ा मकान बनाता है तो उसका मैं और बड़ा हो जाता है कि मैंने बनाया! एक आदमी धन कमा लेता है तो मैं मजबूत हो जाता है। एक आदमी बहुत सा ज्ञान इकट्ठा कर ले तो भी मैं मजबूत हो जाता है। परमात्मा की तरफ जिन्हें जाना है वे अहंकार को लेकर नहीं जा सकते, इसलिए करने से वहां रास्ता नहीं है। यही सबसे बड़ी मुश्किल भी है। और मुश्किल इसीलिए है कि हम करने के आदी हैं और न करने का हमें कोई पता ही नहीं। ऐसे तो बात सरल होनी चाहिए, करना कठिन होना चाहिए, न करना सरल होना चाहिए। क्योंकि न करने में कुछ भी तो नहीं करना है, कठिन कैसे होगा? लेकिन आदत, पूरे जीवन हम करने में उलझे रहते हैं। न करने की हमें सूझ-बूझ ही खो गई है।
तो यहां इन तीन दिनों में, सुबह इस घंटे भर, हम न करने की यात्रा पर थोड़ी सी डुबकी लेंगे। पक्का नहीं है कि आप जा पाएंगे, क्योंकि अगर आपने करना जारी रखा तो आप अटक जाएंगे। तो मैं क्या कर सकता हूं? कैसे आपको न करने पर... क्योंकि आप कठिनाई समझ गए होंगे। करने की शिक्षा दी जा सकती है, न करने की शिक्षा कैसे दी जाए? तो न करने की शिक्षा निगेटिव ही हो सकती है, नकारात्मक ही हो सकती है। इतना ही कहा जा सकता है--यह मत करिए, यह मत करिए, यह मत करिए, और फिर छोड़ दीजिए, फिर जो हो जाए उसे हो जाने दीजिए।
एक किसान एक बीज बोता है। पानी डालता है, खाद डालता है, बागुड़ लगाता है। लेकिन अंकुर को निकाल नहीं सकता। अंकुर तो अपने से निकलेगा। तो जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं उसका अंकुर आप नहीं निकाल सकते, वह तो अपने से निकलेगा। आप सिर्फ परिस्थिति मौजूद कर दें जिसमें उसको निकलने में बाधा न रहे।
जैसे कल मैं कह रहा था। रात आप बिस्तर पर जाते हैं, रोज आप सोते हैं।
और अगर कोई आपसे पूछ ले कि आप किस भांति सोते हैं, कृपा कर बताएं! तो कठिनाई शुरू हो जाएगी। सोना भी क्रिया मालूम पड़ती है। शब्द में तो ऐसा ही लगता है कि कुछ किया होगा आपने। सुबह आप उठ कर कहते हैं कि रात मैं सोया। तो आपने कुछ किया। अगर मैं पूछूं कि कैसे सोए? सोने के लिए क्या करना पड़ा? तो आप जो भी कहेंगे उसका सोने से कोई संबंध नहीं होगा। आप कहेंगे, बिस्तर पर लेट गया। लेकिन लेटना सोना नहीं है। आप कहेंगे, तकिए लगा लिए। लेकिन तकिए सोना नहीं है। तकिए के बिना भी सोना हो सकता है, तकिए के साथ भी नहीं हो सकता। आप कहेंगे, द्वार-दरवाजे बंद करके अंधेरा कर लिया। लेकिन अंधेरा करना सोना नहीं है, अंधेरे में जागना हो सकता है। तो मैं आपसे कहूंगा कि यह सब आपने सोने की तैयारी की, सोना नहीं है यह। हां, यह सब तैयारी होकर, फिर आपने क्या

किया? सोना आया कैसे? आप कहेंगे, मैं सिर्फ पड़ रहा। लेकिन पड़ रहना सोना नहीं है, पड़ रहना प्रतीक्षा है, जस्ट अवेटिंग, कि नींद आ जाए। आप नींद को ला नहीं सकते, सिर्फ प्रतीक्षा कर सकते हैं। इंतजाम कर सकते हैं कि प्रतीक्षा करने के लिए मैं आराम से पड़ जाऊं, राह देखूं कि नींद आ जाए। ध्यान के लिए भी प्रतीक्षा ही करनी पड़ती है। बाहरी इंतजाम हम कर सकते हैं। और वह बाहरी इंतजाम भी प्राथमिक सीढ़ियों में ही जरूरी होता है, धीरे- धीरे गैर-जरूरी हो जाता है, एक बार आपको पता चल जाए कि इस मनोदशा में ध्यान उतर आता है। तो ध्यान कुछ नहीं है जो आप करते हैं, आप तो कुछ और करते हैं, ध्यान उस करने के बीच उतरता है। तो ध्यान के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती है। और एक परिस्थिति जिसमें बाधाएं न रह जाएं।
अब जैसे एक आदमी, इसे थोड़ा समझ लें, अगर हम एक आदमी पर शर्त लगा दें कि तुम्हें क्रोध करने की आज्ञा है, लेकिन आंखें लाल करने की आज्ञा नहीं है, दांत भींचने की आज्ञा नहीं है, मुट्ठी बांधने की आज्ञा नहीं है; शरीर पर कुछ मत करो, बाकी तुम क्रोध करो। वह आदमी मुश्किल में पड़ जाएगा। क्योंकि क्रोध के लिए एक परिस्थिति चाहिए जिसमें वह उतर सकता है। अगर आप कहें कि हाथ मत भींचो, दांत मत भींचो, आंख लाल मत करो, चेहरे पर रेखा न आए, बाकी क्रोध करो। हालांकि क्रोध न तो हाथ का बांधना है, न दांत का दबाना है, न आंख का लाल होना है; क्रोध कुछ और है। लेकिन यह परिस्थिति पूरी हो तो ही क्रोध उतर पाता है, नहीं तो नहीं उतर पाता। वह आदमी मुश्किल में पड़ जाएगा। अमरीका में तो एक विचारक हुआ, जेम्स। उसने तो यही कह दिया कि यह बात ही कुछ उलटी है। और उसने तो एक सिद्धांत ही, जेम्स-लेंगे का सिद्धांत एक प्रचलित किया। और उसमें बड़ी जान है। बात तो वह गलत है जो उसने कही है, लेकिन उसमें जान है।
हम आमतौर से यही कहते हैं कि आदमी जब भयभीत होता है तो भागता है। उसने कहा, भागने की वजह से भयभीत होता है। क्योंकि कोई बिना भागे और भयभीत होकर बता दे! हम कहते हैं कि एक आदमी भयभीत हो गया, घबड़ा गया, तो वह भागा। वह जेम्स और लेंगे ने कहा कि नहीं, यह उलटी बात है। वह भागा इसलिए भयभीत हो गया। क्योंकि भागे न, खड़ा रहे और भयभीत होकर बता दे! उनका कहना यह है कि शरीर में प्रकट न हो, फिर वह भय करके बता दे!
भय की भी परिस्थिति है, उसमें भय उतरता है। क्रोध की भी परिस्थिति है, उसमें क्रोध उतरता है। प्रेम की भी परिस्थिति है, उसमें प्रेम उतरता है। और ध्यान की भी परिस्थिति, एक सिचुएशन है, जिसमें ध्यान उतरता है। आप ध्यान ला नहीं सकते, सिर्फ सिचुएशन है। लेकिन आपने सिचुएशन भी पूरी कर ली हो और ध्यान न उतरे तो शिकायत भी नहीं कर सकते। यही समझना होगा कि कहीं परिस्थिति में भूल हो रही है। फिर प्रतीक्षा करनी होगी।
मैंने दरवाजा खोल दिया अपने घर का और सूरज घर के भीतर नहीं आया, तो मुझे समझना होगा कि अभी रात है, सूरज के उगने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। दरवाजा खुला रखूं, सुबह सूरज उगेगा, आ जाएगा। सूरज की रोशनी को हम गठरियों में बांध कर भीतर नहीं ला सकते, लेकिन हम चाहें तो इतने बड़े सूरज को भी एक दरवाजा बंद करके बाहर रोक सकते हैं।
यह बड़े मजे की बात है। ध्यान हम लाने में असमर्थ हैं, लेकिन रोकने में समर्थ हैं। हम रोशनी को रोक सकते हैं, ला नहीं सकते। और लाने के लिए तो सिर्फ इतना ही करना पड़ेगा कि दरवाजा बंद न हो, दरवाजा खुला हो। फिर भी दरवाजा बेमौके खुला हो और रोशनी न आए तो शिकायत किससे करेंगे? कोई शिकायत सुनने को नहीं है! प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। सूरज निकलेगा, रोशनी भीतर आ जाएगी।
तो मेरी समझ में, पहली तो बातः ध्यान अक्रिया है, नॉन-एक्शन है। दूसरी बातः ध्यान अवेटिंग है, ध्यान प्रतीक्षा है। असल में अक्रिया प्रतीक्षा ही कर सकती है। क्रिया दावा कर सकती है कि आओ। लेकिन जो कुछ भी नहीं कर रहा वह सिर्फ प्रतीक्षा कर सकता है कि आ जाओ तो धन्यवाद, न आओ तो कोई शिकायत नहीं है। मेरा कोई वश नहीं है, मैं खींच कर न ला सकूंगा।
किसान क्या करता है? बीज को बोकर प्रतीक्षा करता है। परिस्थिति जुटा
दी है उसने, पानी भी डाल दिया, खाद भी डाल दिया। अब राह देख रहा है बैठ कर कि बीज फूटे। और ध्यान रहे, अगर किसान जल्दी करे, जैसा कि कभी छोटे बच्चे करते

हैं। छोटे बच्चे आम की गोई को बो देते हैं जमीन में, घंटे भर बाद उखाड़ कर देखते हैं--अभी तक पौधा नहीं उगा? फिर गड़ा आते हैं, फिर घंटे भर बाद लौट कर देखते हैं। प्रतीक्षा नहीं है, बड़ा अधैर्य है--जल्दी से पौधा उग आए! तो जिस आम के बीज को बच्चा घंटे-घंटे में देख आता हो, फिर वह कभी नहीं उगेगा, यह भी ध्यान रखना। क्योंकि घंटे भर बाद निकाल लिया, उतना घंटा बेकार हो गया। अब वह फिर डाला, वह फिर शुरुआत हुई।
बीज को पड़े रहने देना पड़ेगा जमीन में, एकांत में, अंधेरे में वह चुपचाप फूटे, बड़ा हो, राह देखनी पड़ेगी। और यह भी ध्यान रहे कि जितना कमजोर बीज होगा, जितना मौसमी होगा, उतने जल्दी आ जाएगा। जितना बड़ा वृक्ष होगा, जितनी लंबी उम्र का वृक्ष होगा, उतनी देर लग जाएगी। इसलिए जल्दी की बहुत बात नहीं है।
मेरे पास कई लोग आते हैं, वे कहते हैं कि दो दिन हो गए अब ध्यान करते, अभी तक परमात्मा का दर्शन नहीं हुआ!
उनसे कुछ भी कहना व्यर्थ है, क्योंकि उन्हें ख्याल ही नहीं है कि वे क्या कह रहे हैं। उन्होंने दो दिन आंख बंद करके पंद्रह मिनट बैठ गए हैं तो वे परमात्मा को पाने के दावेदार और हकदार हो गए हैं। अगर परमात्मा कहीं हो तो किसी सुप्रीम कोर्ट में वे मुकदमा चला सकते हैं--दो दिन मैं पंद्रह मिनट आंख बंद करके बैठा, तुम आए नहीं।
जिंदगी बहुत धैर्य है। और जितनी गहरी चीज खोजनी हो उतने ही धीरज की जरूरत है। और मजा तो यह है कि जितना धीरज हो उतना जल्दी मिल जाता है और जितना अधैर्य हो उतनी देर लग जाती है। अगर धैर्य अनंत हो तो इसी क्षण मिल सकता है और अगर धीरज बिल्कुल न हो तो अनंत जन्मों में भटक कर भी नहीं मिल सकता।
परिस्थिति कैसे बने? हाउ टु क्रिएट दि सिचुएशन? ध्यान नहीं; ध्यान को
तो हम नहीं ला सकते, न पैदा कर सकते हैं। लेकिन ध्यान जिस द्वार से आता है, वह द्वार कैसे बने? उसके तीन सूत्र मैं आपको कहूं। उन तीन सूत्र का हम प्रयोग करेंगे और प्रतीक्षा करेंगे। वे तीन सूत्र जिस दिन पूरे हो जाते हैं उसी दिन आपको पता भी नहीं चलता कि कब आपकी जिंदगी बदल गई, ध्यान आ गया है।
और ऐसा नहीं है कि ध्यान धीरे-धीरे आता हो। ग्रेजुअल, डिग्री से आता हो, ऐसा नहीं है। ध्यान तो एक एक्सप्लोजन की तरह आता है। जब आपका द्वार खुला है और सूरज निकलेगा, तो ऐसा थोड़े ही है कि पहले एक किरण आएगी, फिर दूसरी किरण आएगी, फिर तीसरी किरण आएगी। न, द्वार खुला है और सूरज निकला है, तो पूरा सूरज उपस्थित हो गया, सब किरणें एक साथ घर में घुस गई हैं, एक एक्सप्लोजन हो गया है, विस्फोट हो गया है। प्रेम जब जीवन में आता है तो ऐसा थोड़े ही आता है एक-एक कदम रख कर। वह एकदम से उपस्थित हो जाता है। जैसे कि सौ डिग्री तक हम पानी को गरम करते हैं, फिर ऐसा थोड़े ही है... बस सौ डिग्री तक पानी गरम हुआ कि पानी की बूंद छलांग लगा कर भाप होने लगती है। फिर ऐसा नहीं है कि कोई बूंद अभी थोड़ी सी भाप हो गई है, अभी थोड़ी सी पानी है, ऐसा नहीं है। बूंद छलांग लगा कर भाप बनने लगती है। इधर पानी थी, इधर भाप, बीच में कोई डिग्री नहीं है। हां, पानी के गरम होने तक डिग्रियां हैं। सौ डिग्री तक डिग्रियां हैं।
तो ध्यान तो जब आता है, एकदम आ जाता है। लेकिन ध्यान के पहले परिस्थिति बनने में देर लग सकती है। वे डिग्रियां हैं, सौ डिग्री तक गरमी में देर लग सकती है। और यह बड़े मजे की बात है कि निन्यानबे डिग्री पर भी पानी पानी रहता है। अट्ठानबे पर भी पानी पानी रहता है। नब्बे पर भी पानी पानी रहता है। साढ़े निन्यानबे पर भी पानी पानी रहता है। जरा सरकते-सरकते जैसे ही सौ डिग्री पर पहुंचता है कि छलांग, जंप, वह पार हो गया। आधा डिग्री पहले भी पानी पानी ही था। सिर्फ गरम पानी था, कोई फर्क नहीं पड़ा था। ठंडे पानी और गरम पानी में क्या फर्क पड़ा था! इतना ही फर्क पड़ा था कि आधी डिग्री की छलांग अगर पूरी हो जाए तो साढ़े निन्यानबे डिग्री तक जो पानी पहुंच गया था वह भाप बन जाएगा और दस डिग्री पर जो पानी था वह भाप नहीं बनेगा। बाकी दोनों पानी हैं। और साढ़े निन्यानबे डिग्री से भी वापस लौट आना संभव है। अनिवार्यता नहीं है कि साढ़े निन्यानबे डिग्री पर आप पहुंच गए तो सौ पर

पहुंच ही जाएंगे। वापस भी लौट सकते हैं। आधा डिग्री से भी सब खो सकता है। और मेरी अपनी समझ यह है कि परमात्मा को हम बहुत करीब-करीब से खोते हैं, बहुत दूर से नहीं, जस्ट बाइ दि कार्नर, बस चूक जाते हैं।
मैंने सुना है कि एक अंधा आदमी एक महल में था। उस महल में हजार दरवाजे थे। और वह अंधा आदमी एक-एक दरवाजे को टटोल रहा है। बाहर निकलने के लिए रास्ता खोज रहा है। वह नौ सौ निन्यानबे दरवाजे टटोल चुका है, अब एक ही दरवाजा बचा है जो खुला है। लेकिन जब उस दरवाजे के पास आया तो उसे खुजान आ गई। और उसने सिर खुजला लिया और आगे निकल गया। अब वह फिर बंद दरवाजों पर खोजने लगा। अब फिर नौ सौ निन्यानबे दरवाजों पर भटकेगा, तब कहीं वह फिर हजारवां दरवाजा आएगा। और पता नहीं उसको फिर चूक जाए। जरा सी खुजलाहट उठे और दो कदम आगे बढ़ जाए, फिर दीवाल है।
हम इतने ही करीब से चूकते हैं, ज्यादा दूर से चूकते नहीं हैं। बिल्कुल मुड़ते-मुड़ते मुड़ जाते हैं। जरा सी बात, और सब खतम हो जाता है।
तीन सूत्र इस तैयारी के लिए। ये सिर्फ भूमिका के सूत्र हैं। इस भूमिका में ध्यान उतर सकता है। पहला सूत्र है जिसे मैं कहता हूंः बहने का भाव।
नदी के किनारे अगर जाकर देखें, एक आदमी नदी में उतरे तो वह तैरेगा, पानी से लड़ेगा, कहीं पहुंचने की कोशिश करेगा। पास में ही एक सूखा पत्ता बहा जा रहा है। वह तैरता नहीं, उसे कहीं पहुंचना नहीं, वह सिर्फ बहा चला जा रहा है। देखें, उस सूखे पत्ते का मन बिल्कुल शांत होगा। क्योंकि तैरने की कोई चेष्टा ही नहीं है। जस्ट फ्लोटिंग, कोई लड़ाई नहीं है नदी से। नदी पर सवार हो गया सूखा पत्ता। वह नदी के कंधों पर बैठ गया। वह कहता हैः जहां ले चलो, चलते हैं। हम न तैरेंगे। हम तैरने की झंझट क्यों लें? जब नदी ही इतने जोर से तैर रही है तो हम साथ चलते हैं। वह नदी से लड़ता नहीं है, वह नदी के साथ एक हो गया। लहरें ऊपर उठाती हैं, ऊपर उठ जाता है; बहाती हैं, बह जाता है।
एक दूसरा आदमी तैर रहा है। वह सारी ताकत लगा रहा है। वह नदी से लड़ रहा है।
चित्त की भी दो दशाएं हैंः तैरने की और बहने की। अगर तैरने की दशा में
आप हैं तो आप एक्शन में चले जाएंगे, कर्म में चले जाएंगे। क्योंकि बिना तैरने के भाव के कोई कर्म में नहीं जा सकता। तो जितना एक्टिव माइंड होगा उतना तैरता रहेगा, जिंदगी में पूरे वक्त तैरता रहेगा, सब कामों में तैरता रहेगा। पूरे समय वह अनजानों से लड़ रहा है--नदियों की धाराओं से लड़ रहा है, जीवन की धारा से लड़ रहा है, लोगों से लड़ रहा है, स्थितियों से लड़ रहा है--वह लड़ रहा है। वह एक फाइटर है जो पूरे वक्त लड़ रहा है।
लेकिन मैं कह रहा हूं कि ध्यान है अक्रिया, नॉन-एक्शन। तो लड़ना छोड़ देना पड़े, बहना पड़े। एक सूखे पत्ते को ध्यान में कर लें जो नदी में बह रहा है। तो एक घड़ी भर के लिए ऐसे ही सूखा पत्ता हो जाना है कि बहे जा रहे हैं, लड़ नहीं रहे हैं। तो यह बहने की जो भावदशा है, यह ध्यान की बड़ी अनिवार्य शर्त है। अगर यह पूरी हो जाए तो ध्यान उतर सकता है।
लेकिन हम अगर ध्यान के लिए भी बैठेंगे तो उसमें भी एक भीतरी लड़ाई जारी रहेगी कि मुझे ध्यान करना है। हाथ बंधे रहेंगे, दांत भिंचे रहेंगे। आप किसी से लड़ने जा रहे हैं? ध्यान में आदमी बैठेगा तो अकड़ा रहेगा, स्टें्रड रहेगा। कोई लड़ाई कर रहे हैं? तैर रहे हैं?
नहीं, रिलैक्स छोड़ देना है, सब शिथिल छोड़ देना है। कुछ भी लड़ाई नहीं करनी, बस बह जाना है। तो पांच मिनट पहले इस प्रयोग को हम करेंगे, बहने के इस भाव को समझने के लिए। जब इस प्रयोग के लिए हम पांच मिनट करके समझ लेंगे कि क्या बहने का भाव है, फिर हम दूसरा प्रयोग, फिर तीसरा। तीन सूत्र अलग-अलग समझेंगे और फिर ध्यान के लिए इकट्ठा बैठेंगे, वह तीनों सूत्रों का इकट्ठा जोड़ होगा।
इस बहने के भाव में शरीर को एकदम शिथिल छोड़ देना जरूरी बात है। क्योंकि बहने के लिए तनाव की कोई जरूरत नहीं है। और सारे लोग एक-दूसरे से थोड़े-थोड़े फासले पर हो जाएं। कोई किसी को छूता हुआ न हो। कोई किसी को छूता न हो, इसका ख्याल कर लें। क्योंकि दूसरे का स्पर्श आपको कभी बहने की हालत

में न आने देगा। दूसरे का स्पर्श आपको पूरे समय बहुत गहरे तनाव से भरता रहता है। स्पर्श तो बहुत दूर की बात है, दूसरे की मौजूदगी, दूसरे का होना भी आपको भीतरी तनाव से भर देता है।
आप अपने बैठकखाने में बैठे हैं अकेले, तब आप दूसरे आदमी होते हैं। और
एक आदमी ने आकर बेल बजाई, घंटी बजाई, आप फौरन दूसरे आदमी हो गए। आदमी कमरे के भीतर आया, आप बदल गए। आपकी सब हड्डी, रग-रेशा, सब बदल गया, सब खिंच गया। अब आप वही आदमी नहीं हैं जो घड़ी भर पहले आराम से बैठा हुआ था। आप बाथरूम में दूसरे आदमी होते हैं, बैठकखाने में दूसरे आदमी होते हैं। बाथरूम में आप रिलैक्स्ड होते हैं, किसी की मौजूदगी का कोई सवाल नहीं है। तो बूढ़ा भी कभी-कभी बाथरूम में बच्चों जैसे काम करता है। कभी आईने में मुंह भी बिचका लेता है। लेकिन उसे अगर पता चल जाए कि की-होल से कोई झांक रहा है, सब बदल जाएगा। बच्चा गया, बूढ़ा फिर बूढ़ा हो गया, सख्त। तो दूसरे की मौजूदगी तक बाधा देती है। दूसरे का स्पर्श बाधा देता है। तो स्पर्श कोई किसी का न कर रहा हो। और इसीलिए फिर हम आंख बंद कर लेंगे, ताकि दूसरा भूला जा सके। आप अकेले हैं, ताकि आप पूरी तरह शिथिल हो सकें।
फिर यहां तो हम प्रयोग ही कर रहे हैं। इस प्रयोग को समझ कर, जब आप अकेले रात अपने बिस्तर पर लेटें तब इसको करें। अंधेरा हो गया है, सारी दुनिया बंद हो गई, द्वार बंद हो गया, अंधेरे में चुपचाप पड़े हैं। नींद आने के पहले इस प्रयोग को करें। इस प्रयोग को करते-करते ही सो जाएं।
आप सुबह अपनी नींद की क्वालिटी में फर्क पाएंगे, वह बदल गई। सुबह आप
और तरह से उठेंगे। ज्यादा ताजे होंगे, ज्यादा शांत होंगे, ज्यादा आनंदित होंगे। क्रोध की संभावना कम हो जाएगी, तनाव की संभावना कम हो जाएगी। और यह तो स्थिति है, सौ डिग्री तक जब पहुंचेगी तब वह ध्यान भी घट जाएगा।

तो पहले पांच मिनट हम बहने का प्रयोग करेंगे।
आंख बंद कर लें। बंद कर लें, कहना गलत है। आंख बंद हो जाने दें। धीरे
से पलक छोड़ दें। शरीर को ढीला छोड़ कर बैठ जाएं। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद हो गई है, शरीर को ढीला छोड़ दें, पलक को झुक जाने दें। पलक पर भी जोर न डालें, उतना जोर भी ठीक नहीं है। उसे धीरे से छोड़ दें, पलक बंद हो गया। शरीर को ढीला छोड़ दें और बिल्कुल आराम से बैठ जाएं। हम कोई काम में नहीं जा रहे हैं, एक बहने का प्रयोग करने जा रहे हैं, इसलिए बिल्कुल ढीला बैठ जाएं। कठिनाई जरा भी नहीं है, सिर्फ तैयारी पूरी दिखाएं, बहना हो जाएगा।
शरीर ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें और एक छोटा सा चित्र अपनी कल्पना में देखना शुरू करेंः सुबह है, सूरज निकला, उसकी धूप में दो पहाड़ चमकते हैं और पहाड़ के बीच से भागती हुई एक नदी है। सिर्फ कल्पना कर लें, ताकि बहने का भाव समझ में आ सके। दो पहाड़ों के बीच में, सूरज की चमकती रोशनी में एक नदी भागी जा रही है। नदी भाग रही है, बह रही है। इसे ठीक से देख लें, क्योंकि जल्दी ही हम भी इसमें उतर जाएंगे और हम भी इस नदी में बह जाएंगे। नदी बह रही है, बराबर दिखाई पड़ने लगेगी, दो पहाड़ हैं चमकते हुए, सूरज की रोशनी में भागती हुई बीच में नदी है। नदी भागी जा रही है, इसमें अपने को भी छोड़ दें, आहिस्ता से उतर जाएं। लेकिन तैरें नहीं, छोड़ दें सूखे पत्ते की भांति, बस बहने लगें, नदी के साथ बहने लगें। नदी भागी जा रही है, आप भी नदी में बहे जा रहे हैं। अपने को बहता हुआ देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें। और बिल्कुल ढीला छोड़ दें, नदी ले जाएगी, आपको कुछ भी करना नहीं है। एक पांच मिनट एक ही भाव मन में रह जाए कि मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं। हाथ भी नहीं हिलाना है, तैरना नहीं है, कहीं पहुंचना नहीं है, नदी भागी जा रही है, मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं। एक पांच मिनट एक ही भाव मन में रह जाएः मैं बह रहा हूं, मैं बहा जा रहा हूं, कर कुछ भी नहीं रहा हूं, बस बह रहा हूं। और बहते-बहते ही मन हलका और शांत होने लगेगा, एक नई ताजगी भीतर भर जाएगी, बहते- बहते ही सब तनाव खो जाएगा। अभी पांच मिनट बाद जब नदी से बाहर निकलेंगे तो मन की पूरी परिस्थिति बदल जाएगी।
अब मैं पांच मिनट के लिए चुप हो जाता हूं। आप बहें और बहते जाएं, ढीला छोड़ते जाएं अपने को, बिल्कुल ढीला छोड़ दें। शरीर झुके, झुक जाए; गिरे, गिर

जाए; शरीर की फिक्र ही न करें, बिल्कुल ढीला छोड़ दें, कोई तनाव न रखें। झुकेगा, झुक जाएगा; फिर आगे झुकेगा, पीछे झुकेगा; शरीर गिरेगा, गिर जाएगा; बिल्कुल ढीला छोड़ दें और बहें...
देखें, चेहरे पर कोई तनाव न लें, क्योंकि बह रहे हैं; माथे को न सिकोड़ें, क्योंकि बह रहे हैं; कोई भारी काम नहीं कर रहे हैं; काम ही नहीं कर रहे हैं, बस बहते जा रहे हैं... चेहरा हलका और शांत हो जाएगा, चेहरे की रेखा- रेखा शांत हो जाएगी, भीतर मन शांत हो जाएगा... मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं... श्वास-श्वास में एक ही बात रह जाए--मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं, मैं बहता जा रहा हूं... मन हलका और शांत हो जाएगा... मैं बह रहा हूं, नदी भागी जा रही है... मन बिल्कुल ताजा, नया और शांत हो जाएगा... मैं बह रहा हूं, कुछ कर नहीं रहा, बस बहता जा रहा हूं, एक सूखे पत्ते की भांति बहता जा रहा हूं... मैं बह रहा हूं... मन हलका और शांत हो जाएगा...
छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, बह जाएं, एक सूखा पत्ता हो जाएं... नदी भागी
जा रही है, मैं बहा जा रहा हूं... मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं... कुछ कर नहीं रहा, सब हो रहा है--नदी बह रही है, सूरज निकला है, मैं भी बह रहा हूं... कुछ कर नहीं रहा हूं, सिर्फ बहता जा रहा हूं... और मन बिल्कुल शांत हो और हलका होता जाएगा... भीतर एक गहरी शांति का जन्म हो जाएगा, जैसे एक बोझ उतर गया, जैसे मन से एक भार उतर गया... मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं... मैं बह गया एक सूखे पत्ते की भांति, कुछ कर नहीं रहा हूं, सिर्फ बह रहा हूं... अपने को बहता हुआ देख लें, ठीक से पहचान लें, यह भीतर जो फीलिंग, जो भाव है बहने का, इसको पहचान लें, ध्यान की यह पहली कड़ी है... मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं... छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, जरा सी भी पकड़ न रखें अपने पर, जरा भी तनाव न रखें... मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं, मैं बह रहा हूं... मन एकदम शांत और हलका हो जाएगा... बहने में अशांति कहां? तैरने में अशांति हो सकती है। बहने में अशांति कहां? तैरने में तनाव हो सकता है। बहने में तनाव कहां? छोड़ दें, इस भाव को ठीक से पहचान लें, मैं बह रहा हूं...
फिर धीरे-धीरे नदी के बाहर निकल आएं... तट पर खड़े हो गए हैं... नदी अब भी बही जा रही है... लेकिन देखें, पांच मिनट के बहने से फर्क पड़ा है, मन हलका हुआ है...
फिर धीरे-धीरे आंख खोल लें। दूसरा प्रयोग समझें। और फिर हम दूसरे प्रयोग के लिए बैठेंगे। धीरे-धीरे आंख खोल लें।
बहने का ख्याल आ जाए तो मन के बोझ गिर जाते हैं, तैरने का ख्याल आ जाए
तो मन के बोझ बढ़ जाते हैं। तैरने का ख्याल आ जाए तो यह दुनिया दुश्मन की तरह मालूम पड़ने लगती है। हम लड़ रहे हैं, सब चीजों से लड़ रहे हैं। बहने का ख्याल आ जाए तो यह दुनिया मां की गोद जैसी हो जाती है, हम उसमें लेट गए हैं, सो गए हैं, बह गए हैं। ध्यान में जिन्हें जाना है उन्हें बहने की कला सीखनी ही पड़े, उसके सिवाय कोई उपाय नहीं।

दूसरा सूत्र हैः न हो जाने की, नहीं हो जाने की, मिट जाने की बात।
एक फकीर हुआ है, नसरुद्दीन। उसने एक दिन अपनी पत्नी को पूछा कि लोग मर जाते हैं, लेकिन जो मरता है उसे पता कैसे चलता होगा कि मैं मर गया?
तो उसकी स्त्री ने कहा कि तुम्हें न मालूम कहां-कहां की नासमझी के ख्याल उठते हैं। जब मरोगे तब पता चल जाएगा, अभी से क्या फिक्र लेनी!
पर नसरुद्दीन ने कहा, जब मरूंगा तब पता चला कि न चला। अभी जब तक होश में हूं तब तक पता तो लगा लूं कि मरने पर क्या होगा!
उसकी स्त्री ने सिर्फ बात टालने को कहा कि हाथ-पैर ठंडे हो जाएंगे तो अपने आप पता चल जाएगा।
नसरुद्दीन एक दिन सुबह-सुबह जंगल में लकड़ी काटने गया है। सर्द है, काफी सर्दी पड़ रही है, हाथ-पैर ठंडे होने लगे। तो उसने सोचा कि लगता है मरे। तो उसने मरे हुए लोगों को देखा था, कभी किसी मरे हुए आदमी को खड़ा हुआ नहीं देखा था। तो उसने सोचा कि मर ही रहे हैं तो लेट जाना चाहिए, क्योंकि सभी मुर्दे लेटे हुए देखे। तो उसने जल्दी से कुल्हाड़ी छोड़ दी और लेट गया। ठंडी सुबह थी, कुल्हाड़ी चला रहा था तो थोड़ी गरमी भी थी। कुल्हाड़ी भी छूट गई और लेट गया तो और ठंडा होने लगा। और ठंडा होने लगा तो उसने कहा, मामला खतम,

अब कुछ बचने का उपाय नहीं। थोड़ी देर में बिल्कुल ठंडा हो गया तो उसने सोचाः मुर्दे न तो बोलते, न उठते, न चिल्लाते, न किसी से कहते कि मैं मर गया। वह तो लोगों को ही पता लगाना पड़ेगा कि मैं मर गया, क्योंकि मुर्दे को कभी कहते नहीं सुना कि मैं मर गया। तो वह पड़ा रहा। अकड़ गया बिल्कुल।
पास से कुछ लोग, यात्री गुजरते थे, उन्होंने देखा कि मालूम होता है कोई मर गया। तो उन्होंने खड़े होकर बात की। तो नसरुद्दीन ने कहा आ गए लोग। सदा लोग आ जाते हैं कोई मर जाए तो। उन्होंने अरथी बनाई कि अब इसको मरघट तक तो पहुंचा दें। उसे अरथी पर बांधा, अरथी पर बांध कर ले चले। लेकिन वे अजनबी लोग थे और उस गांव के रास्ते उन्हें पता न थे। जब वे चौरस्ते पर पहुंचे तो एक रास्ता गांव को जाता था, एक दूसरे गांव को जाता था। तो उन्होंने कहा, पता नहीं मरघट को कौन सा रास्ता जाता है? नसरुद्दीन को पता था। लेकिन उसने सोचा कि मुर्दे कभी बताते नहीं कि मरघट का रास्ता कहां जाता है। लेकिन उन्होंने कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई, रास्ते पर कोई दिखाई नहीं पड़ता, कोई दिख जाए तो मरघट का रास्ता पूछ लें। फिर वे बड़े घबड़ा गए, उन्हें दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। उन्होंने कहा, यह कहां की मुसीबत ले ली है। अब इस आदमी को मरघट तक तो पहुंचा ही देना चाहिए, लेकिन कोई दिखाई नहीं पड़ता। नसरुद्दीन ने बहुत बार सोचा कि बता दूं, मुझे तो पता है। लेकिन मुर्दों ने कभी बताया नहीं। लेकिन आखिर वे लोग जाने ही लगे छोड़ कर तो उसने कहा कि अब इमरजेंसी की हालत में तो बता ही देना चाहिए। तो उसने कहा कि सुनो भई, जब मैं जिंदा हुआ करता था तब लोग बाएं रास्ते से मरघट जाते थे। और फिर जल्दी से वह अपनी अरथी में सो गया। तो उन्होंने कहा कि तू कैसा पागल है! अगर तू बता सकता है तो उठ, हमें क्यों परेशान कर रहा है!
उसे उन्होंने उठा दिया। वह घर लौट आया। उसने अपनी पत्नी से कहा कि तूने भी क्या बात बताई थी कि हाथ-पैर ठंडे हो जाएं तो आदमी मर जाता है! हम बड़ी मुश्किल में पड़ गए! न केवल हम मुश्किल में पड़े बल्कि चार आदमी और भी मुश्किल में पड़े! लेकिन तुझे मैं धन्यवाद देता हूं, क्योंकि एक बहुत अदभुत घटना घट गई!
उसकी पत्नी ने कहा, वह क्या हुआ?
उसने कहा कि जब मैंने मान लिया कि मैं मर गया, तो मैं इतना शांत हो गया जितना मैं कभी भी न था। हालांकि मैं जिंदा था। लेकिन जब मैंने मान लिया कि मैं मर ही गया, तो मैंने सोचा अब कैसी अशांति! जब मैं लेटा रहा उस वृक्ष के नीचे और जब मेरी अरथी बांधी गई, तब मैंने जिंदगी में जो शांति जानी वह मैंने कभी भी नहीं जानी थी। हालांकि तूने गलत बताया था कि हाथ ठंडे होने से आदमी मर जाता है। लेकिन अच्छा ही हुआ कि तूने बताया, नहीं तो इस शांति को मैं कभी भी न जान पाता। अब तो मैं ऐसे ही जीऊंगा जैसे मर ही चुका हूं। उसकी पत्नी ने कहा, यह क्या पागलपन है?
उसने कहा, अब मैं वह जिंदा होने का बोझ अपने सिर पर लेने को राजी नहीं। मैंने इतना आनंद जाना है इस थोड़ी सी घड़ी में, जब मैं अरथी पर बंधा था, तब मुझे पता चला कि यह ख्याल कि मैं हूं, मेरी सारी मुसीबत की जड़ है। अब मैं तो मर ही गया, अब तू मुझे जिंदा मत समझ।
उस दिन से नसरुद्दीन की जिंदगी और जिंदगी हो गई!
तो दूसरी ध्यान के लिए जो बहुत गहरी शर्त है वह है मिट जाने का भाव। जब
तक हमें यह ख्याल है कि मैं हूं, तब तक हम शांत नहीं हो सकते। यह "मैं हूं" ही हमारी सारी अशांति है। यह स्वर हमारे भीतर गूंजता ही रहता है कि मैं हूं। और मजे की बात है कि यह स्वर हम गुंजाते हैं इसीलिए गूंजता है, अगर हम छोड़ दें तो यह चला जाता है। फिर भी हम होते हैं, लेकिन बहुत दूसरे अर्थों में। फिर हम "मैं" होने के अर्थों में नहीं होते। फिर भी हम होंगे। नसरुद्दीन भी था, कोई हाथ-पैर ठंडे होने से मर नहीं गया था। और मजा तो यह है कि नसरुद्दीन ही नहीं मरा, हाथ-पैर ठंडे होने से कोई कभी नहीं मरा। जिनको आप अरथी में जला भी आए हैं, वे भी नहीं मरे। मरता तो कोई नहीं है। वे अगर अरथी में उसको जला भी आते तो भी कोई खास फर्क पड़ने वाला नहीं था। जो जल जाता है वह हमारा होना नहीं है। जो जलने के पीछे भी बच जाता है वही हम हैं। लेकिन उसका हमें पता तब चलता है जब यह मैं का भाव छूट जाए। क्योंकि हमने इस मैं के भाव को इस शरीर से, मन से, विचार से, अहंकार से जोड़ा हुआ है

कि यही मैं हूं। यह सब मिटने वाला है, यह सब मिट ही जाएगा। यह इसके पहले कि अपने आप मिटे, अगर किसी ने इसको मिटते हुए देख लिया, तो वह परम शांति को उपलब्ध हो जाता है।
तो दूसरा सूत्र हैः मिटने का, न होने का, नथिंगनेस का भाव।
वह भी हम पांच मिनट के लिए प्रयोग करेंगे ताकि ख्याल में आ जाए। और एक दफे ख्याल में आ जाए तो आप फिर दूसरे ढंग से जीना शुरू कर देते हैं।
नसरुद्दीन को फिर कोई गाली देता था तो वह कहता, अच्छा तुम उस नसरुद्दीन को गाली दे रहे हो जो मर गया? अगर होता, बेटे, तो तुम्हें मजा चखा देता। लेकिन अब वह है ही नहीं। नसरुद्दीन अपने रास्ते पर चला जाता।
लोग कहते, तेरा दिमाग तो खराब नहीं हो गया? हम तुझे गाली दे रहे हैं।
वह कहता कि सुना मैंने, लेकिन तुम उस नसरुद्दीन को गाली दे रहे हो जो
मर चुका।
निश्चित ही, अब इस आदमी को गाली नहीं दी जा सकती। क्योंकि गाली पकड़ने वाला "मैं" था, वह अब नहीं है। असल में गाली देने से कुछ भी नहीं होता, गाली पकड़ना आना चाहिए। अगर मैं आपको गाली भी दे दूं, आप न पकड़ें तो बेकार चली जाए। सवाल तो पकड़ने का है। और अगर मैं न भी दूं और आप पकड़ने में कुशल हों, तो मेरी आंख देख कर पकड़ लें, मेरी चाल देख कर पकड़ लें कि यह आदमी कुछ गाली देता मालूम पड़ रहा है! पकड़ने में कुशल हो आदमी तो जहां गाली नहीं दी जा रही वहां भी पकड़ सकता है और पकड़ना भूल जाए तो जहां दी जा रही है वहां भी नहीं पकड़ सकता। फिर क्या करेगा?
तो नसरुद्दीन हंसता रहता। वह कहता कि मरे हुए को गाली देते हो जो आदमी नहीं रहा! अरे कुछ तो शर्म खाओ कि जो आदमी रहा ही नहीं उसको क्या गाली देते हो! फिर नसरुद्दीन दुखी न हुआ। क्योंकि दुखी होने वाला ही मर गया। हमारे भीतर दुखी होने वाला एक सूत्र है, वह मैं है। वह दुखी होता चला जाता है। तो आंख बंद कर लें--बंद कर लें नहीं, बल्कि बंद हो जाने दें--शरीर को फिर ढीला छोड़ दें और दूसरे सूत्र को समझने की कोशिश करें। नसरुद्दीन बन जाएं। आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें... शरीर को ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें... बिल्कुल ढीला छोड़ दें, कोई काम करने नहीं जा रहे हैं, हम मरने जा रहे हैं... बिल्कुल ढीला छोड़ दें, जैसे शरीर है ही नहीं... आंख बंद है, शरीर ढीला छोड़ दिया... झुके, झुके; गिरे, गिरे; लेटे, लेटे... छोड़ दें बिल्कुल ढीला...
अब एक दूसरा चित्र देखेंः मरघट पर खड़े हैं; खड़े नहीं, लेटे हैं, अरथी में बंधे हैं। बहुत बार मरघट गए होंगे दूसरे को पहुंचाने, कभी-कभी अपने को पहुंचाने भी जाना अच्छा है। इस बार अपने को ही पहुंचाने आ गए हैं। मरघट है, मित्र-प्रियजन, सारे पहचान, जान-पहचान के लोग चारों तरफ घेरे खड़े हैं। अरथी रखी है, आप ही बंधे हैं, कोई और नहीं। मन तो कहेगा किसी दूसरे को देख लो। नहीं लेकिन, आप ही बंधे हैं, कोई दूसरा नहीं। इस अरथी पर कोई और नहीं बंधा, आप ही बंधे हैं। इस चेहरे को ठीक से पहचान लें, आईने में बहुत बार देखा है, वही चेहरा है। अरथी पर आप ही हैं। मैं ही हूं अरथी पर, ठीक से पहचान लें। अरथी पर बंधा हूं।
यह ख्याल भी कि मैं अरथी पर बंधा हूं, भीतर बहुत शांति ले आएगा। यह ख्याल भी कि अरथी पड़ी है मेरी ही, सब कुछ बदल जाएगा। अरथी को उन्होंने चिता पर चढ़ा दिया है, लकड़ियों के ढेर पर रख दिया है, अब वे आग लगा रहे हैं। आग लग गई है। देखेंः अंधेरी रात, आग लग गई है, लपटें आकाश की तरफ भाग रही हैं, चिता जल रही है, धुआं फैल रहा है... लकड़ियां ही नहीं जल रही हैं, मैं भी जल रहा हूं... देखें, मैं भी जल रहा हूं... और मित्र-प्रियजन दूर हट गए, लपटें बहुत गरम हैं, अरथी जोर से जल रही है, थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा... लपटें आकाश की तरफ भाग रही हैं और मैं जल रहा हूं, मिट रहा हूं... एक ही भाव मन में रह जाए--मैं मिट रहा हूं, मैं मिट रहा हूं, मैं समाप्त होता जा रहा हूं... और जैसे-जैसे लपटें बढ़ेंगी, राख होता जाएगा शरीर, वैसे-वैसे भीतर अपूर्व शांति आ जाएगी, सन्नाटा आ जाएगा। अब मिट ही गए तो अशांति कैसी?
पांच मिनट के लिए देखते रहेंः मिट रहा हूं, मित्र जा चुके, मरघट पर सन्नाटा छा गया, लपटें जलती जा रही हैं... थोड़ी देर में सब राख हो जाएगा... सब राख होता जा रहा है... मैं मिट रहा हूं, मैं मिट रहा हूं... छोड़ दें अपने

को, बिल्कुल मिट जाएं... जो मिटने वाला है वह मिट जाएगा, जो नहीं मिटने वाला है वह पार खड़ा होकर देखता रहेगा, अपने को ही मिटते और जलते देखता रहेगा... जो मिटता है उसे मिट जाने दें, जो नहीं मिटता है वह मिटेगा ही नहीं...
सब मिट रहा है, मैं मिट रहा हूं, मैं मिट रहा हूं... मन शांत और हलका होता जाएगा... मैं मिट रहा हूं, मैं मिट रहा हूं... मैं बिल्कुल मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... शांत, सब शांत हो गया है, लपटें भी बुझने लगीं, राख और अंगारों का ढेर रह गया है... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मरघट पर सन्नाटा है, अंधेरा घना हो गया, अंगारे बुझते जा रहे हैं, बस राख का एक ढेर रह गया... इस ढेर को ठीक से देख लें, इसे ठीक से पहचान लें, इसकी पहचान बड़ी कीमती है... राख का ढेर रह गया, मैं बिल्कुल मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... और देखें, कैसी शांति, कैसा सन्नाटा भीतर घेर लेता है...
मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... सब मिट गया... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं बिल्कुल मिट गया हूं... मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल हलका हो गया है, कोई बोझ नहीं, कोई भार नहीं, कोई तनाव नहीं। मैं मिट ही गया हूं--कैसा बोझ? कैसा तनाव? कैसी अशांति? मैं बिल्कुल मिट गया हूं...
मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... एक ही भाव रह जाए--मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं मिट गया हूं... मैं नहीं हूं... मैं नहीं हूं... मैं नहीं हूं... इस भाव को ठीक से पहचान लें, ध्यान के मंदिर में प्रवेश की अनिवार्य सीढ़ी है। मैं रहते कोई ध्यान में प्रवेश नहीं कर सकता। मैं मिट गया हूं... मैं नहीं हूं... इस भाव को ठीक से पहचान लें... मैं नहीं हूं... मन बिल्कुल शांत हो गया...
फिर धीरे-धीरे आंख खोल लें। तीसरे प्रयोग को समझें और उसे करके देखें। मैं नहीं हूं, यह भाव जितना गहरा हो जाए उतनी वह परिस्थिति पैदा हो जाती है जिसमें ध्यान उतर सकता है। मैं के अतिरिक्त शायद और कोई पत्थर नहीं है जो उसे आने से रोकता हो। मैं नहीं हूं, यह दरवाजा खुल जाता है, खाली जगह पैदा हो जाती है, स्पेस बन जाती है जहां से ध्यान आ सके।

अब तीसरा सूत्र है, तीसरा सूत्र सर्व-स्वीकृति का है, टोटल एक्सेप्टेंस का है।
जीवन में हमारे बड़े अस्वीकार हैं। जीवन हमारा पूरा रेसिस्टेंस है। और हमें पता नहीं है कि रेसिस्टेंस से, प्रतिरोध से, अस्वीकार से हमने बड़ी अशांतियां इकट्ठी कर ली हैं।
मैं एक छोटे से रेस्ट हाउस में मेहमान था। उस प्रदेश के चीफ मिनिस्टर
भी वहां ठहरे थे उस रात। रात मैं भी कोई साढ़े दस बजे लौटा, वे भी कोई पौने ग्यारह बजे लौटे। छोटा सा गांव है, छोटा सा रेस्ट हाउस है। पता नहीं क्यों, कोई दस-पंद्रह कुत्ते उस रेस्ट हाउस के आस-पास इकट्ठे हैं, लड़ रहे हैं, झगड़ रहे हैं। मैं तो सो गया, वे चीफ मिनिस्टर थोड़ी देर बाद मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि आपको सोया देख कर मुझे बड़ी ईर्ष्या मालूम होती है। मैं इन कुत्तों को कई बार भगा आया, लेकिन ये हैं कि वापस लौट आते हैं। इतना शोर कर रहे हैं कि सोना कैसे संभव हो सकता है!
मैंने उनसे कहा, कुत्तों को पता भी नहीं होगा कि आप यहां मेहमान हैं। अखबार नहीं पढ़ते, रेडियो नहीं सुनते। कुत्तों को क्या खबर होगी कि चीफ मिनिस्टर यहां ठहरा है। उनको क्या मतलब आपको परेशान करने से! उनको ख्याल भी न होगा कि आपकी नींद को नुकसान पहुंचाना है। कुछ पिछले जन्मों के संबंध हों, तब तो बात अलग। बाकी इस जन्म का तो कोई संबंध दिखाई नहीं पड़ता कि वे आपको परेशान करने आएं। आप सो जाएं, उन्हें भौंकने दें।
उन्होंने कहा, यह कैसे हो सकता है? कुत्ते भौंकते रहें और मैं सो जाऊं!
मैंने उनसे कहा, कुत्तों के भौंकने से कोई बाधा नहीं पड़ती, कोई डिस्टरबेंस नहीं होता। लेकिन कुत्ते नहीं भौंकना चाहिए, इस भाव से बाधा पड़ती है। मैंने कहा, एक प्रयोग करके देखें। कुत्ते तो भागेंगे नहीं, कुत्तों को आप भगा आएंगे, लौट आएंगे। यह कब तक करेंगे रात भर? मेरी बात

मानें, सो जाएं बिस्तर पर और कुत्तों के भौंकने को स्वीकार कर लें। स्वीकार कर लें कि कुत्ते भौंकते हैं, सुनें चुपचाप, राजी हो जाएं कि कुत्ते भौंकते हैं और मैं सोता हूं। इन दोनों में विरोध न बनाएं। कुत्तों के भौंकने में, आपके सोने में विरोध है भी नहीं। कुत्तों को भौंकने दें, आप स्वीकार कर लें। कुत्तों की आवाज गूंजेगी आपके भीतर और चली जाएगी। आप चुपचाप सुनते रहें, विरोध न करें, इनकार न करें, कुत्ते नहीं भौंकना चाहिए ऐसा भाव न करें।
उन्होंने कहा, इससे क्या होगा? कुत्ते भौंकते रहेंगे। मेरे इस भाव से कुत्ते कैसे रुकेंगे?
मैंने कहा, कुत्ते नहीं रुकेंगे, आप रुक जाएंगे।
कोई रास्ता न था। एक-दो बार उन्होंने और भगाए कुत्ते, लेकिन वे वापस लौट आए। फिर मेरी बात मानने के सिवाय कोई उपाय न देख कर वे बिस्तर पर लेट गए। पता नहीं कब सो गए।
सुबह कोई छह बजे मुझे उन्होंने उठाया और उन्होंने कहा, आश्चर्यजनक है
यह बात! मैं लेट गया और मैंने स्वीकार कर लिया कि ठीक है, कुत्ते भौंकते हैं, मेरा कोई विरोध नहीं। मैं कुत्तों के भौंकने को भी शांति से सुनता रहा। पता नहीं कब नींद लग गई। और न केवल नींद लगी बल्कि बरसों बाद इतना गहरा मैं सोया हूं।
क्योंकि नींद अविरोध में, नॉन-रेसिस्टेंस में जब आ जाए तो बहुत गहरी
हो जाती है। ध्यान में नॉन-रेसिस्टेंस, अविरोध बड़ी गहरी जरूरत है। आमतौर से कोई आदमी ध्यान करने बैठे तो बहुत परेशान हो जाता है--कहीं कुत्ते भौंकते हैं, कहीं कौवे आवाज करते हैं, कहीं बच्चा रोता है, कहीं घर में बर्तन गिर जाता है। एक घर में एक आदमी पूजा, प्रार्थना, ध्यान करने लगे तो पूरे घर को परेशान करने लगता है। और वह आदमी ध्यान करने जितना अशांत गया था, उससे ज्यादा अशांत ध्यान करने के बाद ध्यान के कमरे के बाहर निकलता है क्योंकि सारी दुनिया से लड़ाई ले रहा था वह।
अब सारी दुनिया आपके ध्यान के लिए रुकेगी? कोई प्रयोजन भी नहीं है। दुनिया चलती रहेगी, रास्ते पर कारें गुजरेंगी, हॉर्न बजेगा, कोई आवाज करेगा, कोई बात करेगा, आपके ध्यान से किसी को क्या लेना-देना है!
नहीं लेकिन, ध्यान की यह वृत्ति ही गलत है कि यह सब बंद हो जाए। डिस्टरबेंस न हो, इससे बड़ा और कोई डिस्टरबेंस नहीं है--यह ख्याल कि डिस्टरबेंस न हो। यह दुनिया चलती रहेगी। इसमें बुद्ध पैदा हों, महावीर पैदा हों, कृष्ण, क्राइस्ट पैदा हों, दुनिया चलती रहेगी। अगर कृष्ण को कृष्ण बनना है तो यह दुनिया जैसी है इसको ऐसा ही स्वीकार करके बनना होगा। अगर बुद्ध को शांत होना है तो ये सारे कुत्ते भौंकते रहेंगे, कौवे आवाज करते रहेंगे, इनको मान कर ही शांत होना पड़ेगा। अगर किसी बुद्ध ने यह चाहा कि सब चुप हो जाएं तब मैं चुप होऊंगा, तो यह चुप होना असंभव है, यह किसी जन्म में संभव नहीं हो पाएगा।
तो ध्यान के लिए सबसे बड़ी बाधा हमारी अपेक्षाएं हैं कि यह न हो, यह न हो, यह न हो, तब ध्यान हो पाएगा। आपकी कोई अपेक्षा पूरी नहीं होगी। असल में अपेक्षा छोड़ कर ध्यान में जाना पड़ेगा। पर बहुत अदभुत रस है जब हम स्वीकार करते जाते हैं।
तो पांच मिनट के लिए हम यह तीसरा प्रयोग करेंगे। अब सड़क पर आवाजें हैं, पक्षी आवाज कर रहे हैं, इस सबको हम सुनेंगे और स्वीकार करेंगे। मित्र-भाव से इसको भीतर जाने देंगे। इसके प्रति कोई विरोध बीच में नहीं रह जाएगा। हम इनकार नहीं करते। अब वह कौआ आकर आवाज करेगा, वह गूंजेगी आवाज, वह चली जाएगी। और बड़े मजे की बात है कि जैसे रास्ते पर आप जा रहे हों, अंधेरी रात हो और कार आ जाए, तो कार की रोशनी आंख में पड़ती है, फिर कार निकल जाती है, अंधेरा और घना और गहरा हो जाता है। अगर आपने स्वीकार कर ली कौवे की आवाज, सड़क पर बजता हुआ हॉर्न, तो आप हैरान होंगे यह बात जान कर कि हॉर्न बजेगा और बंद हो जाएगा और आप जितनी शांति में हॉर्न बजने के पहले थे उससे ज्यादा गहरी शांति में प्रवेश कर जाएंगे। वह जो स्वीकार है वह गहरे में ले जाता है।

आंख बंद कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर लें, बंद हो जाने दें, और बिल्कुल ढीला छोड़ दें। शरीर से भी क्या दुश्मनी! उसको ढीला छोड़ दें। झुकेगी गर्दन, झुक जाएगी; गिरेगा शरीर, गिर जाएगा। छोड़ दें बिल्कुल ढीला, रिलैक्स कर दें। और अब पांच मिनट के लिए एक भाव में डूब जाएं-- सब स्वीकार है।
देखें, स्वीकार करते ही छोटी-छोटी चिड़ियों की आवाज सुनाई पड़ने लगेगी,
जो अभी तक सुनाई नहीं पड़ रही थी। जरा-जरा सी आवाज सड़क से आने लगेगी, पक्षियों की टीवी-टुटटुट सुनाई पड़ने लगेगी। चारों तरफ एक जगत है, वह सब वाणी परमात्मा की, वे सब आवाजें परमात्मा की, मैं विरोध करने वाला कौन? स्वीकार कर लें, सब स्वीकार कर लें...
स्वीकार... स्वीकार... एक ही भाव मन में रह जाए--सब मुझे स्वीकार है। कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं, सब मुझे स्वीकार है। और तब सब तरफ से शांति भीतर आने लगेगी, तब चारों तरफ से शांति भीतर प्रवेश करने लगेगी। अब पांच मिनट के लिए मैं चुप हो जाता हूं। स्वीकार कर लें, सुनते रहें, जानते रहें, पक्षी आवाज कर रहे हैं, सड़क पर कोई शोर है, रास्ते से कोई गुजरा है, आवाज है, स्वीकार कर लें... और मन एकदम गहरी शांति में छलांग लगा जाएगा... स्वीकार कर लें... देखें, पक्षी की आवाज बहुत प्यारी है...
एक पांच मिनट के लिए स्वीकार में डूब जाएं, यह ध्यान की बहुत गहरी से गहरी जरूरत है... सब स्वीकार है, सब स्वीकार है... श्वास-श्वास में एक ही भाव रह जाए--सब स्वीकार है। मैं राजी हूं... जैसा है, जो है, राजी हूं... सब सुंदर है, सब स्वीकार है... सब स्वीकार है, सब स्वीकार है... और मन गहरा शांत हो जाएगा... सब स्वीकार है, फिर कैसी अशांति? सब स्वीकार है, फिर कोई बाधा नहीं, फिर मन अपने आप शांत हो जाता है...
सब स्वीकार है... छोड़ दें, छोड़ दें, बिल्कुल डूब जाएं, कोई विरोध नहीं,
सब स्वीकार है... जैसा है, सुंदर है... जैसा है, राजी हूं... जो है, राजी हूं... पक्षी आवाज करते हैं, सूरज की गरम किरणें सिर पर पड़ती हैं, मैं राजी हूं... जो भी है, मैं राजी हूं, परमात्मा के सब कुछ से मैं राजी हूं... और राजी होने का ख्याल ही सब शांत कर जाता है...
मैं राजी हूं, मैं राजी हूं, मैं राजी हूं, मैं राजी हूं... सब स्वीकार है, सब स्वीकार है, सब स्वीकार है... मन बिल्कुल शांत हो गया... मन शांत हो गया... अब कोई बाधा न रही, मन शांत हो गया... मन शांत हो गया है, इस भाव को ठीक से पहचान लें, यह ध्यान की अनिवार्य सीढ़ी है, मन शांत हो गया है... सब स्वीकार है, सब स्वीकार है, सब स्वीकार है... मन एकदम शून्य में चला गया है... सब स्वीकार है, सब स्वीकार है...
इस भाव को ठीक से पहचान लें, फिर धीरे-धीरे आंख खोलें, फिर हम अंतिम प्रयोग के लिए बैठेंगे... धीरे-धीरे आंख खोल लें... मन बिल्कुल शांत हो गया है...
ये तीन सूत्र हैं जो परिस्थिति को बनाते हैं, जहां ध्यान उतर सकता है।
ये सूत्र जिस दिन पूरे हो जाएं उसी दिन ट्यूनिंग हो जाती है। उसी दिन हम उस अनंत से जुड़ जाते हैं। जुड़े सदा हैं, जैसे कि रेडियो है और सदा ही सारी दुनिया के रेडियो स्टेशंस जो कह रहे हैं वह उसके करीब से गुजर रहा है, लेकिन फिर भी ट्यूनिंग चाहिए, आपके रेडियो को ठीक उस बिंदु पर केंद्रित होना चाहिए जहां से कुछ पकड़ा जा सके।
ध्यान सिर्फ ट्यूनिंग है, अनंत की चारों तरफ सब क्षणों में वर्षा हो रही है, परमात्मा चारों तरफ सब तरफ से गुजर रहा है। जीवन हर घड़ी सब तरफ मौजूद है। लेकिन हम किसी बिंदु पर उससे पूरी तरह जुड़ जाएं तो उसका हमें पूरा पता चल जाए। अन्यथा हम अनजान रह जाते हैं।
ये तीन सूत्र ख्याल में लेंगे और इन तीनों सूत्रों पर थोड़ा प्रयोग करते रहेंगे। रात सोते समय तीनों का प्रयोग करें और करते-करते सो जाएं। धीरे-धीरे पूरी नींद ध्यान में बदल जाती है। अब इन तीनों का हम इकट्ठा प्रयोग करेंगे दस मिनट के लिए और फिर विदा हो जाएंगे। इन तीनों का इकट्ठा प्रयोग करेंगे एक साथ।
शरीर को ढीला छोड़ दें। किसी को लेटने जैसा लगता हो तो वह लेट जा सकता है, क्योंकि ढीला छोड़ना बहुत आसान हो जाता है। रात को तो जब आप करें,

बिस्तर पर लेट कर ही करें। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें।
हां, किसी को भी लेटना है तो बिल्कुल लेट जाएं, उसमें दूसरे की चिंता न करें। किसी को फिक्र नहीं है कि आप लेट गए हैं। किसी को मतलब भी नहीं है। आप लेटें, बैठें, जैसा आपको लगे कर लें। पूरी तरह छोड़ देना है दस मिनट के लिए, तीनों प्रयोग एक साथ कर लेने हैं।
शरीर को ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें... शरीर को ढीला छोड़ दें, बिल्कुल ढीला छोड़ दें... शरीर को छोड़ दें... बिल्कुल ढीलेपन में बह जाएं जैसे नदी में बह गए थे... एक दो मिनट तक मैं सुझाव देता हूं, उनको अनुभव करें और शरीर को ढीला छोड़ते जाएं।
शरीर शिथिल हो रहा है, रिलैक्स हो रहा है... छोड़ दें बिल्कुल ढीला... शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है... छोड़ दें, शरीर शिथिल हो रहा है... झुके, झुक जाए... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... शरीर शिथिल हो रहा है... छा.ेड़ दें, शरीर को बिल्कुल शिथिल हो जाने दें, जैसे नदी में बह गए थे, ऐसा छोड़ दें, बह जाएं... शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया...
श्वास को भी ढीला छोड़ दें, श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... रोकना नहीं है, ढीला छोड़ दें... अपने आप जितनी आए आए, जाए जाए... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास शांत हो रही है... श्वास बिल्कुल शांत चलने लगी है... श्वास शांत हो रही है... छोड़ दें बिल्कुल ढीला... श्वास शांत हो रही है... जैसे मर ही गए थे, जैसे मिट ही गए थे, जैसे चिता पर जल गए थे, ऐसा बिल्कुल छोड़ दें, जैसे राख के ढेर हो गए, हैं ही नहीं, मिट ही गए... श्वास शांत हो गई है... श्वास शांत हो गई है...
और अब सर्व-स्वीकार के भाव में दस मिनट के लिए डूब जाएं, जो भी है स्वीकार है, जो भी है स्वीकार है, जो भी है स्वीकार है... और इस स्वीकृति के द्वार से बहुत कुछ आएगा, सब स्वीकार कर लें, जो भी है स्वीकार है... स्वीकार करके जानते रहें, सुनते रहें, जो भी है स्वीकार है... भीतर से सब विरोध छोड़ दें, दस मिनट के लिए इस सारे जगत के साथ एक हो जाएं... आवाजें भी हमारी हैं, सड़क पर शोरगुल भी हमारा है, हवाएं भी हमारी हैं, सूरज की किरणें भी हमारी हैं, सब हमारा है, इसके साथ एक हो जाएं...
सब स्वीकार है... मैं सिर्फ जानने वाला रह गया हूं, साक्षी मात्र रह गया हूं, सब जान रहा हूं, सब पहचान रहा हूं, लेकिन सब स्वीकार है, कोई विरोध नहीं है... मैं सिर्फ जानने वाला हूं, देख रहा हूं, पहचान रहा हूं, साक्षी रह गया हूं... और मन एकदम शांति के गहरे, गहरे से गहरे में उतर जाएगा, मन बिल्कुल शांत हो जाएगा... मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है... छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, सब स्वीकार कर लिया, सब स्वीकार है... मन बिल्कुल शांत हो गया... एक अनूठी शांति का भीतर दीया जलने लगेगा, जैसी शांति कभी नहीं जानी वैसी भीतर पैदा होने लगेगी, रोएं-रोएं में, श्वास-श्वास में एक नई ही शांति छा जाएगी... सब स्वीकार है... सब स्वीकार है...
मन बिल्कुल शांत हो गया है... सन्नाटा हो गया है, भीतर शून्य छा गया है... एक बिल्कुल ही नया अनुभव होने लगेगा जैसा कभी नहीं हुआ, सब शांत हो गया है... इस शांति में ही कभी ध्यान उतर आता है, इस शांति में ही कभी परमात्मा निकट आ जाता है... सब शांत हो गया है, सब शांत हो गया है... सब स्वीकार है, मैं सिर्फ जानने वाला साक्षी मात्र रह गया हूं, जस्ट ए विटनेस... सब स्वीकार है... कोई विरोध नहीं, कोई विरोध नहीं, मैं सबके लिए राजी हूं, जो है, जैसा है, सुंदर है... मन बिल्कुल शांत हो गया है... मन बिल्कुल कोरा हो गया है... मन बिल्कुल हलका ताजा हो गया है... सब स्वीकार है... सब स्वीकार है... श्वास-श्वास में, रोएं-रोएं में एक ही भाव रह जाए, सब स्वीकार है... सब स्वीकार है... और मन बिल्कुल शांत, गहरी से गहरी शांति में उतर जाता है, उतर गया है...
इस शांति को ठीक से पहचान लें, रोज रात सोते समय इसका प्रयोग करते- करते ही सो जाएं, पता नहीं कब उसका आगमन हो, प्रतीक्षा करनी पड़ती है, धैर्य से राह देखनी पड़ती है।
अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास बहुत आनंददायी मालूम होगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, प्रत्येक श्वास बहुत

शांतिदायी मालूम होगी। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें, फिर उतने ही धीरे-धीरे आंख खोलें, जो भीतर है वही बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें, शांत मन को बाहर भी कुछ और ही दिखाई पड़ता है। धीरे-धीरे आंख खोलें, जो भीतर है वही बाहर भी है। भीतर भी शांति है, बाहर भी शांति है। भीतर भी परमात्मा है, बाहर भी परमात्मा है।
इस संबंध में, ध्यान के संबंध में कोई भी प्रश्न, जिज्ञासाएं हों, तो
कल सुबह लिख कर आप दे देंगे। यहां तो तीन दिन हम जो प्रयोग करेंगे, वह आपकी समझ में आ जाए, इसी ख्याल से कर रहे हैं। लेकिन यह नहीं सोचेंगे कि यह यहां तीन दिन कर लिया तो बात समाप्त हो गई। यहां तो सिर्फ हम समझ पाएं कि क्या करने जैसा है, फिर उसे जारी रखें, रात सोते समय दस-पंद्रह मिनट उसे करते- करते सो जाएं। एक तीन-चार महीने में ही अनुभव होना शुरू होगा कि रात बदल गई, सुबह दूसरा आदमी उठने लगा, दिन में दूसरा आदमी जीने लगा। लेकिन थोड़ी प्रतीक्षा और धीरज की जरूरत है।
हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

धर्म साधना के सूत्र
पांचवां प्रवचन

मनुष्य के अज्ञान का आधार

आश्चर्य की बात है कि मनुष्य अपने अनुभव से कुछ भी नहीं सीखता है। और
जो आश्चर्य की बात है वही मनुष्य के अज्ञान का भी आधार है। मनुष्य अनुभव से कुछ भी नहीं सीखता है।
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात समझाना चाहूं।
मैंने सुना है, एक आदमी के घर में एक अंधेरी रात एक चोर घुस गया। उसकी पत्नी की नींद खुली और उसने अपने पति को कहा, मालूम होता है घर में कोई चोर घुस गया है। उस पति ने अपने बिस्तर पर से ही पड़े-पड़े पूछा, कौन है? उस चोर ने कहा, कोई भी नहीं। वह पति वापस सो गया। रात चोरी हो गई। सुबह उसकी पत्नी ने कहा कि चोरी हो गई और मैंने आपको कहा था! तो पति ने कहा, मैंने पूछा था, अपने ही कानों से सुना कि कोई भी नहीं है, इसलिए मैं वापस सो गया।
ऐसे घर में चोरी दुबारा होगी। स्वाभाविक है। जिस घर में चोर की कही गई बात--कि कोई भी नहीं है--मान ली गई हो, उस घर में चोरी दुबारा हो, यह बिल्कुल ही अनिवार्य है। पंद्रह-बीस दिन बाद चोर वापस घुसा। पत्नी ने कहा, अब पूछने की जरूरत नहीं है, सीधा चोर को पकड़ ही लें। उस आदमी ने उठ कर चोर को पकड़ लिया और उसे पुलिस थाने की तरफ ले चला। आधे रास्ते पर उस चोर ने कहा, माफ करिए, लेकिन मैं अपने जूते आपके घर भूल आया हूं। तो उस आदमी ने कहा कि बड़े नासमझ हो! अब मैं वापस इतनी दूर लौट कर नहीं जाऊंगा। तो मैं यहीं रुकता हूं, तुम वापस चले जाओ और अपने जूते ले आओ। वह आदमी वहीं रुक गया, चोर वापस गया, लौटने का तो कोई सवाल नहीं था, वह लौटा नहीं।
महीने भर बाद फिर वह चोर उस आदमी के घर में घुसा। अब की बार उस आदमी ने उसे फिर पकड़ लिया और कहा कि मैं थाने ले चलता हूं, अब अपनी कोई चीज यहां भूल मत जाना, अपने साथ ले लो, पिछली बार तुम धोखा देकर भाग गए थे। उस आदमी ने कहा कि नहीं, मैं कुछ भी नहीं भूल रहा हूं।
आधे रास्ते पर जाकर उसने कहा कि लेकिन माफ करिए, मेरे समझने में गलती
हो गई, मैं अपना कंबल आपके घर ही छोड़ आया हूं। उस आदमी ने कहा, तुम बड़े नासमझ मालूम पड़ते हो! अब मैं पुरानी भूल नहीं कर सकता। अब तुम यहां रुको और मैं तुम्हारा कंबल लेने घर जाता हूं।
इस आदमी पर हमें हंसी आती है, लेकिन सारे आदमी इसी भांति के आदमी हैं।
...

(कुछ लोग प्रवचन में विघ्न डालने के इरादे से पास में ही लाउडस्पीकर लगा कर खूब जोर-जोर से कीर्तन करने के बहाने शोरगुल मचाने लगते हैं। अंततः प्रवचन बीच में ही रोक देना पड़ता है। ओशो को सुनने आए लोगों के सामने प्रबंधक कमेटी के एक सदस्य अपना अफसोस इन शब्दों में व्यक्त करते हैंः सानूं बड़ी खुशी है कि आचार्य जी ऐथे तशरीफ लाए हन और अपने विचार आपदे सामने प्रकट कर रहे हन। इसदे नाल ही सानूं इस गल दा वी अफसोस है कि साडे ओ गवांढी, जो सदा ही साडे नाल गवांढ दे तौर ते रहे हन और साडे नाल प्रेम वी करदे रहे हन, उन्हांने इतनी संगत दा कोई ख्याल नहीं कीता। और ओ चाहुंदे हन कि जो विचार हन, ओ न सुनाए जा सकन। सानूं एओ ही विनंती करनी चाहुंदे हां कि अगर किसी सज्जन नूं कोई एतराज हौवे, आचार्य जी दे विचारां दे मुतल्लक, तां ओ अपना एक वखरा स्टेज लाके वी कर सकदे हन। ए इक नवीं भाजी जेड़ी पाई जा रही है, ए किसी तरह भी सुशोभित नहीं, शोभनीय नहीं। मैं उन्हां मंदिर दे मानयोग पुजारी सज्जना और प्रबंधका दी सेवा वीच बड़ी अधीनगी सहित विनंती करांगा कि कल स्वामी जी ने जो सेवा दे मुतल्लक उथे लेक्चर कीता सी, उन्हानूं वी बड़े प्रेम नाल श्रवण कीता सी। और उसतों अलावा कल रात नूं जो प्रभु-भक्ति दे मुतल्लक आपदे सामने कितना विदुरता भरया विचार ऐथे प्रकट कीता है। असी ए नहीं चाहुंदे कि ऐथे किसी किस्म दी खलबली पवे। और न असी ए चाहुंदे हां कि ऐथे किसी किस्म दे मजाक दा मजबून बनिए। इस वास्ते जे साडे पराह ए नहीं

मुनासिब समझ दे, तां असी इस जो सभा है एनूं समापित कर दवांगे; ते कल तों गुरुद्वारा मंजरी साहिब असी दीवान लाऊंन दी इजाजत दे दवांगे।
तो मेरा कहन दा मकसद ए है कि अगर ओ धर्म दे खिलाफ, देश दे खिलाफ कोई गल करन, तां मेरा ख्याल है कि सब तो पहलां ऐथे भाटिया साहिब बैठे हन, सरदार करतार सिंह जी एम एल ए बैठे हन और बड़े प्रतिष्ठित सज्जन बैठे हन, असी खुद एतराज कर सकदे हां। जद ओ प्रभु-भक्ति दे मुतल्लक, देश-भक्ति दे मुतल्लक अपने विचार दस रहे हन, तां साडा ए फर्ज बणदा है कि असी बड़े प्रेम नाल सुनिए। एस लई मैं अपने मानयोग उन्हां पुजारी सज्जना नूं और प्रबंधका नूं सेवा विच विनंती करांगा, नम्रता सहित। ते ओ कृपा करके साडी विनंती स्वीकार करन। जे ना करनगे, होंदा हे जलसा तां जरूर करनगे ही, जिस तरह होएगा और बाकी जे ना होया ते फिर कल मंजरी साहिब या असी होर कोई योग्य जगह जेहड़ी है लब के दस दवांगे।)

धर्म साधना के सूत्र
छठवां प्रवचन

अमृत की उपलब्धि

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुना है मैंने, एक पूर्णिमा की रात्रि कुछ मित्र एक शराबखाने में इकट्ठे हो गए। देर तक उन्होंने शराब पी। और जब वे नशे में नाचने लगे और उन्होंने आकाश में पूरे चांद को देखा, तो किसी ने कहा, अच्छा न हो कि हम नदी पर नौका-विहार को चलें? और वे नदी की तरफ चले। मांझी अपनी नौकाएं बांध कर जा चुके थे। वे एक नाव में सवार हो गए, उन्होंने पतवारें उठा लीं, उन्होंने पतवारें चलानी शुरू कर दीं। और वे बहुत रात गए तक पतवारें चलाते रहे, नाव को खेते रहे। और जब सुबह की ठंडी हवाएं आईं और उनका नशा उतरा, तो उन्होंने सोचा--हम न मालूम कितने दूर निकल आए हों और न मालूम किस दिशा में निकल आए हों, कोई नीचे उतर कर देख ले। एक व्यक्ति नीचे उतरा और हंसने लगा और उसने कहा कि आप भी नीचे उतर आएं। हम कहीं भी नहीं गए। हम रात भर वहीं खड़े रहे हैं!
नौका वहीं खड़ी थी जहां उन्होंने रात उसे पाया था। वे बहुत हैरान हुए, रात भर की मेहनत का क्या हुआ? नीचे उतर कर पता चला कि नौका की जंजीरें किनारे से बंधी थीं, वे छोड़ना भूल गए थे।
नशे में थे, ऐसी भूल हो सकती है। लेकिन ऐसी भूल उन लोगों से भी हो जाती
है जो नशे में नहीं हैं। असल में नशे भी बहुत तरह के हैं। कुछ नशे हैं जो हमें दिखाई पड़ते हैं और कुछ हैं जो हमें दिखाई नहीं पड़ते हैं। असल में जो नशे में नहीं हैं और फिर भी ऐसी भूल कर लेते हैं, वे भी किसी नशे में होते हैं जो दिखाई नहीं पड़ता। जाति का नशा है, समाज का नशा है, देश का नशा है, धर्म का नशा है। बहुत तरह के नशे हैं जिनमें आदमी बेहोश हो जाता है और ऐसी भूल कर लेता है कि जिंदगी ठहरी रह जाती है, उसकी गति खो जाती है। और हम जिन-जिन नावों में सवार हैं, वे नावें कहीं भी नहीं पहुंच पातीं।
आमतौर से, जिस दिन हम जन्मे थे, जीवन की नाव में बैठे, मरते समय अधिकतम लोग अपने को वहीं पाते हैं जहां जन्मते समय उन्होंने अपने को पाया था। कोई यात्रा नहीं हो पाती। जन्म और मृत्यु के बीच में पतवार बहुत चलाते हैं हम, श्रम भी बहुत करते हैं, दौड़-धूप भी बहुत उठाते हैं, लेकिन कहीं पहुंच नहीं पाते। मरते समय ऐसा नहीं होता कि हम कह सकें कि कहीं पहुंच गए। शायद मृत्यु के समय किनारे पर उतर कर जब कोई देखता होगा तो पाता होगा--खूंटियां, नाव की जंजीरें बंधी रह गई हैं।
तो मैं आज कुछ उन जंजीरों की बात करना चाहूंगा, जिनके कारण मनुष्य की आत्मा की नाव परमात्मा के सागर तक नहीं पहुंच पाती, रुक जाती है, ठहरी रह जाती है। श्रम करने के बावजूद भी, पतवार चलाने के बाद भी कोई विकास नहीं हो पाता है।
कौन-कौन सी चीजें हैं जो आदमी की नाव को रोक लेती हैं?
पहली बात, जो आदमी की नाव के लिए बहुत बड़ी जंजीर सिद्ध होती है--और वह
यह है कि आदमी बिना जाने ही परमात्मा को मान लेता है कि वह है या मान लेता है कि नहीं है। बिना जाने मान लेता है कि है, बिना जाने मान लेता है कि नहीं है। दोनों एक सी नासमझियां हैं। बिना जाने मान लेना भी गलत है, बिना जाने इनकार करना भी गलत है। लेकिन हम सब इन दो नासमझियों में बंटे होते हैं। और जिसे हम बिना जाने मान लेते हैं उसकी खोज बंद हो जाती है और जिसे हम बिना जाने इनकार कर देते हैं उसकी भी खोज बंद हो जाती है। खोज तो उसकी हो सकती है जिसे हम मानना नहीं चाहते बल्कि जानना चाहते हैं। मानना मौत है और जानना जीवन है। मानना ठहर जाना है और जानना एक यात्रा है, एक गति है। माने हुए सारे लोग ठहर जाते हैं। सब तरह के विश्वासी, सब तरह के श्रद्धालु ठहर जाते हैं।
श्रद्धाएं दो तरह की हैं। आस्तिक की एक श्रद्धा है जो हां पर विश्वास करता है, नास्तिक की एक श्रद्धा है जो न पर विश्वास करता है। लेकिन दोनों श्रद्धालु हैं। और धार्मिक आदमी का श्रद्धालु आदमी से कोई संबंध नहीं।

धार्मिक आदमी श्रद्धालु नहीं, जिज्ञासु है। धार्मिक आदमी विश्वासी नहीं, खोजी है। धार्मिक आदमी कुछ मान कर ठहरने को तैयार नहीं जब तक कि जान न ले। जब तक कि जानने के सागर में न पहुंच जाए, तब तक वह मानने के किनारे पर खूंटी बांध कर रुका नहीं रहेगा, वह जाएगा। लेकिन अब तक हमने यही समझा है कि विश्वास करने वाले लोग धार्मिक होते हैं।
विश्वास करने वाला आदमी धार्मिक न होता है, न हो सकता है। विश्वास का मतलब ही है कि जो हम नहीं जानते हैं उसे हमने मान लिया। यह अंधेपन की शुरुआत है। यह अपने को अंधा बनाने का रास्ता है।
लेकिन अब तक निरंतर यही समझाया जाता रहा है कि विश्वास करो, अगर भगवान
को पाना हो। और इसलिए विश्वास बहुत लोगों ने किया और भगवान को पाया बहुत कम लोगों ने! विश्वास तो सभी करते हैं इस तरफ या उस तरफ, लेकिन भगवान अधिक लोगों को उपलब्ध क्यों नहीं हो पाता? पृथ्वी हजारों साल से विश्वास कर रही है, लेकिन पृथ्वी के जीवन में परमात्मा की स्पष्ट झलक नहीं उतर पाती। कितने मंदिर हैं, कितनी मस्जिद हैं, कितने गुरुद्वारे हैं! कितनी पूजा है, कितना पाठ है, कितनी प्रार्थना है, कितना विश्वास है! लेकिन फिर भी पृथ्वी धार्मिक क्यों नहीं? पृथ्वी का जीवन तो अधार्मिक है। क्या हो गया है? कारण क्या है?
कारण एक हैः जीवन चलता है ज्ञान से; विश्वास सिर्फ सपने बन कर रह जाते हैं, सत्य नहीं बन पाते। विश्वासों को सत्य बनाया भी नहीं जा सकता है। सत्य को जानना हो तो विश्वास छोड़ने पड़ते हैं।
मैं नहीं कहता हूं अविश्वास करें, क्योंकि अविश्वास भी उलटा विश्वास है। न विश्वास, न अविश्वास, दोनों के बीच में जो खड़े होने को राजी है, उसके जीवन में ज्ञान की किरण उतरती है। न जो विश्वास की खूंटी से अपनी नाव को बांधता, न अविश्वास की खूंटी से बांधता, न हिंदू की खूंटी से बांधता, न मुसलमान की खूंटी से, न जैन की, न ईसाई की, न सिक्ख की--किसी की खूंटी से जो अपने को नहीं बांधता और कहता है कि हम तो अनंत के सागर में नाव छोड़ेंगे, किसी की खूंटी से बांधेंगे नहीं--वह आदमी परमात्मा तक पहुंचने में सफल हो पाता है।
और मजा यह है कि हिंदू जिनका गुणगान करता है, वे वे ही लोग हैं जो बिना किसी की खूंटी से बंधे परमात्मा तक पहुंचे। और मुसलमान जिनका गुणगान करता है, वे वे ही लोग हैं जो बिना किसी खूंटी से बंधे परमात्मा तक पहुंचे। और सिक्ख जिनका गुणगान करता है, वे वे ही लोग हैं जो बिना किसी की खूंटी से बंधे और परमात्मा तक पहुंचे। सब नौका छोड़ कर सागर में जाने वाले लोग, हम उनके नाम पर भी खूंटियां बांध कर किनारे पर बैठ जाते हैं।
कबीर ने कहा है। कहा हैः
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।।
उन्होंने पाया जो गहरे डूबे और मैं पागल किनारे बैठ कर रह गई।
तो किसी ने पूछा कि किनारे बैठ कर रह जाने की जरूरत क्या थी? तो कबीर
ने कहा कि--
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।।
मैं डूबने से डर गई, इसलिए किनारे पर बैठ गई।
जो भी डूबने से डरेगा वह खूंटियां पकड़ लेगा, सहारे पकड़ लेगा। और जो डूबने से डरेगा वह परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। क्योंकि जो डूबता है वही उबरता है, जो डूबता है वही पहुंचता है, जो डूबता है वही पाता है। यहां बचना हो तो डूबना जरूरी है। धर्म के जगत में बचना हो तो डूबना जरूरी है और अगर धर्म से बचना हो तो किनारे पर खूंटियां पकड़ कर बैठ जाना बहुत उपयोगी है। खूंटियां बहुत पुरानी हो सकती हैं। लेकिन पुराने होने से कोई खूंटी
कम खूंटी नहीं हो जाती। खूंटी बिल्कुल नई हो सकती है। लेकिन नई होने से भी कोई खूंटी खूंटी नहीं रह जाती, ऐसा नहीं है। खूंटी नई हो कि पुरानी, वह काम बांधने का करती है। और धर्म खूंटी नहीं है; धर्म स्वतंत्रता है। इसलिए धार्मिक आदमी न हिंदू होता, न मुसलमान होता, न ईसाई होता, न सिक्ख होता। धार्मिक आदमी बस धार्मिक आदमी होता है।

मैं स्वर्ण मंदिर देखने गया, कुछ मित्र दिखाने ले गए। जो मित्र दिखाने ले गए उन्होंने मुझे कहा कि यहां ईसाई, हिंदू, मुसलमान, सबके लिए जगह खुली है।
मैंने उनसे कहा, ऐसा मत कहें। क्योंकि ऐसा कहने में ही हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई की स्वीकृति हो जाती है कि ये अलग-अलग हैं। इतना ही कहें कि आदमी के लिए जगह खुली है। उतना काफी है। इतना रिकग्नीशन भी--कि हिंदू और मुसलमान और ईसाई, सबके लिए खुला है--वही बात हो गई। बंद हो तो भी वही बात है और खुला हो तो भी वही बात है।
हम पृथ्वी पर कब ऐसे मंदिर बनाएंगे जिनमें सिर्फ आदमी होना काफी होगा, जिनमें कोई पहचान न होगी। अब तक हम नहीं बना पा रहे हैं। हजार दफे कोशिश होती है, कभी कोई बुद्ध, कभी कोई महावीर, कभी कोई कृष्ण, कभी कोई क्राइस्ट, कोई नानक ऐसा मंदिर बनाने की कोशिश करता है। लेकिन हम ऐसे पागल हैं कि हम उस मंदिर को भी खूंटियां गाड़ लेते हैं। हम उस मंदिर पर भी कब्जा कर लेते हैं। हम उस मंदिर को भी किसी का बना देते हैं। और जो मंदिर किसी का बन जाता है, वह परमात्मा का नहीं रह जाता। परमात्मा का रहने के लिए उसका किसी का होना अयोग्यता है। वह किसी का भी नहीं होना चाहिए, तभी वह सभी का हो सकता है। जब वह किसी का होता है, तब सभी का नहीं रह जाता। और स्वीकृति जब हम देते हैं तभी भूल हो जाती है।
मैं अभी अहमदाबाद था। कुछ हरिजन मित्र मुझे मिलने आए। उन्होंने मुझसे कहा कि गांधी जी तो आते थे तो हरिजनों के घर ठहरते थे। आप हमारे हरिजनों के घर क्यों नहीं ठहरते?
मैंने उनसे कहा कि मैं तुम्हारे घर ठहर सकता हूं, लेकिन हरिजन के घर नहीं ठहर सकता। क्योंकि इतनी स्वीकृति भी देनी--कि तुम हरिजन हो और तुम्हारे घर मैं ठहरता हूं क्योंकि तुम हरिजन हो--अन्याय है, अधर्म है, गलती है। कोई आदमी कहता है कि तुम हरिजन हो, हम न छुएंगे; यह भी तुम्हें हरिजन मानता है। एक आदमी कहता है, तुम हरिजन हो, हम तुम्हारे घर ठहरेंगे; यह भी तुम्हें हरिजन मानता है। तुम्हारे घर मैं ठहर सकता हूं, लेकिन हरिजन की तरह नहीं। आदमी होना काफी है।
हमें यह दिखाई नहीं पड़ता। हिंदू-मुसलमान लड़ें तो भी दुश्मन होते हैं,
तो भी दो होते हैं। कोई कहता है कि नहीं, दो नहीं, हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई। फिर भी दो रहते हैं, फर्क नहीं पड़ता। भाई-भाई कहने वाला भी एक नहीं मानता; लड़ाने वाला भी एक नहीं मानता। एक तो वही मान सकता है जो कहे कि तुम हिंदू कैसे? तुम मुसलमान कैसे? तुम कोई भी नहीं हो। आदमी होना सत्य है, बाकी सब हमारी सिखावन है जो हम ऊपर से थोप देते हैं। इन सिखावनों ने खूंटियां खड़ी कर दी हैं और धार्मिक आदमी का पैदा होना मुश्किल हो गया है।
यह धार्मिक आदमी कैसे पैदा हो, इस संबंध में कुछ सूत्र की बात आपसे कहना चाहूं।
एक तो धर्म के संबंध में यह बात ठीक से समझ लें कि धर्म और विद्याओं जैसी विद्या नहीं है। दुनिया में बहुत तरह की विद्याएं हैं, धर्म उनमें से एक विद्या नहीं है। अगर दुनिया में कोई भी चीज सीखनी है तो किसी और से सीखनी पड़ेगी। अगर कोई भी चीज सीखनी है दुनिया में तो किसी से सीखना पड़ेगा। धर्म अकेली ऐसी विद्या है कि अगर सीखनी हो तो दूसरे से सीखने से बचना, अन्यथा मुश्किल हो जाएगी। असल में धर्म दूसरे को स्वीकार ही नहीं करता। धर्म अकेली ऐसी विद्या है, जो स्वयं ही सीखी जाती है, जिसमें दूसरे से सीखने की गुंजाइश नहीं है। उसके कारण हैं। सत्य ट्रांसफरेबल नहीं है, एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता। जगत में सब चीजें एक हाथ से दूसरे हाथ में दी जा सकती हैं। धर्म का ज्ञान भर एक हाथ से दूसरे हाथ में नहीं दिया जा सकता। और दिया जाए तो बासा और उधार हो जाता है। और उधार होते से ही अज्ञान से भी बदतर हो जाता है।
अज्ञान की एक खूबी है कि अज्ञान विनम्र होता है। और उधार ज्ञान का एक खतरा है, उधार ज्ञान अहंकार से भर जाता है, ईगो से भर जाता है। और मजा यह है कि जो ज्ञान भीतर से पैदा होता है, उसके पैदा होते ही अहंकार ऐसे विदा हो जाता है जैसे सुबह के सूरज उगने पर अंधेरा विदा हो जाता है। खुद के ज्ञान के पैदा होने पर अहंकार कहीं नहीं पाया जाता, लेकिन दूसरे से लिया गया

ज्ञान अहंकार को मजबूत करता है, पुष्ट करता है और भीतर भारी, कड़ी, सख्त चीज पैदा कर देता है। वह कड़ा अहंकार ही परमात्मा से मिलने में बाधा बन जाता है।
धर्म दूसरे से कभी भी उपलब्ध नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं है कि दूसरा बिल्कुल बेकार है। जब कभी कोई एक बुद्ध हमारे बीच से गुजरता है तो बुद्ध हमें ज्ञान नहीं दे सकता, और जब कभी कोई नानक गीत गाता हुआ हमारे बीच से निकलता है तो नानक हमें ज्ञान नहीं दे सकते, लेकिन एक बुद्ध या एक नानक के गुजरने से हमारी प्यास जग सकती है। ज्ञान नहीं मिल सकता, प्यास जग सकती है। उन्हें देख कर हमें इस बात का स्मरण आ सकता है कि जो उन्हें संभव हुआ, वह मुझे भी संभव हो सकता है।
ज्ञानी धर्म की दुनिया में ज्ञान का देने वाला नहीं, सिर्फ प्यास का जगाने वाला है। लेकिन प्यास जगाने के बाद कुआं तो अपने ही भीतर खोदना पड़ता है और पानी तो अपने भीतर ही खोजना पड़ता है, वह कोई दूसरा नहीं दे सकता। अगर दूसरा दे सकता होता तो एक ही ज्ञानी ने सारी दुनिया को ज्ञान दे दिया होता। उसका कारण है। क्योंकि ज्ञानी में इतनी करुणा है कि वह रुकता ही नहीं, वह सबको बांट ही देता। लेकिन वह नहीं दिया जा सकता।
सब ज्ञानी तड़पते हुए मरते हैं--अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए--क्योंकि
जो उन्हें मिल गया है, वे देना चाहते हैं, लेकिन वह दिया नहीं जा पाता। देते हैं कि बदल जाता है। हाथ से दिया, दूसरे के पास गया कि बदला। क्योंकि जब देते हैं तो अनुभूति तो भीतर रह जाती है, शब्द ही उसके पास पहुंचते हैं। और शब्दों का अर्थ? शब्दों का अर्थ देने वाले से तय नहीं होता; जिसके पास शब्द पहुंचते हैं वही उनका अर्थ तय करता है।
इसलिए गीता की एक हजार टीकाएं हैं। कृष्ण का दिमाग खराब तो नहीं रहा होगा कि एक हजार अर्थ रहे हों। कृष्ण जैसे आदमी का मतलब तो सुनिश्चित रूप से एक होता है। लेकिन एक हजार टीकाएं हैं। गीता के एक हजार अर्थ करने वाले हैं। ये अर्थ कहां से आए? ये कृष्ण के अर्थ नहीं हैं। ये हजार टीका करने वालों के अर्थ हैं। गीता को पढ़ते हैं जब हम तो वह कृष्ण की गीता नहीं होती, हम उसमें अपना अर्थ डाल कर पढ़ते हैं। हम ही उसमें होते हैं। आज तक दुनिया में कृष्ण की गीता को कृष्ण जैसा हुए बिना पढ़ने का उपाय भी नहीं है। हम ही अपना अर्थ डालेंगे।
इसलिए मैं कहता हूं, शास्त्र को भूल कर मत पकड़ना। क्योंकि शास्त्र में आपकी ही छवि झलकेगी, और कुछ भी होने वाला नहीं। शास्त्र में हम खुद को ही पढ़ते हैं। इसीलिए एक शास्त्र को दो आदमी पढ़ते हैं, दो मतलब निकलते हैं। एक रात ऐसा हुआ कि बुद्ध ने एक सभा में प्रवचन दिया। प्रवचन के बाद वे रोज अपने भिक्षुओं से कहते थे कि अब जाओ, अब रात के आखिरी काम में लग जाओ। उस दिन एक चोर भी आया हुआ था। जब बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा, जाओ, रात के काम में लग जाओ, चोर भी उठा, उसने कहा कि बड़ी देर हो गई, समय हो गया काम का। एक वेश्या भी आई थी। जब बुद्ध ने कहा, जाओ, अपने रात के काम में लग जाओ, तो वेश्या ने कहा कि मैं भी कितनी देर गवां दी, पता नहीं ग्राहक वापस लौट गए हों। और भिक्षु उठ कर ध्यान करने चले गए, क्योंकि भिक्षुओं को रात का आखिरी काम था कि वे ध्यान करें और फिर सो जाएं। वेश्या अपनी दुकान चलाने चली गई, चोर अपने काम पर लग गया, भिक्षु ध्यान करने लगे। और बुद्ध ने एक ही शब्द कहा थाः जाओ, रात के काम पर लग जाओ।
अर्थ कौन देगा? अर्थ हम देते हैं। इसलिए शास्त्र को पढ़ कर सत्य न मिलेगा, आप ही मिल जाओगे, सत्य नहीं मिलने वाला। सत्य तो मिलेगा किसी और यात्रा से, सत्य तो मिलेगा स्वयं को खोने से। शास्त्र में तो स्वयं का ही दर्पण बन जाता है और हम अपने को ही पढ़ लेते हैं। इसलिए कुरान को जब मुसलमान पढ़ता है तो और मतलब निकाल लेता है, जब हिंदू पढ़ता है तो और मतलब निकाल लेता है। वेद को जब वेद का मानने वाला पढ़ता है तो और मतलब निकालता है, जब नहीं मानने वाला पढ़ता है तो और मतलब निकालता है। मतलब हमारे हैं। और हमारे ही मतलब अगर सत्य होते तो वेद तक जाने की क्या जरूरत है? हम सत्य हैं ही। नहीं, हमारे चलते काम नहीं चलेगा, हमें मिटना पड़ेगा। कोई शास्त्र हमें मिटा नहीं सकता। हम शास्त्र को भी अपना आभूषण बना लेते हैं। अगर आप दस शास्त्र जान लेते हैं तो आपका अहंकार और मजबूत हो जाता है। पंडितों से

ज्यादा अहंकारी आदमी खोजना कठिन है। जिनको भी ख्याल हो गया कि वे जानते हैं, वे बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। जानने का अहंकार इस जगत में सबसे गहरा अहंकार है। इसलिए पंडित निरंतर लोगों को लड़ाई में ले जाते हैं। इस जमीन पर जो लड़ाइयां हुई हैं वे अज्ञानियों के कारण नहीं, उनके पीछे कारण हमेशा झूठे ज्ञानी हैं। अज्ञानी तो बेचारे उनके चक्कर में पड़ कर लड़ते रहते हैं। सारी लड़ाई झूठे ज्ञानियों के द्वारा पैदा होती है, क्योंकि झूठा ज्ञान भीतर अहंकार से भरा हुआ होता है।
नहीं, धर्म ऐसी विद्या नहीं है कि शास्त्र से मिल जाए। धर्म ऐसी विद्या है जो स्वयं के खोने से मिलती है। गणित सीखना हो तो स्वयं को मिटाने की कोई जरूरत नहीं है; इतिहास पढ़ना हो तो स्वयं को मिटाने की कोई जरूरत नहीं है; साइंस पढ़नी हो, इंजीनियर बनना हो, डाक्टर बनना हो, तो स्वयं को मिटाने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन धर्म के जगत में जाना हो तो स्वयं को मिटाने की तैयारी चाहिए।
मैंने सुनी है एक कहानी। मैंने सुना है कि यूनान में एक बहुत बड़ा मूर्तिकार हुआ। उस मूर्तिकार की बड़ी प्रशंसा थी सारे दूर-दूर के देशों तक। और लोग कहते थे कि अगर उसकी मूर्ति रखी हो बनी हुई और जिस आदमी की उसने मूर्ति बनाई है वह आदमी भी उसके पड़ोस में खड़ा हो जाए श्वास बंद करके, तो बताना मुश्किल है कि मूल कौन है और मूर्ति कौन है। दोनों एक से मालूम होने लगते हैं। उस मूर्तिकार की मौत करीब आई। तो उसने सोचा कि मौत को धोखा क्यों न दे दूं? उसने अपनी ही ग्यारह मूर्तियां बना कर तैयार कर लीं और उन ग्यारह मूर्तियों के साथ छिप कर खड़ा हो गया। मौत भीतर घुसी, उसने देखा, वहां बारह एक जैसे लोग हैं। वह बहुत मुश्किल में पड़ गई होगी, एक को लेने आई थी, बारह लोग थे, किसको ले जाए? और फिर कौन असली है? वह वापस लौटी और उसने परमात्मा से कहा कि मैं बहुत मुश्किल में पड़ गई, वहां बारह एक जैसे लोग हैं! असली को कैसे खोजूं?
परमात्मा ने उसके कान में एक सूत्र कहा। और कहा, इसे सदा याद रखना। जब
भी असली को खोजना हो, इससे खोज लेना। यह तरकीब है असली को खोजने की।
मौत वापस लौटी, उस कमरे के भीतर गई, उसने मूर्तियों को देखा और कहा कि मूर्तियां बहुत सुंदर बनी हैं, सिर्फ एक भूल रह गई।
वह जो चित्रकार था वह बोला, कौन सी भूल?
उस मृत्यु ने कहा, यही कि तुम अपने को नहीं भूल सकते। बाहर आ जाओ! और परमात्मा ने मुझे कहा कि जो अपने को नहीं भूल सकता उसे तो मरना ही पड़ेगा और जो अपने को भूल जाए उसे मारने का कोई उपाय नहीं, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है।
धर्म अपने को भूलना है, क्योंकि धर्म अमृत की उपलब्धि है। लेकिन अपने
को हम कैसे भूलें? अपने को तो हम सदा याद रखते हैं, चौबीस घंटे याद रखते हैं। अपने को तो हम चारों तरफ से सजा कर, संवार कर रखते हैं। अपने को तो हम चारों तरफ से दीवारें और पत्थर की मजबूत दीवारों में सुरक्षित रखते हैं। कहीं से कोई चोट न पहुंच जाए, कहीं हम मिट न जाएं थोड़े भी, तो हम अपने को बहुत इंतजाम करके रखते हैं। हमारी जिंदगी भर का सारा इंतजाम, अपने को बचाने का इंतजाम है। और अगर हम कभी परमात्मा के द्वार पर भी जाते हैं, तो परमात्मा से भी थोड़ी-बहुत सेवा लेने जाते हैं। अपने को बचाने की कोई सेवा हो तो हम जाते हैं। किसी को नौकरी चाहिए तो जाता है, किसी को धन चाहिए तो जाता है, किसी को बेटा चाहिए तो जाता है, किसी को बीमारी मिटानी है तो जाता है, किसी को लाटरी जीतनी है तो जाता है। हम परमात्मा के द्वार पर अपने को बचाने जाते हैं। परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने का इरादा हमारा रहता है। हमारा अहंकार अदभुत है, परमात्मा को भी थोड़ी-बहुत नौकरी में हम लगाना ही चाहते हैं। इरादे तो हमारे यही रहते हैं। बल्कि हम कहते भी यह हैं कि जरा हमारी नौकरी कर दो तो हम मान लेंगे! जैसे कि हमारे मानने का वह इतना भूखा होगा कि थोड़ी-बहुत हमारी नौकरी भी करे।
हम परमात्मा के दरवाजे पर अपने को बनाने के लिए ही जाते हैं। तो हम उसके दरवाजे पर कभी पहुंच ही नहीं पाते। फिर हम झूठे दरवाजों पर पहुंच जाते हैं, जो आदमी के बनाए हुए हैं। और उन्हीं दरवाजों को हम परमात्मा का

दरवाजा समझ कर लौट आते हैं। परमात्मा का दरवाजा तो वहीं है जहां लिखा है कि आप भीतर न जा सकोगे, अपने को बाहर छोड़ो और फिर भीतर आओ!
बंगाल में मैं एक छोटा सा नाटक देखा हूं। ग्रामीण नाटक है। उस नाटक में एक यात्री वृंदावन की यात्रा को गया है। वह एक फकीर है, उसके पास कुछ भी नहीं है। एक छोटी सी झोली है, जिसमें उसके एक-दो कपड़े-लत्ते, थोड़े-बहुत बर्तन वगैरह हैं। वह जब वृंदावन के मंदिर पर पहुंचता है तो द्वारपाल उससे कहता है कि ठहरो, भीतर कुछ ले जा न सकोगे। तो वह अपनी झोली, जिसमें बर्तन और कपड़े हैं, बाहर ही छोड़ देता है। वह कहता है कि अब तो मैं जा सकता हूं, झोली- कपड़े बाहर छोड़ दिए। वह द्वारपाल कहता है, झोली-कपड़े ले जाना हो तो ले जाओ, अपने को बाहर छोड़ो। झोली-कपड़े से कोई दिक्कत नहीं है, ले आओ उठा कर, लेकिन अपने को बाहर रख आओ। अपने को लेकर भीतर न जा सकोगे।
असल में एक ही शर्त है उसके दरवाजे पर। और वह शर्त अपने को खोने की शर्त है। ज्ञान जो हम दूसरों से ले लेते हैं, वह अपने को मजबूत करता है, मिटाता नहीं। यहां तक कि त्याग और तपश्चर्या भी अहंकार को मजबूत कर जाते हैं, मिटाते नहीं। किसी ने अगर उपवास कर लिया है, और कोई अगर शीर्षासन करके खड़ा हो गया है, और कोई अगर कांटों पर लेटा है, तो उसके भीतर अहंकार और मजबूत हो जाता है। साधक, तपस्वी, संन्यासी, सब का अहंकार, ईगो बहुत ही गहरी, घनी हो जाती है। वे उसी घनी अहंकार की छाया में जीने लगते हैं। और सोचते हैं कि परमात्मा भी उनके पीछे आए। परमात्मा के पीछे जाने को वे तैयार नहीं होते। इसलिए वे परमात्मा पर भी आरोपण करते हैं कि इस शक्ल में मिलो तो ही! जैसा हम चाहते हैं उस शक्ल में मिलो। तो हिंदू अपनी शक्ल थोपता है, मुसलमान अपनी शक्ल थोपता है, जैन अपनी शक्ल थोपता है। हम परमात्मा को भी कहते हैं कि उस शक्ल में आना जो हमने मांग की है। ईसाई अपनी शक्ल थोपता है। हम परमात्मा को भी उसकी शक्ल में स्वीकार करने को राजी नहीं। हम बहुत अदभुत लोग हैं। हमारे अदभुत होने का कोई ठिकाना नहीं है। लेकिन हम इन्हीं सारी बातों को धर्म कहते हैं। और हम सोचते हैं कि इन सारी बातों को करके हम सत्य को या प्रभु को पाने में कभी समर्थ हो जाएंगे, तो हम बहुत गलत सोचते हैं। दूसरी बात मैं आपसे कहना चाहता हूंः शास्त्र से नहीं मिलेगा धर्म, स्वयं से मिलेगा। हालांकि स्वयं से मिलने पर शास्त्र निर्मित हो सकते हैं। लेकिन शास्त्र से जाने पर सत्य नहीं मिल सकता, सत्य मिलने पर शास्त्र जरूर निर्मित हो जाते हैं। जिन्हें भी सत्य मिल जाता है, वे कहना चाहते हैं दूसरों को कि हमें क्या मिल गया। यह जानते हुए भी कि शब्द नहीं कह पाते हैं।
एक गूंगे को भी मिठाई मिल जाए तो वह भी शोरगुल मचा कर कहना चाहता है कि बहुत आनंद आया। लेकिन आप उसके शोरगुल को पकड़ लें और घर में जाकर वैसे ही शोरगुल मचाने लगें और समझें कि मिठाई मिल जाएगी, तो आप गलती में पड़ गए हैं। शास्त्र, जिन्हें सत्य की मिठाई मिली, उन गूंगे हो गए लोगों का शोरगुल है। उन्होंने कहने की बड़ी कोशिश की है, लेकिन कह नहीं पाए। उसका कारण यह नहीं है कि वे कमजोर थे कहने में, उसका कारण यह है कि कहना ही असमर्थ है सत्य को प्रकट करने के लिए।
लाओत्से ने एक छोटी सी किताब लिखी है। और उस किताब का पहला वचन उसने
जो लिखा है वह बहुत अदभुत है। उसने पहला वचन लिखा है कि सबसे पहले तो मैं यह कहना चाहता हूं कि जो मैं कहने जा रहा हूं वह मैं कह न पाऊंगा। दूसरी बात यह कहना चाहता हूं कि जो मैं कहूं उसको पकड़ मत लेना, क्योंकि जो मैं कहना चाहता था वह बात और थी और जो कह गया हूं वह बात और है।
रवींद्रनाथ मर रहे थे, मरणशय्या पर पड़े थे। एक मित्र मिलने आया और उसने रवींद्रनाथ से कहा कि आप तो तृप्त होकर मर रहे होंगे, आपने तो जिंदगी में सब पा लिया जो एक आदमी पा सकता है। आप महाकवि थे, आपने छह हजार गीत लिखे। यूरोप में शेली को महाकवि कहते हैं, उसके भी दो हजार गीत हैं। आपके छह हजार गीत हैं! आपके छह हजार गीत संगीत में बांधे जा सकते हैं! शायद पृथ्वी पर इतना बड़ा महाकवि कभी नहीं हुआ, उस मित्र ने कहा, आप तो तृप्त हैं?
लेकिन रवींद्रनाथ की आंख से आंसू गिर रहे थे। रवींद्रनाथ ने कहा कि नहीं, मैं जो गाना चाहता था, वह अभी गा ही नहीं पाया। ये छह हजार तो मेरी

कोशिश हैं, जो असफल गईं। ये तो छह हजार मैंने प्रयास किए जो सफल नहीं हो सके। अभी जो मैं गाना चाहता था वह मैं गा नहीं पाया, वह तो भीतर रह गया। और जाने का वक्त आ गया! तो मैं तो आंख बंद करके भगवान से यही कह रहा हूं कि अभी साज ही बिठा पाया था, अभी गाया कहां? और जाने का वक्त आ गया! लेकिन फिर मैं यह सोचता हूं कि अगर अनंत जन्म भी मुझे मिल जाएं, तब भी साज ही बिठा पाऊंगा, गा न पाऊंगा। क्योंकि वह जो गाने योग्य है, वह सभी पकड़ के बाहर छूट जाता है। न शब्द में पकड़ता, न स्वर में पकड़ता, न रंग में पकड़ता, वह किसी रेखा में नहीं पकड़ता, वह बाहर छूट जाता है। वह अनंत है, असीम है, वह कैसे पकड़ में आएगा?
नहीं, किताबें उसे नहीं पकड़ सकतीं। कोई उसे कभी नहीं पकड़ पाया। इसका
यह मतलब नहीं है कि मैं कह रहा हूं किताबें फेंक दें। इसका केवल इतना ही मतलब है कि किताबों को भी देखें तो समझ में आ जाएगा कि जो कहना चाहने की कोशिश की गई थी वह नहीं कहा जा सका। सब किताबें एक ही इशारा करती हैं कि वह अनकहा छूट गया है, वह नहीं कहा गया है। सब इशारे एक बात कहते हैं कि अनएक्सप्रेस्ड, अभी तक वह अभिव्यक्त नहीं हुआ, वह प्रकट नहीं हो सका है। आदमी की वाणी छोटी पड़ गई है। वह बहुत विराट है, वह समा नहीं पाता। हम चिल्लाते हैं, प्रकट करने की कोशिश करते हैं, वह अप्रकट रह जाता है। इसलिए मैं आपसे कहना चाहता हूंः प्रभु जाना तो जा सकता है, कहा नहीं
जा सकता। इसलिए कोई धर्मशास्त्र बन नहीं सकता, बना भी नहीं है, बनेगा भी नहीं। ऐसा कोई शास्त्र नहीं जिसको जान कर आप धर्म को जान लेंगे। हां, अगर धर्म को आप जान लें तो आप सब शास्त्रों को जरूर जान लेंगे। धर्म को जान लें तो सब शास्त्रों का सीक्रेट, राज खुल जाएगा। आप जान लेंगे कि ठीक है, पा गए लोग गूंगे हो गए थे, उन्होंने चिल्ला-चिल्ला कर कहा है, लेकिन आवाजें ही निकली हैं, वे कह नहीं पाए हैं। जो कहना था वह छूट गया है।
धर्म को जान लें तो शास्त्र समझ में आ जाएंगे, लेकिन शास्त्र को समझ
कर धर्म समझ में नहीं आ सकता है। इस बात को ठीक से ध्यान में ले लें, अन्यथा शास्त्र खूंटी बन जाता है।
दूसरी बात, यह भी ख्याल में ले लें, नहीं तो वह भी बहुत बड़ी खूंटी है।
और वह खूंटी यह है कि अगर आप सोचते हों कि जैसे आपने धन पाया, यश पाया, पद पाया, ऐसे ही आप प्रभु को भी पाएंगे, तो आप भूल में पड़ जाएंगे। धन भी अहंकार की उपलब्धि है, पद भी अहंकार की उपलब्धि है, यश भी अहंकार की उपलब्धि है। प्रभु को इसी मार्ग से नहीं पाया जा सकता। वह अहंकार की उपलब्धि नहीं, अहंकार का खोना है। इन दोनों में विरोध है।
इसलिए संसार में जिस ढंग से हम पाते हैं, उसी ढंग से हम सत्य को नहीं
पा सकते। लेकिन स्वभावतः, जो हमारी आदत संसार में पाने की होती है, उसी आदत को हम परमात्मा पर भी लगाने की कोशिश करते हैं। जो हमारा अनुभव होता है कि जीवन में हमने धन कैसे पाया, वैसे ही हम परमात्मा को भी पाने चल पड़ते हैं। वहां बड़ी भूल हो जाती है। इस भूल से सावधान होना जरूरी है।
उसे पाना हो तो एक बात का तो आप निर्णय कर ही लेना, वह यह कि अपने को खोना पड़ेगा। अपने को खोए बिना कोई रास्ता नहीं है। नदी जब खोती है अपने को तो सागर हो जाती है, और बीज जब अपने को खोता है तो वृक्ष हो जाता है, और मनुष्य जब अपने को खोता है तो प्रभु हो जाता है। खोने से मिटता नहीं है; खोने से सिर्फ उसका जो छोटापन है वह मिटता है। खोने से उसकी जो सीमा है वह मिटती है। खोने से उसकी जो क्षुद्रता है वह मिटती है। खोने से वह मिटता नहीं, खोने से ही वह वस्तुतः हो पाता है।
लेकिन हमारी कठिनाई है। हमारी कठिनाई है। एक बीज अगर सोच ले कि मैं मिट जाऊंगा, अपने को बचा लूं। तो बीज अपने को बचा सकता है, लेकिन तब वृक्ष पैदा नहीं हो पाएगा। और वृक्ष पैदा न हो तो बीज के प्राण सदा के लिए रोते रह जाएंगे। हम भी ऐसे बीज हैं जिन्होंने अपने को बचाने की कोशिश की है। नानक या कबीर या फरीद ऐसे बीज हैं जिन्होंने अपने को खोने की तैयारी की, वे वृक्ष बन गए। अब उन वृक्षों के नीचे हजारों लोग छाया ले सकते हैं। और हम ऐसे बीज हैं कि हमारे नीचे छाया लेने का सवाल ही नहीं है। हमारे नीचे ही कुछ होने का सवाल नहीं है। हम सिर्फ सड़ते हैं। अगर बीज वृक्ष न हो तो सिर्फ

सड़ सकता है, और क्या करेगा? बीज के लिए दो ही रास्ते हैंः या तो वृक्ष हो जाए और या फिर सड़े।
तो हम सिर्फ सड़ते हैं। जिसे हम जीवन कहते हैं वह सड़ने की लंबी प्रक्रिया है। बच्चा बूढ़ा होता है बस, और कुछ नहीं होता। बच्चा रोज बूढ़ा होता जाता है और हम सोचते हैं--जीवन है, जीवन है। रोज मरते हैं, और कुछ भी नहीं होता। कल से आज तक आपने क्या किया है? सिर्फ चौबीस घंटे और मर गए। जन्म से मरने तक हम जीते नहीं, जन्म से मरने तक हम सिर्फ मरते ही हैं। लेकिन लंबे फासले की वजह से ख्याल में नहीं आता कि जिसे हम जिंदगी कहते हैं वह स्लो डेथ है, ग्रेजुअल डेथ है, धीरे-धीरे मरते जाना है। एक दिन का बच्चा एक दिन मर गया, दो दिन का बच्चा दो दिन मर गया, सत्तर वर्ष का आदमी सत्तर वर्ष मर चुका, चुक गई रेत, गया, समाप्त हो गया।
मैंने सुनी है एक घटना कि एक सम्राट ने एक रात एक सपना देखा। सपना देखा कि अंधेरे में, रात के सपने में, कोई छाया उसके कंधे पर हाथ रख कर खड़ी है। उसने लौट कर पीछे देखा, बहुत घबड़ा गया। पूछा कि तू कौन है?
उस छाया ने कहा, पहचानते नहीं अब तक? डर गए हो तो समझ तो मैं गई कि तुम पहचान गए, क्योंकि कई बार मैं आई हूं पहले भी, लेकिन तुम अजीब हो कि बार-बार भूल जाते हो! असल में जिससे हम भयभीत होते हैं उसे हम भूलने की कोशिश करते हैं। भूलने से कुछ मिटता नहीं। उसने कहा कि मैं तुम्हारी मौत हूं और आज सांझ आ रही हूं। इतनी खबर देने आई हूं कि सांझ सूरज डूबते समय ठीक जगह पर और ठीक समय मिल जाना! ऐसा न हो कि मैं वहां खोजूं और तुम यहां-वहां हो जाओ। सम्राट पूछना चाहता था--कौन सी जगह? इसलिए नहीं कि वहां पहुंच जाए, बल्कि इसलिए कि कहीं भूल से वहां न पहुंच जाए। लेकिन जब उसने पूछा--कौन सी जगह? तो इतने जोर से पूछा कि नींद टूट गई और सपना खो गया। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। आधी रात थी, वजीरों को बुलवा कर उसने गांव में खबर की कि जो लोग भी स्वप्न का अर्थ कर सकते हों, उनको जल्दी बुला लाओ।
भागे वे। गांव के पंडित इकट्ठे हो गए। वे अपने शास्त्र साथ में ले आए। पंडित के पास शास्त्र के सिवाय और कुछ होता भी नहीं है। बुद्धि तो होती नहीं, शास्त्र ही होता है। तो उसे ले आए। उन्होंने सबने अपने शास्त्र खोल लिए और व्याख्या करने में लग गए।
सुबह होने लगी, सूरज निकलने लगा। सम्राट ने कहा कि यह कब तक तुम व्याख्या करोगे? सूरज उग चुका है! और उगे हुए सूरज को डूबने में देर कितनी लगती है! एक अर्थ में सूरज ने डूबना शुरू कर दिया! जल्दी करो अर्थ! क्या अर्थ है इसका?
लेकिन पंडितों ने कहा, इतनी जल्दी नहीं हो सकता। पहले हम शास्त्रार्थ करेंगे, एक-एक शब्द का अर्थ करेंगे। यह इतना आसान मामला नहीं है।
विवाद बढ़ने लगा। दोपहर तक हालतें और बुरी हो गईं। जब सम्राट जगा था नींद से, तो सपना कुछ साफ था। पंडितों की बात सुन कर और कनफ्यूजन हो गया। कुछ साफ तो न हुआ नया, बल्कि जो साफ था वह भी डांवाडोल हो गया। सम्राट ने कहा कि जब मैं जगा था तो मुझे कुछ साफ नजर आता था, तुम्हारी बातें सुन कर मैं और मुश्किल में पड़ गया।
तो सम्राट के बूढ़े नौकर ने कहा उसके कान में कि सूरज डूबने के करीब होने लगा, दोपहर हो गई, सूरज उतर रहा है अब। और इनकी बातों का कभी अंत नहीं होगा। क्योंकि पंडितों की बातों का हजारों साल में अंत नहीं हुआ, सांझ तक कैसे होगा! और यह भी ध्यान रहे कि पंडित कभी किसी निष्कर्ष पर, किसी कनक्लूजन पर नहीं पहुंचे हैं। पहुंच भी नहीं सकते हैं, क्योंकि निष्कर्ष पर अनुभव पहुंचता है। ये पंडित कभी न पहुंचेंगे। सांझ हो जाएगी तो मुश्किल में पड़ जाओगे। उस बूढ़े ने कहा, मेरी तो एक सलाह है अगर मानो। और वह सलाह यह है कि तुम्हारे पास एक तेज घोड़ा है, उसे लेकर तुम जितनी शीघ्रता से इस महल को छोड़ सको, छोड़ दो। इस महल में रुकना ठीक नहीं है। यहीं वह सपना आया है। खतरा यही है कि वह मौत यहीं आ जाए।
सम्राट को बात जंची। उसने कहा, कहीं भी भाग जाऊं, इतनी बड़ी पृथ्वी है।
उसी जगह थोड़े ही पहुंच जाऊंगा जहां कि मौत को मिलना है। और इस मकान को तो छोड़ ही दूं, यहां सपना आया है।
वह घोड़े पर सवार हुआ और भागा। उसके पास तेज घोड़ा था।

कई बार उसने अपनी पत्नी को कहा था, तेरे बिना एक दिन न जी सकूंगा। लेकिन घोड़े पर भागते वक्त उसे याद भी न आई पत्नी की। असल में मौत सब भुला देती है। जीवन के सब वायदे मौत भुला देती है। मित्रों से कहा था कि तुम्हीं हो तो सब कुछ है। उन मित्रों का आज कोई पता न रहा। मौत करीब आती है तो सब खो जाता है। भागा है घोड़े पर, भागता रहा। न भूख लगी उस दिन, न प्यास लगी उस दिन। ये सब जीवन के नखरे हैं, मौत सामने खड़ी हो तो कैसी भूख? कैसी प्यास? भागता रहा, भागता रहा। सोचा, एक क्षण भी रुकूंगा तो उतनी देर मकान से दूर न निकल पाऊंगा। तो आज न खाऊंगा तो क्या हर्ज?
सांझ तक वह सैकड़ों मील दूर निकल गया। तेज था उसके पास घोड़ा। ऐसे ही एक बगीचे में जाकर एक आम के झाड़ के नीचे घोड़े को बांध कर रुका। सूरज डूबता था, घोड़े की पीठ पर थपकी दी और उसने कहा, शाबाश! आज तू ही मेरा मित्र सिद्ध हुआ। बहुत दूर तू ले आया। थोड़े समय में बहुत यात्रा करवा दी। कैसे तेरा धन्यवाद करूं? तभी पीछे कंधे पर कोई हाथ पड़ा--वही काली छाया--और उसने कहा, घोड़े को धन्यवाद मुझे भी देना है। क्योंकि मैं बहुत डरी हुई थी कि इस झाड़ के नीचे तुम सांझ तक आ पाओगे कि नहीं आ पाओगे? इसी जगह तुम्हें मरना है! घोड़ा तुम्हें बिल्कुल ठीक वक्त पर ले आया, बड़ा तेज घोड़ा है। कैसे इसका धन्यवाद करूं?
आदमी जिंदगी भर दौड़ कर सिवाय मौत के और कहां पहुंच पाता है? जिंदगी भर बना कर सिवाय मौत के और क्या बना पाता है? जिंदगी भर जोड़ कर सिवाय कब्र के और क्या जोड़ पाता है? जिंदगी भर सारा उपाय, अंतिम निष्कर्ष क्या है? इसे हम जिंदगी न कहेंगे। धर्म इसे जिंदगी नहीं कहता। धर्म इसे सिर्फ मरने की लंबी प्रक्रिया कहता है। यह मरने का क्रम है लंबा, धीरे-धीरे सत्तर साल लगता है मरने में, अस्सी साल लगता है। कोई जरा धीरे मरता है, कोई जरा तेजी से मरता है। मरने की प्रक्रिया लेकिन पूरी हो जाती है। गरीब का घोड़ा भी पहुंच जाता है उसी झाड़ के नीचे, अमीर का घोड़ा भी पहुंच जाता है। कोई जरा शानदार घोड़े पर जाता है, कोई जरा गरीब घोड़े पर जाता है। कुछ हैं कि पैदल भी जाते हैं। कोई हवाई जहाजों से भी पहुंच जाते हैं। लेकिन सब अपना दरख्त खोज लेते हैं और सब ठीक समय पर पहुंच जाते हैं।
आदमी जिंदगी भर चल कर पहुंचता कहां है?
नहीं, धर्म कहता है कि जिसे हम जीवन कहते हैं, वह जीवन नहीं है। धर्म कहता है, जिसे हम जीवन कहते हैं, वह केवल जीवन के पैदा होने का एक अवसर है, एक अपरचुनिटी है। जिसे हम जीवन कहते हैं वह एक बीज है जिसमें से जीवन पैदा हो सकता है। लेकिन हो नहीं गया है। और उसे कौन पैदा करेगा? उसे वही बीज पैदा कर पाएगा जो मिटने को तैयार है। लेकिन हम सब बीज तो बचने की कोशिश में लगे हैं। जिंदगी भर बचते हैं, अंतिम परिणाम में मौत पकड़ लेती है।
धर्म कहता है, इससे उलटा है रास्ता--मरने की तैयारी जुटाओ, मिटने की तैयारी जुटाओ, और फिर तुम्हें मौत कभी न पकड़ सकेगी। अमृत उपलब्ध हो जाएगा। और जीवन का वृक्ष इस बीज के बाहर पैदा हो सकता है।
इसलिए धर्म का मूल सार अहंकार की हत्या है। इससे न कोई हिंदू का संबंध है, न कोई मुसलमान का संबंध है, न कोई सिक्ख का, न कोई जैन का, न कोई ईसाई का। धर्म का मूल सूत्र अहंकार की मृत्यु है। मैं कैसे मिटूं? मैं कैसे समाप्त हो जाऊं? मैं कैसे अपने को खो दूं?
कठिन है यह बात, क्योंकि अपने को खोने से ज्यादा और कठिन क्या हो सकता है? लेकिन सरल भी है यह बात, क्योंकि अपने को खोने में इतना आनंद और अपने को बचाने में इतना दुख है। इसलिए सरल भी है यह बात।
जीसस को जिस दिन सूली लगी उस रात खबर हो गई थी कि कल सुबह सूली लग जाएगी। एक मित्र ने जीसस से कहा कि भाग क्यों नहीं जाते हो? जब पता चल गया है कि सुबह सूली लग जाएगी और दुश्मन खोजता आ रहा है, तो अभी समय है, भाग क्यों नहीं जाते हो?
तो जीसस ने कहा कि सूली बिना लगे उस परमात्मा का द्वार भी कैसे खुलेगा? सूली लगेगी तभी तो मैं उसको पा सकूंगा। मिटूंगा तभी तो उसे पा सकूंगा। तो मैं सूली से न भागूंगा, मैं तो सूली की प्रतीक्षा कर रहा हूं। फिर वे सूली पर लटके। फिर अब उनका जो पादरी है वह गले में एक सोने की सूली लटकाए रहता है। बड़े मजे की बात है! सूलियां सोने की नहीं होतीं। और

सूलियों पर गला लटकाया जाता है, गले में सूलियां नहीं लटकाई जातीं। मगर आदमी बहुत धोखेबाज है। वह जीसस को धोखा देगा, नानक को धोखा देगा, बुद्ध को धोखा देगा, कृष्ण को धोखा देगा, वह सबको धोखा दे देता है। वह कहता है कि ठीक कहते हो! सूली पर लटकना चाहिए? ठीक, हम एक सोने की सूली अपने गले में लटका लेते हैं।
यह सोने की सूली सूली नहीं है, यह उसका आभूषण है। यह सोने की सूली से
वह अकड़ कर चलता है रास्ते पर कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं। सोने की सूली वाला, जीसस का पादरी हूं। कहां जीसस बेचारा, उसको लकड़ी की सूली अपने कंधे पर ढोनी पड़ी। अपनी सूली अपने ही कंधे पर ढोनी पड़ती है। उसको गाड़ना पड़ा और उस पर लटक जाना पड़ा। लेकिन मरते वक्त, जिसने उसको सूली की आज्ञा दी थी, पायलट, उस पायलट ने जीसस से एक सवाल पूछा। और वह सवाल शायद मरते वक्त आप भी अपने से पूछेंगे। लेकिन धन्यभागी हैं वे जो मरते वक्त नहीं, जिंदा में पूछ लेते हैं। क्योंकि फिर काम करने का समय नहीं बचता। पायलट ने जीसस से मरने के पहले पूछा कि एक बात तो बता दो मरने के पहले कि सत्य क्या है? व्हाट इ.ज ट्रुथ? जीसस चुप रह गए और उनकी आंखें सूली की तरफ उठ गईं। पायलट समझा नहीं, लेकिन जीसस ने कहा कि सूली पर लटको तो पता चल जाएगा। और सत्य के पता चलने का कोई रास्ता नहीं है। और कोई रास्ता ही नहीं है सत्य के पता चलने का। लेकिन पायलट नहीं समझा। उसने कहा, क्या उत्तर नहीं देते हो? मालूम होता है मालूम नहीं है। असल में मौन में दिए गए उत्तर को समझने के लिए बड़ी सामर्थ्य चाहिए। जीसस हंसे, और फिर उन्होंने सूली की तरफ देखा। लेकिन पायलट ने कहा कि ठीक है, दे दो सूली। इस आदमी को शायद पता नहीं कि सत्य क्या है।
वे भी कोई वेद-वचन उद्धृत कर सकते थे। वे भी कोई शास्त्र का वचन कह सकते थे कि सत्य क्या है। नहीं, ऐसा नहीं था कि उन्हें पता नहीं था कि सत्य के संबंध में क्या-क्या कहा गया है। लेकिन कहने का सवाल नहीं, सत्य अनुभव का सवाल है। और अनुभव अपने को दांव पर लगाने से उपलब्ध होता है, उसके पहले उपलब्ध नहीं होता। तो धार्मिक आदमी इस जगत में सबसे बड़ा साहसी आदमी है। उससे बड़ा एडवेंचरर कोई भी नहीं है।
लेकिन हम तो देखते हैं धार्मिक लोगों को अत्यंत कमजोर, घुटने टेके हुए, हाथ जोड़े हुए। यह धार्मिक आदमी की शक्ल नहीं है। यह परमात्मा से कोई काम लेने गया हुआ आदमी है। यह कनिंग, चालाक दिमाग, यह कह रहा है कि हमारा कुछ काम निपटा दो जरा, अगर तुम हमारा काम निपटा दोगे तो हम पांच आने का एक नारियल चढ़ा देंगे।
हद्द पागलपन है! भगवान को भी रिश्वत देने का इरादा हम रखते हैं। और हमारे मुल्क में अगर इतनी रिश्वत है तो उसका कारण है कि हम पहले ही से भगवान को रिश्वत देते रहे हैं। हमने सोचा, आदमी को देने में हर्ज क्या है? जब भगवान तक रिश्वत से काम चल जाता है--पांच आने का नारियल चढ़ा देते हैं, लाख का काम करवा लेते हैं--तो आदमी को भी पांच आने दे दिए तो हर्ज क्या है? रिश्वत हमारे खून में मिल गई है, क्योंकि हम भगवान तक को रिश्वत देने में संकोच नहीं किए हैं।
विवेकानंद की हालत बहुत गरीब थी, बहुत खराब थी। विवेकानंद के पिता मर गए, तो कर्ज छोड़ गए थे। रामकृष्ण के पास जाते थे तो अक्सर भूखे ही घूमते रहते थे। घर में इतनी रोटी होती थी कि या तो मां खा सके या विवेकानंद खा सकें। तो मां को कह देते थे कि आज किसी मित्र के घर निमंत्रण है। तो मां रोटी खा लेती थी और वे सड़कों पर भूखे घूम कर पानी पीकर वापस आकर सो जाते थे।
रामकृष्ण को पता लगा तो रामकृष्ण ने कहा, पागल! जब इतनी परेशानी है तो भगवान से क्यों नहीं कह देता? कल आ, और मंदिर में जाकर मां से कह दे, काली से कह दे। कह दे प्रभु से हाथ जोड़ कर। सब दुख मिट जाएगा।
विवेकानंद ने कहा, आप कहते हैं तो मैं आ जाऊंगा।
वे आए, वे मंदिर के भीतर गए। रामकृष्ण बाहर बैठे हैं, वे भीतर गए। वे हाथ जोड़ कर घंटे भर खड़े रहे, आंसू बहे, लौट कर आए। रामकृष्ण ने सीढ़ियों पर पूछा, कहा?
विवेकानंद ने कहा कि अरे! वह तो मैं भूल ही गया।

कहा, पागल फिर से जा।
वे फिर भीतर गए, फिर हाथ जोड़ कर खड़े रहे, रोते रहे। फिर घंटे भर बाद लौटे। रामकृष्ण ने कहा, कहा?
उन्होंने कहा, अरे वह! वह तो मैं भूल ही गया।
रामकृष्ण ने कहा, तीसरी बार जा।
विवेकानंद ने कहा कि वह मैं तीसरी बार भी भूल जाऊंगा। क्योंकि मैं यह कल्पना ही नहीं कर सकता कि भगवान के पास भी मांगने जाऊं तो रोटी मांगने जाऊं। यह मैं सोच ही नहीं सकता।
तो रामकृष्ण ने कहा, तू करता क्या है वहां जाकर? फिर क्या मांगता है? रोटी नहीं मांगता।
तो विवेकानंद ने कहा, मांगो कुछ भी, मांगना ही गलत है। वहां जाकर मैं
यह कहता हूं कि मुझे ले लो, मुझे स्वीकार कर लो, मुझे मिटा दो, मुझे सम्हाल लो। वहां मैं मांगता नहीं, वहां मैं देता हूं--कि मुझे ले लो किसी तरह, मुझे सम्हाल लो किसी तरह, मुझे मिटा दो, तुम्हीं रह जाओ।
तो रोता किसलिए है? उन्होंने पूछा।
तो विवेकानंद ने कहा, रोता इसलिए हूं कि शायद यह आवाज पूरी गहराई से नहीं उठती, नहीं तो स्वीकार हो जाए। शायद कहीं कोई बचाव रह जाता होगा, इसलिए स्वीकृत नहीं होती।
शिकायत यहां भी नहीं है। यही ख्याल है कि आवाज शायद पूरी तरह नहीं उठती, नहीं तो स्वीकृत हो जाए।
मिटना होगा, मिटने की प्रार्थना करनी होगी। उसके द्वार पर गिरना होगा, समाप्त होना होगा। इस मैं को बचाना छोड़ें। इस मैं को बनाना छोड़ें। इस मैं को मिटाने के ध्यान को ख्याल में लाएं, तो आपकी जिंदगी में धर्म का विस्फोट हो सकता है। और जब मैं कहता हूं कि यह विस्फोट आपके मिटने से ही होगा, इसके पहले नहीं, तो मैं कोई नई बात नहीं कहता और न मैं कोई पुरानी बात कहता हूं। मैं एक बात कहता हूं जो शाश्वत है, जो सनातन है।
सनातन का मतलब पुराना नहीं होता। सनातन का मतलब होता है कि जिसका नये
और पुराने का कोई अर्थ ही नहीं है, जो सदा है। पुराने का मतलब है जो कभी था। नये का मतलब है जो कभी नहीं था। सनातन का मतलब है जो सदा है। न नया है, न पुराना है। धर्म सनातन है। सनातन धर्म जैसी कोई चीज नहीं है। ध्यान रखना! धर्म सनातन है, सनातन धर्म जैसी कोई चीज नहीं है। क्योंकि सनातन धर्म का तो मतलब होगा कि कुछ सामयिक धर्म भी हैं। सनातन धर्म का मतलब होगा कि कुछ क्षणिक धर्म भी हैं। सनातन धर्म का मतलब होगा कि कुछ असनातन धर्म भी हैं। नहीं, सनातन धर्म जैसी कोई चीज नहीं है। धर्म सनातन है। धर्म का होना
ही सनातन है। वह इटरनल है, वह सदा है।
यह जो सनातन, यह जो सदा से एक नियम, एक सूत्र जीवन के प्राणों में बैठा है--कि जो अपने को मिटाता है वह सर्व को उपलब्ध हो जाता है--यह सनातन है, यह कोई नई बात नहीं है। लेकिन यह हर बार नई लगती है। उसका कारण है कि हर बार लोग इसे पुराना कर देने की पूरी कोशिश करते हैं। यह हर बार नई इसलिए लगती है कि इसको हर बार लोग पुराना कर देते हैं। इसे पत्थरों पर खोद देते हैं, किताबों में लिख देते हैं। इसे लोगों को कहते हैं कि हमारी पुरानी किताब में लिखा हुआ है।
उनकी किताब पुरानी होगी, यह बात कभी पुरानी नहीं है। यह बात सदा-सदा सनातन है। न पुरानी है, न नई है। इस पर धूल नहीं जमती। न यह पुरानी होती, न नई होती। लेकिन इस बात का जब वे दावा करते हैं कि हमारी किताब में है और हमारी किताब पुरानी है, तब वे इस बात को भी पुराना करने के लिए व्यर्थ ही मेहनत में पड़ जाते हैं।
और ध्यान रहे, जो पुराना हो जाता है, वह मर जाता है। और धर्म चूंकि मर नहीं सकता इसलिए कभी पुराना नहीं हो सकता। जो भी पुराना होगा, वह मरेगा। इसलिए धर्म के साथ पुराने का आग्रह मत करें।
लेकिन सारी दुनिया के धार्मिक लोग यह कोशिश करते हैं कि उनका धर्म सबसे ज्यादा पुराना। जैसे पुराना होना कोई कीमत है। परमात्मा न पुराना है, न नया है। वह सदा वही है। वह कभी पुराना नहीं होता और नया भी नहीं होता।
लेकिन हम शास्त्र निर्मित करके इसे पुराना कर देते हैं। इसलिए जब दुबारा

बात आती है तब फिर हमें कठिनाई शुरू हो जाती है कि कहीं यह कोई नई बात तो नहीं है? हम नई से इतने भयभीत होते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। नये से इतना भय क्या है? अगर नये से भयभीत हैं तो परमात्मा से तो बहुत भयभीत हो जाएंगे। क्योंकि परमात्मा जब मिलेगा तो उससे ज्यादा नया क्या है! उससे ज्यादा फ्रेश क्या है! उससे ज्यादा ताजा क्या है! जब वह मिलेगा तब तो आप बहुत घबड़ा कर भाग जाएंगे। आप कहेंगे, हम तो अपनी पुरानी खोल में छिप जाते हैं। यह तो बड़ा नया मालूम होता है। यह तो बिल्कुल नया है, जैसे सुबह की ओस, जैसे सुबह की धूप। यह तो सदा-सदा नया है। यह तो कभी बासा नहीं होता। इस पर धूल नहीं जमती।
लेकिन धर्म तो बासा नहीं होता, धर्मग्रंथ जरूर बासे हो जाते हैं। क्योंकि वे आदमी की लिखी हुई किताबें हैं, वे तो पुरानी पड़ेंगी।
मैंने सुना है, एक घर में एक आदमी डिक्शनरी बेचने आया है, शब्दकोश बेच रहा है। और घर की गृहिणी ने उसे टालने को कहा कि हमारे पास तो शब्दकोश है, डिक्शनरी है। तुम ले जाओ।
उसने कहा, कहां है?
सामने ही टेबल पर एक मोटी किताब रखी थी, तो उसने कहा कि वह रही।
उस आदमी ने कहा, माफ करिए देवी जी, वह डिक्शनरी नहीं है।
उस औरत ने कहा, पागल हो गए, तुम्हें इतनी दूर से कैसे पता चलेगा?
उसने कहा, मैं कह सकता हूं वह कोई धर्मग्रंथ है, डिक्शनरी नहीं है।
उसने कहा, क्या मतलब? तुमने जाना कैसे?
वह धर्मग्रंथ था। उस आदमी ने कहा, जानने का कारण है, उस पर इतनी धूल जमी है कि वह डिक्शनरी नहीं हो सकती। डिक्शनरी को तो बच्चे रोज खोलते हैं। धर्मग्रंथ बंद रखा है, धूल जमती चली जा रही है। कौन खोलता है उसे? घर में रखे हुए हैं और धूल जमा हो रही है।
उस आदमी ने कहा, मैं धूल की पर्त देख कर कह सकता हूं कि धर्मग्रंथ होना चाहिए, डिक्शनरी तो नहीं हो सकती।
धर्मग्रंथों पर धूल इकट्ठी हो ही जाएगी। असल में आदमी कुछ भी बनाएगा
वह पुराना होगा। आदमी का बनाया शाश्वत कुछ भी नहीं हो सकता। आदमी की सब बनाई चीज बनती है और मिटती है। आदमी जो भी बनाएगा, बनेगा और मिटेगा। लेकिन कुछ ऐसा भी है जो न कभी बनता और न कभी मिटता; जो सदा है। वह आदमी
की बनावट नहीं है; वह आदमी के बनाने के बाहर है। आदमी खुद जहां से बनता है, वहां है वह जगह। जहां शाश्वत, सनातन नियम काम करते हैं।
उन नियमों में एक सूत्र जो मूल्यवान मुझे आपके लिए लगता है, वह मैं आपसे कहता हूं। अगर धार्मिक होना है तो अपने को मिटाने की तैयारी करना। और अगर न होना हो तो कम से कम झूठे धार्मिक मत होना। सच्चे अधार्मिक होना बेहतर है। उसका कारण है। ठीक से यह जानना कि मैं धार्मिक आदमी नहीं हूं, मैं अभी अपने को मिटाने को तैयार नहीं। अगर यह बात आपको ठीक से ख्याल में रहे कि मैं धार्मिक आदमी नहीं हूं, क्योंकि मेरी अभी अपने को मिटाने की कोई तैयारी नहीं--तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, आपकी जिंदगी में वह पीड़ा घनी होने लगेगी, घनी होने लगेगी। अधार्मिक होना आपको दुखद होने लगेगा, पीड़ा से भर देगा। और एक दिन आपको निर्णय लेना पड़ेगा कि अब मैं धार्मिक होने का निर्णय लूं।
लेकिन हमारी तकलीफ क्या है? हमारी तकलीफ यह है कि हम अधार्मिक होते हुए अपने को धार्मिक मान लेते हैं। इसलिए धार्मिक होने का फिर मौका ही नहीं आता। जैसे कोई बीमार आदमी अपने को स्वस्थ मान ले बीमार होते हुए, तो न इलाज करता, न स्वस्थ होने की कोई कोशिश करता। वह स्वस्थ है ही।
मनुष्य के जीवन में जो बड़े से बड़ा दुर्भाग्य हो सकता है वह यह है कि हम अधार्मिक होते हुए अपने को धार्मिक समझे हुए हैं। और हमने धार्मिक होने की कैसी सरल तरकीबें निकाल ली हैं! एक आदमी रोज सुबह मंदिर हो आता है--या मस्जिद हो आता है, या गुरुद्वारा हो आता है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता--तो वह अपने को धार्मिक समझने लगता है। जरा मंदिर से, मस्जिद से निकलते हुए आदमी की अकड़ देखें! वह और ढंग से चलता है। वह सारे लोगों की तरफ देखता हुआ चलता है--कि ठीक है, नरक में सड़ोगे। हिसाब रखता हैः कौन-कौन नरक में जाएगा, कौन-कौन मंदिर नहीं गया।

मैंने सुना है कि मोहम्मद एक दिन एक लड़के को लेकर मस्जिद चले गए। उस लड़के को उन्होंने कई बार कहा था कि सुबह की नमाज में चल, सुबह की प्रार्थना में सम्मिलित हो। उस लड़के ने कहा कि मुझे तो नींद ही नहीं खुलती जल्दी। लेकिन एक दिन नहीं मोहम्मद माने तो वह उठ गया। मोहम्मद लेकर उसे मस्जिद गए, सुबह की नमाज में वह लड़का सम्मिलित हुआ। जब लौट रहा था तो उसकी चाल बदल गई। रास्ते में, गर्मी के दिन थे, अभी भी कुछ लोग अपने बिस्तरों पर सोए हुए थे। उस लड़के ने मोहम्मद से कहा, देखते हैं हजरत, ये पापी अभी तक सो रहे हैं! अच्छा यह बताइए कि नरक में इनका क्या हश्र होगा?
मोहम्मद वहीं रुक गए और उन्होंने कहा, भाई माफ कर, मुझसे बड़ी गलती हो
गई जो मैंने तुझे उठा कर मस्जिद लाया, मुझसे बड़ी भूल हो गई जो मैंने तुझसे एक दिन प्रार्थना में खड़े होने को कहा। कल तक तू अच्छा आदमी था, कम से कम इनको पापी तो नहीं समझता था। तू वापस जा, मुझे माफ कर, और मैं वापस मस्जिद जाऊं।
उस लड़के ने कहा, आप किसलिए जाते हैं?
उन्होंने कहा, वह मेरी नमाज खराब हो गई, क्योंकि मैंने एक आदमी को खराब किया। मैं फिर से नमाज पढूं, फिर से भगवान से प्रार्थना करूं कि माफ करना, मुझसे बड़ी भूल हो गई। एक अच्छा भला आदमी नाहक खराब हो गया। वह दूसरों को पापी समझने लगा।
एक आदमी मंदिर हो आता है, धार्मिक हो जाता है। एक आदमी सुबह एक माला खरीद लेता है, फेर लेता है, वह धार्मिक हो जाता है। एक आदमी एक किताब सुबह पढ़ लेता है, वह धार्मिक हो जाता है।
इतना सस्ता धर्म है? अगर इतना सस्ता धर्म होता तो दुनिया में अधर्म की जगह क्या थी? अधर्म बचता कहां?
नहीं, इतना सस्ता धर्म संभव नहीं। ये अधर्म को बचाने की तरकीबें हैं।
ये सेफ्टी मेजर्स हैं, जिनसे हम अपने अधर्म को बचा लेते हैं। भीतर हम जो हैं, हम वही रहे आते हैं। हम वही रहेंगे ही। अगर एक आदमी दुकान पर जो था, मंदिर में जाकर दूसरा आदमी हो कैसे जाएगा? वह जो दुकान पर था, वही उठ कर मंदिर में जाता है। और मंदिर में जो है, वही लौट कर दुकान पर जाता है।
कोई खेल तो नहीं है जिंदगी कि आप मंदिर के दरवाजे पर पहुंचे, तत्काल दूसरे आदमी हो गए। भीतर गए, दूसरे आदमी रहे; बाहर निकले, दूसरे आदमी हो गए; दुकान पर बैठे, दूसरे आदमी हो गए। जिंदगी ऐसा खेल नहीं है; जिंदगी एक सातत्य है। जो आदमी दुकान पर बैठा है, वही मंदिर जाता है। और इसलिए इसकी संभावना बहुत कम है कि दुकान पर बैठा हुआ आदमी अगर गलत था, तो मंदिर में जाकर ठीक हो जाए। इसकी संभावना ज्यादा है कि दुकान पर बैठा हुआ गलत आदमी मंदिर में जाए तो वह मंदिर भी गलत हो जाए, इसकी संभावना ज्यादा है। और मंदिर उन्होंने गलत कर दिया है। वे सब तरह के अधार्मिक लोग मंदिरों में इकट्ठे होकर मंदिरों तक को अधार्मिक कर दिए हैं। वहां कोई धर्म की संभावना नहीं रह गई। स्वभावतः, आदमी इतनी आसानी से नहीं बदल जाता है। वह वही बना रहता है।
एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
मैंने सुना है कि एक आदमी मरणशय्या पर पड़ा है, मर रहा है। उसकी पत्नी उसके पास बैठी है, उसके माथे पर हाथ रखे है। डर रही है, रो रही है। सारे घर के लोग इकट्ठे हैं। सांझ अंधेरा हो गया है, दीया भी नहीं जला है। तब अचानक उस आदमी ने पूछा कि मेरा बड़ा बेटा कहां है?
उसकी पत्नी ने कहा, आपके पास बैठा है।
उसको बड़ी हैरानी हुई, क्योंकि यह जिंदगी में पहला मौका है कि उसने इतने प्रेम से पूछा कि मेरा बड़ा बेटा कहां है? हमेशा पूछता थाः तिजोड़ी की चाबी कहां है? खाते-बही कहां हैं? फलां कहां है? यह उसने कभी नहीं पूछा कि बेटा कहां है? असल में जो पैसे के लिए पागल है, उसकी जिंदगी में प्रेम की तलाश कहां होती है जो पूछे कि बेटा कहां है? वह बहुत खुश हुई, मौत की छाया में भी उसे आनंद की झलक मिली। उसने कहा, कोई बात नहीं, आज तो इतने प्रेम से पूछा।
उस आदमी ने कहा, और उससे छोटा कहां है?
उसने कहा, वह भी बैठा हुआ है।

उसने कहा, उससे छोटा कहां है?
उसने कहा, वह भी बैठा हुआ है।
वह आदमी हाथ टेक कर उठने लगा।
उसने कहा, आप लेटे रहें, हम सब यहीं बैठे हैं। सबसे छोटा भी यहीं है।
उस आदमी ने कहा, इसका क्या मतलब? फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है? सब यहीं बैठे हुए हैं!
वह पत्नी गलत समझ रही थी, वह आदमी वही है। वह अभी भी बेटे को नहीं पूछ रहा, अभी भी पूछ रहा हैः तिजोड़ी की चाबी कहां है? अभी भी दुकान पर कौन है? वह मरते वक्त भी यह पूछ रहा है। उसे इसकी फिक्र नहीं कि मैं मर रहा हूं। उसे इसकी फिक्र है कि दुकान चल रही कि नहीं चल रही?
असल में जिंदगी एक कंटिन्युटी है। अगर कल तक वह दुकान की पूछ रहा था,
तो आज अचानक प्रेम की कैसे पूछ लेगा? यह अचानक नहीं हो सकता। छलांग लगानी पड़े, जंप लेनी पड़े, तो कंटिन्युटी टूटती है।
इसलिए ध्यान रखना, आप ऐसा मत सोचना कि जैसी जिंदगी चल रही है, चलती रहे, थोड़ा-बहुत धार्मिक काम करते रहो। कभी कुछ दान कर दो, कभी एकाध मंदिर में एक कमरा बना कर पत्थर लगवा दो, कभी तीर्थ हो आओ, कभी मंदिर हो आओ, कभी सत्यनारायण की कथा करवा दो, कभी कुरान पढ़ लो, कभी गीता पढ़ लो, कभी गुरुग्रंथ को नमस्कार कर लो। यह अपने को धोखा मत दे देना। इस भांति धार्मिक न हो सकोगे। धर्म मांगता है कि आओ तो पूरे आओ। वह टोटल मांगता है। असल में कोई भी प्रेम अधूरा नहीं मांगता। प्रेम कहता है--पूरे आओ! और धर्म भी कहता है--पूरे आओ! पूरी जिंदगी बदलने की तैयारी!
लेकिन वह कहां से शुरू होगी? उसका सूत्र हैः वह मैं टूट जाए तो पूरी जिंदगी तत्काल बदल जाती है। यह जो हमारी जिंदगी है, मैं के आस-पास खड़ी है। मैं का केंद्र, न्यूक्लियस जो है वह टूट जाए, तो यह जिंदगी ऐसे ही बिखर जाती है जैसे कोई भी केंद्र टूट जाए तो सब बिखर जाता है। जैसे साइकिल पर स्पोक्स लगे हुए हैं, बीच में एक केंद्र पर सब जुड़े हैं। वह केंद्र टूट जाए, सब स्पोक्स बिखर जाते हैं। यह हमारी जिंदगी का केंद्र अहंकार है। और उस जिंदगी का केंद्र निरअहंकार है, धार्मिक जिंदगी का केंद्र निरअहंकार है, नॉन-ईगो। वहां नहीं रह जाए मैं, तो वहां सब बदल जाए।
लेकिन हम चौबीस घंटे मैं, मैं, मैं से ही भरे हुए हैं। हमारी श्वास-श्वास में मैं है। रोएं-रोएं में मैं है। सोते-जागते, उठते-बैठते, हिलते- डुलते हम मैं में ही जी रहे हैं। हमारा सारा का सारा व्यक्तित्व मैं है। इसलिए इस मैं में आप धर्म को एडीसन नहीं बना सकते, कि आप सोचते हों यही मैं माला फेरने लगे तो काम हो जाए। यही मैं ग्रंथ पढ़ने लगे तो काम हो जाए। यही मैं त्याग करने लगे तो काम हो जाए।
नहीं, यह काम तब होगा जब यह मैं टूटे। और यह मैं टूट सकता है। इस मैं के टूटने में सिवाय आपके और कोई बाधा नहीं है। यह मैं तत्काल टूट सकता है। एक बार इतना भर स्मरण आ जाए कि यह मैं है भी? यह जिस मैं के लिए मैं जी रहा हूं, मर रहा हूं, यह कहीं है? सच में इसकी कोई सच्चाई है? इसका कोई अस्तित्व है? अगर यह पता चल जाए तो यह तत्काल टूट सकता है।
सुना है मैंने, एक महल के पास पत्थर का ढेर लगा है। एक छोटा सा बच्चा निकला है और उसने एक पत्थर महल की तरफ फेंक दिया। जब वह पत्थर महल की तरफ उठने लगा, उसने नीचे पड़े हुए पत्थरों से कहा कि सुनो मित्रो, मैं जरा आकाश की यात्रा को जा रहा हूं।
फेंका गया था, लेकिन कहा उसने कि जा रहा हूं। फर्क कर लिया इतना। फर्क समझ लेना ठीक से। धार्मिक और अधार्मिक जिंदगी का वही फर्क है। फेंके गए हैं हम जिंदगी में, लेकिन कहते हैं--मेरा जन्म, मैं जिंदगी में आया हूं। उस पत्थर ने कहा कि मैं जा रहा हूं आकाश की सैर को। नीचे के पत्थर कुड़मुड़ाए होंगे, कुनकुनाए होंगे, ईर्ष्या से भर गए होंगे। लेकिन क्या कर सकते हैं? सोचा होगा मन मेंः भाग्यशाली है कोई, तब तो जा रहा है। जाना तो हम भी चाहते हैं, मगर पंख कहां? शक्ति कहां? भगवान की कृपा है इसलिए जा रहा है।
गया है पत्थर, जाकर कांच की खिड़की से टकराया महल की। स्वभावतः, जब कांच से पत्थर टकराए तो कांच चूर-चूर हो जाता है। पत्थर चूर-चूर करता नहीं

है, पत्थर को कुछ करना नहीं पड़ता कांच से टकरा कर, बस कांच से टकराने पर पत्थर और कांच का स्वभाव ऐसा है कि कांच चूर-चूर हो जाता है।
लेकिन जब कांच चूर-चूर हो गया तो पत्थर ने कहा, नासमझ कांच, कितनी दफे मैंने खबर की, कितनी दफे समझाया कि मेरे रास्ते में मत आओ, मैं चकनाचूर कर देता हूं!
किया नहीं था कुछ, सिर्फ हो गई थी घटना। इट वा.ज जस्ट ए हैपनिंग, इसमें डूइंग कुछ भी नहीं थी कि उसने कुछ किया हो, कि पत्थर को कुछ करना पड़ा हो इंतजाम कांच को चकनाचूर करने में। पत्थर और कांच का स्वभाव ऐसा है कि पत्थर और कांच टकराएं तो कांच चकनाचूर हो जाता है।

लेकिन कांच के टुकड़े क्या कह सकते थे? हारे, पराजित, टूटे हुए पड़े थे। उन्होंने कहा, ठीक ही कहते हैं, भूल हो गई, आगे से ख्याल रखेंगे।
पत्थर और अकड़ गया। गिरा नीचे। कालीन बिछा था महल में, ईरानी बहुमूल्य कालीन। पत्थर ने अपने मन में कहा, बड़े भले लोग हैं। मालूम होता है मेरे आने की खबर पता चल गई, कालीन वगैरह सब बिछा कर रखे हुए हैं। विश्राम कर लूं थोड़ा।
तभी नौकर भागा हुआ आया कांच के टूटने की आवाज सुन कर। पत्थर को हाथ में उठाया। तो पत्थर ने कहा, धन्यवाद! बहुत-बहुत धन्यवाद! सोचा पत्थर ने-- भवन का मालिक हाथ में उठा कर स्वागत करता है।
लेकिन नौकर तो पत्थर की आवाज न समझा, बात न समझा। नौकर ने तो पत्थर को वापस फेंक दिया।
जब पत्थर वापस खिड़की से लौटने लगा, तो उस पत्थर ने कहा, अब चलें। कितने
ही हों अच्छे तुम्हारे महल, लेकिन वह मजा कहां जो खुले आकाश के नीचे पत्थरों के बीच रहने में होता है! वापस जाता हूं। और फिर उस पत्थर ने कहा, होम सिकनेस भी मालूम होती है और घर की याद भी बहुत आती है।
वह वापस अपने पत्थरों की ढेरी पर गिरा है। पत्थरों से उसने कहा कि बड़ी यात्राएं कीं, महलों में निवास किया, राजाओं के हाथों में स्वागत पाया, कालीनों पर विश्राम किया, शत्रुओं का विनाश किया, लेकिन फिर भी मन हुआ कि वापस लौट चलें, घर वापस लौट चलें। मैं वापस आ गया हूं।
उस पत्थर पर आपको जरूर हंसी आएगी। लेकिन किसी दिन अगर अपने पर भी इसी तरह हंसी आ जाए तो आपकी जिंदगी में धर्म की शुरुआत हो जाती है। गौर से समझ लेना, उस पत्थर से हम भिन्न नहीं हैं। जहां चीजें हो रही हैं वहां हम कह रहे हैं--मैं कर रहा हूं। जहां जिंदगी अपने से हो रही है वहां हम कर्ता बने हुए हैं। वह कर्तापन ही हमारा मैं बन गया है। वह मैं ही हमारे और परमात्मा के बीच में दीवाल है। उसके अतिरिक्त कोई दीवाल नहीं।
मैं को खोने को तैयार हों और परमात्मा आपसे मिलने को सदा तैयार है। आप
एक छलांग लगाएं मैं के बाहर और वह सदा मौजूद है। धर्म प्रभु की खोज है। धर्म मैं का खोना है। धर्म बीज का मिटना है, वृक्ष का होना है। धर्म बूंद का मिटना है, सागर का होना है। फिर आपके हाथ में है कि बूंद ही रहना चाहें तो बूंद रह जाएं। सागर होना चाहें, सागर हो जाएं। लेकिन एक कृपा अपने पर करें कि बूंद रहते हुए सागर अपने को समझने की भूल में न पड़ें। तो किसी न किसी दिन आपकी बूंद तड़प उठेगी, प्यासी हो जाएगी, प्रार्थना से भर जाएगी और सागर की यात्रा पर निकल जाएगी।
जिस दिन भी सागर की यात्रा पर निकलना हो, चारों तरफ गौर से देख लेना-- कोई खूंटी तो नाव की बंधी नहीं रह गई है! कोई हिंदू की खूंटी, मुसलमान की, सिक्ख की, जैन की, ईसाई की! कोई भारतीय की, पाकिस्तानी की, चीनी की, अमरीकी की कोई खूंटी तो बंधी नहीं रह गई है! काले की, गोरे की, अमीर की, गरीब की, स्त्री की, पुरुष की कोई खूंटी तो बंधी नहीं रह गई है! खूंटी को ठीक से देख लेना। नाव में पतवार बाद में चलाना, पहले खूंटी उखाड़ देना, जंजीर तोड़ देना। और अननोन, उस अज्ञात की यात्रा पर अगर आप खूंटियां छोड़ दें, तो रामकृष्ण के एक वचन से अपनी बात पूरी करता हूं।
रामकृष्ण कहते थे, तुम नाव तो खोलो, उसकी हवाएं ले जाने को सदा तैयार हैं। तुम नाव तो खोलो, उसकी हवाएं ले जाने को सदा तैयार हैं।

नाव बंधी पड़ी है किनारे से। कब तक इस नाव को किनारे पर ही बांधे रखिएगा? कब तक? कब तक इस दीवाल को बनाए रखना है? इस प्रश्न के साथ ही मैं अपनी बात पूरी करता हूं।
मेरी बातें इन चार दिनों में इतने प्रेम और शांति से सुनीं, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म साधना के सूत्र
सातवां प्रवचन

प्राणों की प्यास

शायद हम जीवन के बरामदे में ही जी लेते हैं और जीवन का भवन अपरिचित ही
रह जाता है। हम अपने से बाहर ही जी लेते हैं, मंदिर में प्रवेश ही नहीं हो पाता है। मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा आश्चर्य शायद यही है कि वह अपने से ही अपरिचित, अनजान, अजनबी जी लेता है। शायद सबसे कठिन ज्ञान भी वही है। और सब कुछ जान लेना बहुत सरल है। एक अपने को ही जान लेना बहुत कठिन पड़ जाता है। होना तो चाहिए सबसे ज्यादा सरल, अपने को जानना सबसे सुगम होना चाहिए। लेकिन सबसे कठिन हो जाता है।
कारण हैं कुछ। सबसे बड़ा कारण तो यही है कि हम यह मान कर ही चल पड़ते हैं
कि जैसे हम स्वयं को जानते हैं। और जैसे कोई बीमार समझ ले कि स्वस्थ है, ऐसे ही हम अज्ञानी समझ लेते हैं कि ज्ञानी हैं। अपने को जानते ही हैं, इस भ्रांति से जीवन में अज्ञान के टूटने की संभावना ही समाप्त हो जाती है। सिर्फ वही आदमी अपने को जानने को निकलेगा, जो कम से कम इतना जानता हो कि मैं अपने को नहीं जानता हूं। परमात्मा की खोज तो बहुत दूर है। जिन्होंने अपनी ही खोज नहीं की, वे परमात्मा को कैसे खोज सकेंगे? और अगर परमात्मा के द्वार पर भूले-भटके पहुंच भी गए और उसने पुछवा भेजा कि आप कौन हैं जो आए हैं? तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। शायद दरवाजे से भागना ही पड़ेगा। क्योंकि अपना भी जो परिचय न बता सके, वह परमात्मा से परिचय पाने का अधिकारी नहीं हो सकता है। और हम सब अपने को बिना जाने परमात्मा को खोजने निकल पड़ते हैं।
इस खोज से न मालूम कितनी नासमझियां पैदा होती हैं। जब कि जो अपने को खोजने जाए, उसे परमात्मा को खोजने जाना ही नहीं पड़ता है। क्योंकि जैसे ही वह अपने को जानता है, परमात्मा को भी जान लेता है। बूंद को कोई जान ले तो सागर को जानने में कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। एक छोटी सी बूंद में सागर का सारा प्राण समाया हुआ है। एक छोटी सी बूंद में सागर का सब कुछ समाया हुआ है। एक बूंद जिसने जान ली, उसने सागर को भी जान लिया। और जो बूंद को बिना जाने सागर को खोजने निकला है, उस पागल के लिए क्या कहा जा सकता है? जो बूंद को भी नहीं जान सका, वह सागर को जानने की आकांक्षा करता हो, तो वह आकांक्षा असफलता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं ला सकती है।
परमात्मा को हम नहीं खोज पाते हैं, क्योंकि हम अपने को ही नहीं खोज पाते हैं। अपने को क्यों नहीं खोज पाते हैं? अपने को खोजने की प्यास भी क्यों पैदा नहीं हो पाती है?
कल मैंने कुछ बात शुरू की थी। वह आपको फिर से कहूं, वह जरूरी है आपसे
कह देना। अपने को खोजने की या परमात्मा को खोजने की प्यास भी पैदा नहीं हो पाती, क्योंकि आदमी अनुभव से कुछ भी नहीं सीखता है।
साधारणतः हम समझते हैं कि अनुभव से हम सीखते हैं। भ्रांति है वह। बच्चे जितने अज्ञानी होते हैं, बूढ़े उनसे कम अज्ञानी नहीं मरते। मां के पेट से पैदा हुआ बच्चा और कब्र में जाता हुआ बूढ़ा, जो जानते हैं, कहेंगे, बराबर एक से ही अज्ञानी होते हैं।
नहीं लेकिन, बूढ़ा बहुत सी बातें जानता है। बच्चा बहुत सी बातें नहीं जानता। उस जानकारी, उस इनफर्मेशन के बाबत नहीं कह रहा हूं। बच्चा भी अपने को नहीं जानता, बूढ़ा भी अपने को नहीं जानता। और बाकी सब जान लेते हैं हम, बस वह एक सूत्र अनजाना रह जाता है। इसलिए कहता हूं कि अनुभव से आदमी कुछ भी सीखता हुआ मालूम नहीं पड़ता है।
कल मैं एक छोटी सी कहानी कह रहा था।
मैं कह रहा था, एक आदमी के घर में एक चोर घुस गया। उसकी पत्नी ने उस आदमी को कहा है, मालूम होता है कोई चोर है। तो उस आदमी ने उठ कर उस कोठरी में जाकर पूछा, कौन है? उस चोर ने कहा, कोई भी नहीं! नोबडी, सर! वह आदमी वापस आकर सो गया। जब कोई भी नहीं है तो व्यर्थ परेशान होने की कोई जरूरत ही नहीं।

उस रात चोरी हो गई। सुबह उसकी पत्नी ने कहा, नासमझ हो तुम! रात मैंने कहा था चोर मालूम होता है। तुमने लौट कर कहा, कोई भी नहीं है।
उस आदमी ने कहा, कैसी बातें करती हो? मैं वहां गया, मैंने पूछा भी, अपने कानों से सुना भी कि कोई भी नहीं है। तभी मैं आकर सोया।
ऐसे घर में चोर दुबारा घुसे तो बहुत आश्चर्य तो नहीं है! पंद्रह-बीस दिन बाद चोर वापस आ गया।
इस बार पुरानी भूल नहीं करनी थी। लेकिन जब हम पुरानी भूल भी नहीं करते, तो नये ढंग से सिर्फ पुरानी भूल ही करते हैं, सिर्फ ढंग बदल जाता है। आदमी अनुभव से कुछ सीखता मालूम नहीं पड़ता है। उसने जाकर चोर को सीधा पकड़ लिया और कहा कि अब मैं पुरानी भूल न करूंगा कि तुमसे पूछूं कि कौन हो? क्योंकि पिछली बार तुमने बड़ा धोखा दिया कि कहा कि कोई भी नहीं है। चोर को पकड़ कर वह पुलिस थाने की तरफ ले चला। आधे रास्ते पर चोर ने आकर कहा, माफ करना, मेरे जूते तो मैं आपके घर ही भूल आया हूं। उस आदमी ने कहा कि जाओ, जूते लेकर आओ। मैं यहीं रुका हुआ हूं। अब मैं दुबारा इतना पीछे जाने की परेशानी नहीं उठाऊंगा।
वह आदमी गया। स्वभावतः वह कभी नहीं लौटा। मालिक घर आ गया और उसने कहा
कि वह चोर धोखा दे गया।
फिर कुछ दिन बाद वह चोर उस घर में घुसा। मालिक ने उसे पकड़ लिया और कहा
कि ठीक से अपनी सब चीजें सम्हाल लो। ऐसा न हो कि बीच रास्ते पर कहो कि मुझे घर जाना है। पिछली बार बहुत धोखा हो गया। उस चोर ने कहा, जहां तक ख्याल पड़ता है सब चीजें मेरे साथ हैं, बेफिक्र चलें। आधे रास्ते पर उसने कहा, लेकिन माफ करिए, बड़ी भूल हो गई, कंबल तो मैं सच में ही आपके घर भूल आया हूं। उस आदमी ने कहा कि फिर वही बात? अब तुम मुझे धोखा न दे सकोगे। अब तुम यहीं रुको, मैं तुम्हारा कंबल लेने जाता हूं।
यह आदमी हमें हंसने योग्य मालूम पड़ता है। लेकिन यह आदमी हम सबके भीतर बैठा है। हम पूरी जिंदगी वही भूलें नये-नये ढंग से दोहराते हैं। वही भूलें! नई भूल भी कोई आदमी करे तो बड़ा कीमती आदमी है। भूल भी हम पुरानी ही करते हैं, सिर्फ नये ढंग हो जाते हैं।
कल भी आपने क्रोध किया था, परसों भी क्रोध किया था, उसके पहले भी किया था, पिछले जन्म में भी किया था, उसके पहले जन्म में भी किया होगा। और हर बार कसम भी खाई है कि अब क्रोध न करेंगे। और आज भी आप करेंगे और कल भी आप करेंगे, लेकिन कभी अपने पर हंसेंगे नहीं। हर बार, हर इच्छा के पीछे दौड़ कर देखा है। और हर बार जब भी कोई इच्छा पूरी हो गई है, तभी पाया कि कुछ भी नहीं मिला है। लेकिन फिर आज आप इच्छा के पीछे दौड़ रहे हैं। कल भी आप दौड़ेंगे, कल भी आप दौड़े थे। आदमी हर बार वही भूल करता है, सिर्फ ढंग बदल जाते हैं। कल मकान चाहा था, आज कार चाहेंगे, कल कुछ और चाहेंगे। और हर बार जब चाह पूरी हुई तो पाया कि हाथ में कुछ भी नहीं आया। लेकिन आदमी भूल वही किए चला जा रहा है। हां, नाम बदल लेता है।
मैं अभी एक गांव में गया था, तो डाक्टर के घर ठहरा था। बहुत मच्छर थे। मैंने कहा, तुम्हारे गांव में डीड़ी.टी. का प्रयोग नहीं होता? तो उस डाक्टर ने कहा, होता है, लेकिन मच्छर अनुभव से सीख गए, इम्यून हो गए। अब वह डीड़ी.टी. पड़ता है तो उन पर असर ही नहीं होता! तो मैंने कहा, मालूम होता है तुम्हारे गांव के मच्छर तुम्हारे गांव के आदमियों से ज्यादा समझदार हैं। तो मैंने कहा, तुम ऐसा करो, डीड़ी.टी. का नाम बदल दो, तो शायद मच्छर धोखे में आ जाएं। लेकिन उस आदमी ने, उस डाक्टर ने कहा कि मच्छर धोखे में नहीं आएंगे, क्योंकि मच्छर बेपढ़े-लिखे हैं। पढ़े-लिखे होते तो धोखे में भी आ सकते थे। वे समझ ही न पाएंगे कि नाम बदल गया है।
आदमी नाम बदल लेता है चीजों के और अपने को धोखा दिए चला जाता है। रोज वही करता है, सिर्फ नाम बदल लेता है। कभी धन खोजता है, कभी यश खोजता है, कभी पद खोजता है। नाम बदल लेता है। हर हालत में अहंकार खोजता है--पद में भी, धन में भी, यश में भी। खोजता अहंकार है, लेकिन नाम बदल देता है। नाम बदल कर खुद को धोखा दे लेता है। आज जो भूल करता है, कल भी वही करता है, नाम बदल लेता है। जिंदगी भर हम वही दोहराए चले जाते हैं यंत्र की भांति। रिपीटीशन है हमारी जिंदगी, एक पुनरुक्ति है, घूमते रहते हैं कोल्हू के बैल की तरह।

लेकिन एक बात कभी हमारे ख्याल में नहीं आती कि यह सारी जिंदगी इस तरह जीकर हमें मिला क्या है? यह सवाल कभी उठाते भी नहीं हम। शायद डरते हैं, क्योंकि यह सवाल हमें मुश्किल में डाल सकता है।
इस सारी जिंदगी में दौड़ कर हमें मिला क्या है? हमने पाया क्या है? हमारे हाथ में क्या है? सारी संपत्ति पाकर कौन सी संपत्ति मिल गई है? और सारा यश पाकर कौन सा यश मिल गया है? और बड़े से बड़े पद पाकर आदमी को मिल क्या गया है? ये सवाल जो आदमी उठा लेगा, उसकी जिंदगी में धर्म ज्यादा दूर नहीं रहेगा। वह बहुत करीब-करीब धर्म के पास पहुंचने लगेगा। लेकिन यह सवाल भी नहीं उठाते।
एक मित्र ने पूछा है कि क्या प्रभु की प्यास पैदा की जा सकती है?
पैदा की जा सकती है। लेकिन जरूरी सवाल उठाने होंगे। सबसे जरूरी सवाल
यह है कि जिसे हम जिंदगी कहते हैं, वह जिंदगी है? जिसे हमने आज तक जीया है, वह जीने योग्य है? अगर आपको दुबारा कोई मौका दे--कि हम फिर से आपको मौका देते हैं, आप उसी जिंदगी को फिर से जी सकते हैं जिसको आप पचास साल जीए--क्या आप उस जिंदगी को फिर से जीने को राजी होंगे? मैं नहीं समझता कि एक भी आदमी राजी हो जाए। उसी जिंदगी को जिसे आप जीए हैं, अगर दुबारा आपको मौका दे दिया जाए कि फिर यह कहानी वापस दोहरती है--कि आप पैदा होंगे, वही सब करेंगे जो किया है पचास साल, साठ साल तक, चलेंगे, सब वैसा ही दौड़ेगा--तो क्या आप इसे दोहराने को राजी होंगे? आदमी दुबारा उसी फिल्म को देखने को राजी नहीं होता, उसी जिंदगी को दुबारा दोहराने को कोई आदमी राजी नहीं हो सकता है। लेकिन अगर जिंदगी में कुछ था तब तो दोहराने को हजार बार राजी हो जाना चाहिए। लेकिन जिंदगी में कुछ है ही नहीं। पर यह हम सवाल नहीं उठाते। और जब तक हम यह सवाल न उठाएं और जब तक हमारी जिंदगी हमें व्यर्थ न मालूम पड़ने लगे, फ्यूटाइल न मालूम पड़ने लगे, मीनिंगलेस न मालूम पड़ने लगे, अर्थहीन न मालूम पड़ने लगे--जब तक हमें हमारी जिंदगी राख की तरह मुट्ठी में दिखाई न पड़ने लगे--तब तक हम परमात्मा की खोज पर नहीं जा सकते हैं। परमात्मा की खोज पर वे ही जाते हैं जिन्हें यह जीवन एकदम व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है। तब वे नये जीवन की सार्थकता को खोजने को अग्रसर होते हैं।
लेकिन हम अगर परमात्मा की बात भी करते हैं तो इसी जीवन के साज-सिंगार
के लिए करते हैं। किसी को मकान चाहिए तो परमात्मा से प्रार्थना करता है। किसी को नौकरी चाहिए तो परमात्मा से प्रार्थना करता है। किसी को बच्चा नहीं है तो परमात्मा से प्रार्थना करता है। कोई बीमार है तो परमात्मा से प्रार्थना करता है। हम परमात्मा का भी उपयोग इसी जिंदगी की सजावट के लिए करना चाहते हैं। इसलिए हमारी सब प्रार्थनाएं अनसुनी हो जाती हैं। इसलिए नहीं कि परमात्मा नहीं सुनता, बल्कि इसलिए कि हमारी प्रार्थनाएं प्रार्थनाएं ही नहीं हैं, सिर्फ मांगें हैं, सिर्फ डिमांड्स हैं, सिर्फ इच्छाएं हैं, सिर्फ आकांक्षाएं हैं। और उसी व्यर्थ जिंदगी के लिए सारी आकांक्षाएं हैं, जिस व्यर्थ जिंदगी को व्यर्थ समझ कर ही कोई ऊपर उठ सकता है।
अगर आपके हाथ में कंकड़-पत्थर भरे हों और हीरे-जवाहरात खोजने हों, तो आपको कंकड़-पत्थर से हाथ खाली कर लेने होंगे। लेकिन आप कंकड़-पत्थर को जोर से पकड़े रहे तो मैं कह सकूंगा कि आप हीरे न खोज पाएंगे। क्योंकि जो आदमी अभी कंकड़-पत्थरों को हीरे की भांति पकड़े है, वह हीरे पहचान भी नहीं पाएगा। जो कंकड़-पत्थर में हीरे देख रहा है, उसे हीरों में कंकड़-पत्थर दिखाई पड़ें तो बहुत आश्चर्य नहीं है।
जीवन, जिसे हमने जीया है, यह जिंदगी तो हमें याद है--और भी बहुत बार हम जीए हैं इसी जिंदगी को, वह हमें याद नहीं है--लेकिन जो हमें याद है उसको भी देखें तो बड़ी हैरानी होती है। हम क्यों जी रहे हैं? क्या आपकी जिंदगी में कभी यह सवाल, जोर से क्वेश्चन मार्क आपके सामने खड़ा हो गया है कि आप क्यों जी रहे हैं? इसी जिंदगी को आप क्यों खींच रहे हैं? कल इससे कुछ नहीं मिला, आज नहीं मिला, कल क्या मिल जाएगा?
जिस दिन यह प्रश्न आपके सामने गहरा होकर खड़ा हो जाता है, उसी दिन आपकी आंखें किसी और जिंदगी की खोज में भटकने लगती हैं। वही प्यास बननी शुरू हो जाती है। वही है प्यास। प्यास पैदा की जा सकती है।

दूसरी तरफ से भी सोचेंः हम जिंदगी भर चाहते क्या हैं? चाहते हैं आनंद। मिलता है कभी? मिलता कभी भी नहीं। चाहते हैं शांति। मिलती है कभी? मिलती कभी भी नहीं। बल्कि जितनी शांति चाहते हैं उतनी अशांति सघन होती चली जाती है। और जितना आनंद खोजते हैं जिंदगी में उतना तनाव, उतनी चिंता बढ़ती चली जाती है। पूरी जिंदगी दुख का एक ढेर हो जाती है। और उस दुख पर हम ढेर पर ढेर बढ़ाते चले जाते हैं।
खोजते हैं आनंद, मिलता है दुख। जरूर हमारी खोज में कहीं कोई बुनियादी भूल है। और साधारण भूल नहीं, असाधारण भूल होनी चाहिए। क्योंकि जाते हैं आकाश की तरफ, पहुंच जाते हैं पाताल। जाते हैं स्वर्ग की तरफ, पहुंच जाते हैं नरक। खोजते हैं आनंद, मिल जाता है दुख। जलाते हैं दीये, जलता है अंधेरा। यह जो पूरी की पूरी जिंदगी है, बड़ी कंट्राडिक्ट्री मालूम पड़ती है। आदमी जो खोजता है वही नहीं मिलता है!
सिकंदर हिंदुस्तान आ रहा था। रास्ते में एक फकीर डायोजनीज से उसकी कुछ बात हो गई। डायोजनीज उस जमाने में यूनान का सबसे आनंदित आदमी था। और कहना चाहिए कि सिकंदर उस जमाने में सबसे ज्यादा दुखी आदमी था। होगा ही। हम सब छोटे-मोटे सिकंदर हैं। सब यात्राओं पर निकले हैं--जीत, विक्ट्री। कोई धन जीतने, कोई पद जीतने, कोई दिल्ली जीतने। यात्राओं पर हैं लोग।
सिकंदर बहुत दुखी रहा होगा, क्योंकि पूरी दुनिया को जीतने निकला था। असल में, जो दुखी नहीं है वह किसी को जीतने ही नहीं निकलेगा। जो आनंदित है वह जीत गया! अब वह किसको जीतने जाएगा? जो आनंदित है उसने अपने को जीत लिया, अब किसी और को जीतने की कोई जरूरत न रही। असल में, जो अपने को नहीं जीत पाया, जो अपने को नहीं जीत पाता, वह इस कमी को पूरा करने के लिए दूसरों को जीतने निकल पड़ता है। जो अपने भीतर बहुत इनफीरियर कांप्लेक्स, बहुत हीनता से भरे होते हैं, वे दूसरों को दबा कर अपनी हीनता को पूरा करने निकल पड़ते हैं।
यह बड़े मजे की बात है और बड़ी गहरी भी। जो बहुत दीन होते हैं वे धन खोजने निकलते हैं; जो बहुत हीन होते हैं वे पद खोजने निकलते हैं; जो बहुत हारे हुए होते हैं वे जीतने निकलते हैं; जिनके पास कुछ नहीं होता वे सब मांगने निकल पड़ते हैं। स्वभावतः, सिकंदर सबसे दुखी आदमी रहा होगा, सारी दुनिया को जीतने निकला था! और रास्ते में किसी ने सिकंदर से कहा कि डायोजनीज से मिलते चले जाओ, क्योंकि डायोजनीज जैसा आनंदित आदमी नहीं। सिकंदर ने कहा, आनंद तो मैं भी खोजता हूं। तो मिल लेता हूं। लेकिन सिकंदर ने कहा कि जाओ, डायोजनीज को कहो कि मुझसे मिलने आए। तो जो खबर लाए थे उन्होंने कहा, डायोजनीज नहीं आएगा, क्योंकि डायोजनीज को पाने के लिए कुछ नहीं बचा कि वह कहीं आए। आपको जाना हो तो जा सकते हैं।
सिकंदर गया। डायोजनीज रेत पर लेटा था। सुबह की धूप निकली थी, वह आनंद
से लेटा हुआ था। नग्न था। सिकंदर उसके पास खड़ा हो गया और सिकंदर ने कहा कि इतने आनंदित मालूम पड़ते हो! कैसे पाया यह आनंद?
तो डायोजनीज ने कहा, जब से बाहर खोजना बंद किया, तब से ही।
सिकंदर ने कहा, खोजना तो मैं भी चाहता हूं।
डायोजनीज ने कहा, खोज न पाओगे। क्योंकि जब भी खोजोगे बाहर खोजोगे, दूसरे में खोजोगे, कहीं और खोजोगे--समव्हेयर एल्स। वहां कभी न देखोगे जहां है।
सिकंदर ने कहा, अभी तो मैं दुनिया जीतने निकला हूं।
तो डायोजनीज ने कहा, जब दुनिया को जीत लो और समय बचे तो अपने को भी जीत लेना। नहीं तो भिखारी ही मर जाओगे।
डायोजनीज से सिकंदर विदा लेने लगा तो उसने कहा कि तुम्हारी बातें बड़ी आकर्षित करती हैं। तुम्हारा आनंद देख कर मन लालच से भरता है। चाहता तो मैं भी यह हूं! जब सारी दुनिया जीत लूंगा तो मैं भी विश्राम करूंगा।
तो डायोजनीज ने कहा, नाहक के उपक्रम में न गिरो। मैं अभी विश्राम कर रहा हूं बिना दुनिया को जीते! तुम भी आ जाओ, इस नदी के तट पर बहुत जगह है। हम दोनों ही विश्राम कर सकते हैं। इतना परेशान होकर आखिर विश्राम ही करना है तो अभी ही विश्राम करो, इतनी दौड़ क्यों लगाते हो?

सिकंदर ने कहा, बात तो समझ में आती है। लेकिन अभी तो निकल पड़ा यात्रा पर, बीच से कैसे लौट सकता हूं!
तो डायोजनीज ने कहा, एक बात याद रखनाः आज तक दुनिया में यात्रा पूरी करके कौन लौटा है? सदा बीच से ही लौट जाना पड़ता है। मौत लौटा लेगी तब तुम कैसे कहोगे कि बीच से मत लौटाओ!
और कहानी बड़ी अदभुत है, सिकंदर मरा तो लौट नहीं पाया अपने देश तक। हिंदुस्तान से लौटते वक्त बीच में ही मर गया। और भी मजेदार संयोग की बात है कि जिस दिन सिकंदर मरा, उसी दिन डायोजनीज भी मरा। और कहते हैं... अब यह कहानी तो पीछे प्रचलित हो गई, लेकिन मीठी है, सच न भी हो, तो भी सच है... कि वैतरणी पार करते वक्त दोनों की मुलाकात फिर हो गई। सिकंदर आगे था, थोड़ी देर पहले मरा था। डायोजनीज पीछे था, थोड़ी देर बाद मरा था। डायोजनीज खिलखिला कर हंसने लगा, तो सिकंदर ने लौट कर देखा। आज बड़ी मुश्किल हो गई, क्योंकि डायोजनीज उस दिन भी नंगा था, आज भी नंगा है। और सिकंदर उस दिन सम्राट के वस्त्रों में था, लेकिन आज नंगा है। वह बड़ा सकुचाने लगा। डायोजनीज ने कहा, सकुचाओ मत, क्योंकि हम पहले ही जानते थे कि हर आदमी कपड़ों के भीतर नंगा है। सकुचावे की बात नहीं है। और इसीलिए हम पहले ही नंगे हो गए थे। इसके पहले कि कोई और वस्त्र छीने, हमने खुद ही फेंक दिए थे। मौत को हमसे छीनने के लिए कुछ भी न बचा, मौत खाली हाथ लौटी। तुमसे बहुत छीन कर लौटी। इसलिए हम आनंद से भरे आ रहे हैं और तुम रोते हुए चले आ रहे हो। सिकंदर ने अपने मन को समझाने के लिए जोर से हंसा, कोशिश की झूठी हंसने की। और हंस कर यह कहा कि खुशी हुई मिल कर। और कैसा आश्चर्य कि एक बार हम पहले भी मिले थे और आज वैतरणी पर फिर मिल गए! और इस वैतरणी पर ऐसा कभी-कभी होता होगा कि एक सम्राट और एक भिखारी की मुलाकात हो जाती हो!
डायोजनीज फिर हंसने लगा। उसने कहा, तुम बात बिल्कुल ठीक कहते हो, लेकिन समझने में जरा भूल करते हो कि कौन सम्राट है और कौन भिखारी। सम्राट पीछे है, भिखारी आगे है। क्योंकि तुम सब खोकर लौट रहे हो, मैं सब पाकर लौट रहा हूं।
जिस जीवन में यह सवाल न उठे कि जो मैंने पाया है वह पाया है या खोया है? जिसे मैं उपलब्धि समझ रहा हूं वह उपलब्धि है या गंवाना है? जिसे मैं सफलता समझ रहा हूं वह सफलता है या असफलता का नाम है? जिसे मैं जीत समझ रहा हूं वह जीत है या हार है? जिसे मैं ज्ञान समझ रहा हूं वह ज्ञान है या सिर्फ अज्ञान को ढांक लेना है? जिस जिंदगी में यह सवाल न उठे वह जिंदगी धार्मिक नहीं हो पाती है। और हम क्या करते हैं कि हम धर्म को भी इसी जिंदगी का हिस्सा बना लेते हैं।
धर्म दूसरी जिंदगी है। धर्म इस जिंदगी के ऊपर, इस जिंदगी की व्यर्थता
के ऊपर, इस जिंदगी की राख के ऊपर खिला हुआ बिल्कुल ही दूसरा फूल है। लेकिन वह उन्हीं के लिए खिल सकता है जिनके लिए यह सच्चाई साफ हो जाए कि अभी तक हम राख बटोरने में, बच्चों की तरह नदी के किनारे पर कंकड़-पत्थर बीनने में बिता दिए हैं।
अनुभव से आदमी नहीं सीखता, इसलिए मैंने कहा। अनुभव तो हम सबको होते हैं व्यर्थता के, रोज होते हैं, लेकिन सीख नहीं पैदा हो पाती। अनुभव सबके पास है, ज्ञान नहीं हो पाता। अनुभव से जो सीख लेता है उसके जीवन में ज्ञान शुरू हो जाता है। जो सिर्फ अनुभव को दोहराए चला जाता है उसके जीवन में ज्ञान शुरू नहीं होता।
इसलिए यह सूत्र ख्याल रख लेंः अनुभव ज्ञान नहीं है, अनुभव से सीख लेने
का नाम ज्ञान है। एक्सपीरिएंस इटसेल्फ इ.ज नॉट नालेज। अनुभव स्वयं ज्ञान नहीं है। बट टु लर्न फ्रॉम एक्सपीरिएंस। अनुभव से भी सीख लेना ज्ञान है। ज्ञान अनुभवों का निचोड़ है। जैसे इत्र होता है फूलों से निचोड़ा हुआ, ऐसे समस्त अनुभव से जो निचोड़ लिया जाता है--इसेंस--वह ज्ञान है। अनुभव सबके पास है, ज्ञान बहुत कम लोगों के पास है। क्योंकि ज्ञान, हम अनुभव से सीखते ही नहीं, तो ज्ञान कैसे पैदा होगा?
थोड़ी दो-चार घटनाएं आपसे कहूं तो ख्याल आ सके कि आदमी अनुभव से कैसे सीखता है।

सुना है मैंने, एक सूफी फकीर हसन एक गांव में प्रवेश हुआ। आधी रात, धर्मशालाएं बंद, जगह-जगह खोजा, गरीब फकीर, फटे हुए कपड़े, कोई जगह नहीं। एक अंधेरी गली से गुजरते वक्त एक चोर ने कहा कि सुनिए, दो-तीन बार आपको भटकते देख चुका। मालूम होता है ठहरने की कोई जगह नहीं मिलती। मेरे घर आ जाएं। लेकिन आप फकीर हैं, आपसे सच कह दूं, मैं एक चोर हूं जो अपने काम के लिए निकला हूं। आपको घर छोड़ आता हूं, मेरे घर रुक जाएं।
हसन का मन एक बार दहशत से भरा--कि चोर के घर में साधु ठहरे या नहीं? अक्सर ऐसा होता है, साधु चोर से भी कमजोर मालूम होता है। चोर नहीं डरता साधु को घर में ठहराने से। साधु डर रहा है चोर के घर में ठहरने से। हसन को भी ख्याल आ गया कि यह तो बड़ी कमजोरी की बात है। डरना चाहिए चोर को--कि एक साधु को घर में ठहराऊं? डर रहा हूं मैं!
तो उसने कहा कि नहीं, चलूंगा।
फिर वह चोर बड़ा ईमानदार मालूम पड़ा। रास्ते में हसन ने सोचाः ऐसा चोर
तो कभी देखा नहीं, जिसने कहा हो कि पहले बता दूं कि मैं चोर हूं। इतनी हिम्मत तो मेरी भी नहीं। चोरी तो कई बार मैंने भी की है। हजार तरह की चोरियां हैं। कभी किसी से आंख बचा कर निकल गए तो भी चोरी हो जाती है। चोरी में कोई हिसाब नहीं है। चोर के घर पहुंच कर हसन ने पहले उसके पैर छुए। तो उस चोर ने कहा, आप यह क्या कर रहे हैं?
कहा कि मैं इसलिए पैर छूता हूं कि चोरियां तो मैंने भी की हैं, लेकिन इतना साधु अभी नहीं हो पाया कि चोरी स्वीकार कर लूं।
हसन अनुभव से सीखा। फिर सो गया। सुबह करीब चोर आया तो हसन ने पूछा, कुछ मिला?
चोर ने कहा, आज तो नहीं। लेकिन बड़ा खुश था। मेहनत पूरी की, लेकिन आज मिला नहीं, कल फिर कोशिश करेंगे।
दूसरी रात भी यही हुआ कि चोर लौटा, तो हसन ने पूछा, कुछ लाए?
तो उसने कहा कि आज भी नहीं मिला। मेहनत पूरी की, कल फिर कोशिश करेंगे।
एक महीने हसन उस चोर के घर था। हर रात यही हुआ कि चोर खाली हाथ लौटा, लेकिन हंसता लौटा और कहा, कल फिर कोशिश करेंगे। फिर महीने भर बाद हसन चला गया।
मरते वक्त हसन से किसी ने पूछा कि तुमने किन-किन गुरुओं से ज्ञान लिया? तो उसने कहा कि बहुतों से लिया। लेकिन परमात्मा, अगर एक चोर के घर में न ठहरता तो शायद न मिल पाता। उन्होंने कहा, मतलब? तो उसने कहा, जब मैं परमात्मा को खोजता था, आज खोजता था, नहीं मिलता था तो रोने लगता था, तब मुझे उस चोर की याद आती थी कि वह चोरी करने गया और हंसता हुआ लौटा, खाली हाथ। और मैं तो परमात्मा की चोरी करने निकला हूं, इतनी बड़ी चोरी! और अगर एक दिन में पूरी नहीं हुई तो इतना रोना क्या? तो मैं हंसने लगता था। हर रोज यही होता था कि खाली हाथ लौट आता था परमात्मा से। लेकिन वह चोर सामने खड़ा हो जाता-- उसकी तस्वीर--और वह कहता, कल फिर कोशिश करेंगे। आखिर एक दिन मैंने परमात्मा को पा लिया, तो मैंने परमात्मा को पहले धन्यवाद नहीं दिया, पहले धन्यवाद उस चोर को दिया। अगर उसके घर न रुका होता।
आप चोर के घर रुकते तो इस अनुभव से कुछ सीख पाते? मुश्किल था। पहले तो रुकते ही नहीं। फिर रुकते भी तो शायद चोर हो जाते। चोर भी न हो पाते तो भी चोर से कुछ सीख न पाते। वह अनुभव ज्ञान नहीं बन सकता था।
लाओत्से ने लिखा है कि एक वृक्ष के नीचे से गुजरता था। बहुत बार सुना
था कि जो परमात्मा के चरणों में समर्पण कर दे वही पा सकता है। सब कोशिश की, समर्पण नहीं हो सका।
कोशिश से कहीं समर्पण हो सकता है? उलटी बात है। वैसे ही जैसे कोई कोशिश से नींद लाने की कोशिश करे। रात नींद न आती हो, और कोई कोशिश करे सो जाने की। तो एक बात पक्की है कि जब तक कोशिश चलेगी, तब तक नींद नहीं आएगी। कोशिश और नींद उलटी चीजें हैं। असल में, नींद तभी आएगी जब आप थक जाएंगे और कोशिश भी बंद कर देंगे, तभी नींद आएगी, अन्यथा नींद नहीं आएगी। समर्पण कोशिश से नहीं आता। कोई कितना ही परमात्मा के चरणों में सिर रखे। कोशिश से नहीं आता। जब कोशिश भी व्यर्थ हो जाती है और आदमी इतना असहाय हो जाता है कि

वह कहता है, कोशिश भी क्या करूं? कैसे करूं? कोशिश भी तो नहीं हो सकती! तब समर्पण हो जाता है।
तो लाओत्से थक गया खोजते-खोजते। रुका है एक झाड़ के नीचे। पतझड़ का मौसम है। पत्ते ऊपर से गिर रहे हैं सूखे, हवाओं में उड़ रहे हैं। और लाओत्से भी उठा और पत्तों के साथ दौड़ने लगा। हवा पूरब की तरफ जा रही थी तो पूरब की तरफ दौड़ा, हवा पश्चिम की तरफ जा रही थी तो पश्चिम की तरफ दौड़ा। उसके शिष्यों ने कहा, आप पागल तो नहीं हो गए?
तो उसने कहा, अब तक मैं पागल था! अब मैं एक सूखे पत्ते की तरह हो गया हूं। एक सूखे पत्ते को मैंने वृक्ष से गिरते देखा। उसकी गिरने की कहीं भी कोई आकांक्षा न थी। हवा पूरब ले जाती तो वह पूरब चला जाता, हवा पश्चिम ले जाती तो वह पश्चिम चला जाता। हवा ऊपर उठा देती तो वह ऊपर उठ जाता, हवा नीचे गिरा देती तो वह नीचे गिर जाता। तब मैंने कहा, एक सूखा पत्ता भी समर्पण कर सकता है और मैं समर्पण नहीं कर पा रहा हूं! मेरी कोशिश ही बाधा बन रही है। मैंने कोशिश छोड़ दी। समर्पण उपलब्ध हो गया।
लाओत्से से जब भी कोई पूछता, तो वह कहता कि जाओ, पतझड़ में वृक्षों के नीचे बैठ जाओ। सूखे पत्तों से सीखो।
लोग जाते, लेकिन सूखे पत्तों से बिना कुछ सीखे वापस लौट आते। वे कहते, सूखे पत्तों में क्या रखा हुआ है!
लाओत्से का अनुभव ज्ञान बन गया। वे जो दूसरे लोग बैठते तो सूखे पत्तों को गिरता देख कर वापस लौट आते।
मैंने सुना है कि बंगाल में एक साधु हुआ। राजाबाबू उसका नाम था। वह बंगाल की हाईकोर्ट का जज था। वह रिटायर हो गया। अपने घर से सुबह निकला छड़ी लेकर घूमने। कोई पैंसठ साल की उम्र होगी। कोई स्त्री अपने घर के भीतर, द्वार-दरवाजे बंद, अपने बेटे को या अपने देवर को या किसी को उठाती होगी और भीतर कहती होगी--राजाबाबू उठो! सुबह हो गई। बहुत देर हुई जा रही है। कब तक सोए रहोगे? सारा जगत जाग गया!
वह अपने किसी को भीतर कह रही थी। उसे पता भी नहीं कि बाहर एक और राजाबाबू अपनी छड़ी लेकर घूमने निकले हैं। वह छड़ी वहीं रुक गई! वे राजाबाबू वहीं ठहर गए! वे शब्द उन्हें सुनाई पड़े कि भोर हो गई, सुबह हो गई। कब तक सोए रहोगे? जागने का समय आ गया! वे वहीं से वापस घर लौट आए। घर आकर उन्होंने दरवाजे पर जोर से कहा--कि राजाबाबू अब जागते हैं! सुबह हो गई, सूरज निकल आया, अब राजाबाबू ज्यादा न सोएंगे!
घर के लोगों ने कहा, पागल तो नहीं हो गए?
तो उन्होंने कहा, अब तक पागल था।
पर लोगों ने कहा, यह तुम्हें हो क्या गया?
उन्होंने कहा, एक घर के द्वार से निकलता था, भीतर से आवाज सुनाई पड़ी।
और वह छोटा सा अनुभव ज्ञान बन गया।
आप भी निकल सकते हैं उस घर के सामने से, आवाज आपको भी सुनाई पड़ सकती है यही, लेकिन ज्ञान नहीं बन जाएगी। अनुभव से जब हम सीखते हैं तब छोटा सा अनुभव बड़े से बड़ा ज्ञान बन जाता है। और जब हम अनुभव से नहीं सीखते तो बड़े से बड़ा अनुभव छोटे से छोटा ज्ञान भी नहीं बन पाता। जिंदगी बड़ा अनुभव है। अगर ठीक से समझें तो जिंदगी परमात्मा के ज्ञान के लिए दोहराया गया अनुभव है। लेकिन हम पूरी जिंदगी से ऐसे गुजर जाते हैं जिसका कोई हिसाब नहीं-- चिकने घड़े की तरह, जिस पर पानी गिरता रहता है और एक बूंद भी पानी घड़े में समा नहीं पाता। गुजर जाते हैं जिंदगी से--रिक्त, खाली।
धार्मिक प्यास जगती है एक-एक अनुभव को सजग रूप से अनुभव करने से। एक-
एक अनुभव को जाग कर देखने से। एक-एक अनुभव के निरीक्षण, ऑब्जर्वेशन से। एक-एक अनुभव में आंखें गड़ा कर देखने से। रोज अनुभव हैं, इन्हीं सब अनुभवों से दुनिया के वे सारे लोग गुजरे हैं जो परमात्मा को पाए हैं। इन्हीं से हम गुजर रहे हैं। अनुभवों में कोई फर्क नहीं। नानक के अनुभव में और आपके अनुभव में कोई फर्क नहीं। बुद्ध के अनुभव में, आपके अनुभव में कोई फर्क नहीं। जीसस के अनुभव में, आपके अनुभव में कोई फर्क नहीं। फर्क अनुभव में नहीं है, फर्क अनुभव से सीखने में शुरू होता है। इन्हीं अनुभवों से लोग परमात्मा को उपलब्ध हो गए हैं। इन्हीं अनुभवों से हम सिर्फ मरघट को

उपलब्ध होते हैं, और कहीं भी नहीं जा पाते। यही अनुभव, यह जिंदगी यही है। यही रुदन है, यही आंसू हैं! यही मुस्कुराहटें हैं, यही कांटे हैं, यही फूल हैं! यही झगड़े हैं, यही प्रेम है! यही धन, यही वैभव, यही आकांक्षाएं--यही सब, सबके लिए है। इसी में कोई अचानक...
बुद्ध निकले हैं अपने घर से। युवा हैं, रथ पर सवार हैं। एक महोत्सव हो रहा है गांव में। और एक बूढ़े आदमी को पहली दफा देखा। तो अपने सारथी से पूछा, इस आदमी को क्या हो गया है?
उस सारथी ने कहा, मत पूछें आप। क्योंकि आपके पिता की आज्ञा नहीं है कि बूढ़े आपको दिखाई पड़ें। यह बूढ़ा कैसे आ गया रास्ते पर, यही हैरानी है! क्योंकि बुद्ध जहां से निकलते, उनके पिता वृद्ध लोगों को रास्तों से अलग करवा देते। बुद्ध के बगीचे में फूल को कुम्हलाने न देते। कुम्हलाने के पहले रात में फूल अलग कर दिए जाते। बुद्ध को पता ही न चले कि जिंदगी में बुढ़ापा भी है।
यह बूढ़ा कैसे आ गया? उस सारथी ने कहा, लेकिन अब आप पूछते हैं तो इनकार
भी नहीं कर सकता। यह आदमी बूढ़ा हो गया है।
बुद्ध ने कहा, क्या मतलब? क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा?
आपने न पूछा होता यह सवाल। हम रोज बूढ़े देखते हैं, लेकिन हमने कभी यह नहीं पूछा कि क्या मैं बूढ़ा हो जाऊंगा? हम सोचते हैं, यह बेचारा बूढ़ा हो गया। तब अनुभव अनुभव रह गया, ज्ञान नहीं बना। बुद्ध ने तत्काल यह पूछा कि क्या मैं भी बूढ़ा हो जाऊंगा? यह ज्ञान बनाने की कीमिया का सूत्र है। अनुभव को तत्काल ज्ञान बनाना शुरू हो गया।
उस सारथी ने कहा, मैं कैसे कहूं? लेकिन झूठ भी नहीं बोल सकता। इस जमीन
पर जो भी आया है वह बूढ़ा होगा।
तो बुद्ध ने कहा, फिर मैं बूढ़ा हो ही गया। इससे क्या फर्क पड़ता है कि कितनी देर लगेगी! रथ वापस लौटा लो। युवक महोत्सव में, यूथ फेस्टिवल में जा रहे थे। तो बुद्ध ने कहा, अब यूथ फेस्टिवल में जाने की कोई जरूरत न रही। अब बूढ़ा हो गया तो जवानों के उत्सव में मेरा क्या प्रयोजन! वापस लौटा लो। सारथी ने कहा, कैसी आप बात करते हैं? अभी कैसे बूढ़े हो गए? अभी तो युवा हैं।
लेकिन बुद्ध ने कहा कि जब बूढ़ा होना ही पड़ेगा, तो वर्ष, दो वर्ष, दस वर्ष, बीस वर्ष, क्या फर्क पड़ता है! बात हो गई, अब मैं युवा नहीं रहा, वापस लौटा लो।
और लौटते में रास्ते पर एक अरथी मिली। और बुद्ध ने पूछा, यह क्या हुआ?
तो सारथी ने कहा, आप मत पूछें ऐसे सवाल। मुझे मुश्किल में मत डालें। क्योंकि मैं आपके पिता को क्या जवाब दूंगा? यह आदमी मर गया।
तो बुद्ध ने पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा?
उस सारथी की तकलीफ तुम समझ सकते हो। उसने कहा कि आप ऐसे बेकार सवाल मत पूछें। कोई नहीं पूछता। सच तो यह है कि यही सार्थक सवाल है। दूसरे आदमी की मौत का अनुभव भी बुद्ध ने ज्ञान में बदल लिया।
सारथी ने कहा, मरना तो पड़ेगा ही। जो भी जन्मता है वह मरता है। असल में जन्मता है जिस दिन उसी दिन मरना शुरू हो जाता है। ऐसा नहीं कि मरना कोई सत्तर साल बाद आता है। वह दिखाई पड़ता है सत्तर साल बाद। जन्म के क्षण से ही मरना शुरू हो जाता है। जिसको हम जिंदगी कहते हैं वह ग्रेजुअल डेथ है, धीमे- धीमे मरने की लंबी प्रक्रिया है। एक क्षण बच्चा पैदा हुआ कि मरने के लिए पूरा कैपेबल है, मरने के लिए पूरा समर्थ हो गया। अब मरने में उसके पास कोई चीज की कमी नहीं है। अभी मर सकता है।
तो बुद्ध ने कहा, फिर बात ही खत्म हो गई, बात ही समाप्त हो गई। जब मरना
ही पड़ेगा तो मर ही गए, अब इस जिंदगी में कोई अर्थ न रहा। अब मैं उस जिंदगी की खोज पर निकलूंगा जो नहीं मरती है। मैं उस जिंदगी की खोज पर अब निकलूंगा जो अमर्त्य है।
लेकिन मृत्यु को जिसने कभी सवाल नहीं बनाया, वह अमृत की खोज पर कैसे निकलेगा? आप न मालूम कितने लोगों को मरघट पर पहुंचा आए होंगे, लेकिन कभी यह ख्याल मन में गहरे नहीं बैठता कि अब जल्दी ही लोग मुझे पहुंचाने की तैयारी कर रहे होंगे। मरघट सदा दूसरे के लिए मालूम होता है, मीन्ट फॉर दि

अदर, कभी अपने लिए नहीं। मौत सदा किसी और की होती है, कभी अपनी नहीं। तो फिर अनुभव ज्ञान नहीं बन पाता। और अनुभव ज्ञान न बन पाए तो जीवन धर्म नहीं बन पाता। अनुभव ज्ञान बने तो जीवन धर्म बन जाता है।
प्यास जग सकती है। एक-एक अनुभव को चारों तरफ से जांचना-परखना होगा। एक-एक अनुभव को पूरा का पूरा ज्ञान में रूपांतरित कर लेना होगा। और फिर जिंदगी पूरी प्यास बन जाएगी। और फिर तब तक हम चैन से न बैठ सकेंगे, जब तक परमात्मा का द्वार ही न खुल जाए। तब तक हम उसके दरवाजे को ठोकते ही रहेंगे। और एक बार प्यास जग जाए, तो परमात्मा को पाने के लिए दूसरी और कोई भी चीज अनिवार्य नहीं है। बाकी सब चीजें गैर-अनिवार्य हैं, अनिवार्य सिर्फ प्यास है। प्यास छोटी बात नहीं है। प्यास से बड़ी कोई बात ही नहीं है। प्यास जग सकती है। और जग जाए तो रोआं-रोआं तड़पने लगता है। फिर ऐसा नहीं होता कि परमात्मा जिंदगी के बहुत कामों में एक काम हो। नहीं, परमात्मा ही एक काम रह जाता है। जिंदगी के सब कामों में वही रह जाता है असली। फिर जिंदगी के सब काम माला के गुरियों की तरह हो जाते हैं और परमात्मा उनमें दौड़ता हुआ धागे की तरह हो जाता है। सब काम चलेगा, लेकिन खोज और प्यास परमात्मा की चलेगी। भोजन कर रहे होंगे, लेकिन परमात्मा की भूख लगी रह जाएगी। पेट भर जाएगा और परमात्मा की भूख खाली रह जाएगी। पानी पी रहे होंगे, गला शीतल हो जाएगा, शरीर की प्यास बुझ जाएगी और परमात्मा की प्यास पीछे चलती रहेगी। बेटे से बात कर रहे होंगे, बात बेटे से चलेगी, लेकिन भीतर कहीं बात परमात्मा से चलती रहेगी। दुकान पर बैठे होंगे, ग्राहक को देख रहे होंगे, आंख जो देखती हैं, ग्राहक को देखती रहेंगी, और भी गहरी आंखें हैं जो परमात्मा को खोजती रहेंगी।
कबीर जाते थे बेचने कपड़ा बाजार में। तो लोग उनसे कहते कि अब आप इतने ज्ञान को उपलब्ध हो गए कि अब कपड़ा बुनना बंद करो। अब यह शोभा नहीं देता। तो कबीर कहते, अज्ञानी सिर्फ कपड़ा ही बुनते हैं, मैं इसमें कुछ और भी बुनता हूं, जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। मैं इसमें राम भी बुन देता हूं। मेरी श्वास-श्वास में वही है, मेरे हाथ में वही है, मेरी धड़कन-धड़कन में वही है। यह साधारण कपड़ा नहीं है। इसमें मैंने राम के ताने-बाने भी बुन दिए हैं। और जब कबीर बेचने जाते, तो ग्राहक जब खरीदता तो उससे वे कहते कि राम! वे ग्राहक से कहतेः राम! तुम्हारे लिए ही बना कर लाया हूं।
जिंदगी चलेगी, ऐसी ही चलेगी, लेकिन बिल्कुल बदल जाएगी, भीतर का धागा परमात्मा का हो जाएगा। एक प्यास! लेकिन वह प्यास हमारे भीतर रहेगी। और बिना प्यास के जो परमात्मा को खोजेगा, समझ सकते हैं कि उसकी खोज आथेंटिक, प्रामाणिक नहीं हो सकती।
मैंने सुना है कि लंका में एक फकीर था। उसने तीस वर्ष तक हजारों लोगों
को समझाया--मोक्ष, निर्वाण, परमात्मा। मरने का दिन करीब आया तो उस फकीर ने उन लोगों से पूछा कि अब मैं कल मरने वाला हूं और इतने दिन मैंने तीस वर्षों तक तुम्हें समझाया--मोक्ष, निर्वाण, परमात्मा। अब कौन मेरे साथ चलने को तैयार है, वह खड़ा हो जाए!
मरने की खबर सुन कर उसके सब प्रेम करने वाले लाखों लोग इकट्ठे हो गए थे। एक भी आदमी खड़ा नहीं हुआ। बल्कि लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे, जो जिसको मोक्ष पहुंचाना चाहता होगा, उसकी तरफ देखने लगे कि फलां आदमी चला जाए। लेकिन उस फकीर ने कहा, मैं तुमसे पूछ रहा हूं! क्योंकि यह सवाल दूसरे का नहीं है, दूसरे की तरफ मत देखो। कौन चलना चाहता है?
एक आदमी डरता सा खड़ा हुआ। उसने कहा, लेकिन पहले ही मैं निवेदन कर दूं, अभी कल नहीं चलना चाहता हूं, मैं सिर्फ यह पूछने खड़ा हुआ हूं कि तरकीब बता दें, कभी जाना होगा तो उपयोग कर लेंगे। लेकिन कल नहीं चलना चाहता हूं।
हम कहते जरूर हैं कि परमात्मा को चाहते हैं, लेकिन अगर सच में ही कहा जाए कि चाहते हैं? तैयारी है? चलते हैं? तो आप कहेंगे, इतनी जल्दी नहीं, थोड़ा ठहरें। अभी बहुत काम पड़े हैं, वे सब निपटा लें।
अनआथेंटिक, अप्रामाणिक प्यास का कोई भी मतलब नहीं है। इसीलिए तो पृथ्वी पर इतने मंदिर, इतने गिरजे, इतने गुरुद्वारे, इतनी मस्जिदें, इतने धार्मिक लोग, और फिर भी पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाती! पूरी पृथ्वी धार्मिक हो जानी चाहिए थी। श्वास-श्वास, कण-कण हवा का धर्म से भर जाना चाहिए था।

कितनी अजानें, कितनी प्रार्थनाएं, कितने कंठों के स्वर, लेकिन कहीं कुछ नहीं होता। असल में जब लोगों के दिल में प्यास ही न हो, तो ये सब चीजें फॉर्मल, औपचारिक हो जाती हैं। इनमें कोई अर्थ नहीं रह जाता। पुजारी चढ़ा देता है भगवान के मंदिर में फूल, बिना अपने हृदय को चढ़ाए। पुजारी जला देता है बत्तियां, धूप बत्तियां, सुगंध फैला देता है, लेकिन बिना प्राणों के संगीत के।
रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर के मंदिर में पुजारी की तरह रखा गया था। गरीब ब्राह्मण थे, तो पुजारी की जगह रख दिया था। ज्यादा तनख्वाह न थी, शायद सोलह रुपये तनख्वाह थी। लेकिन दो-चार-दस दिन में ही कमेटी ट्रस्टियों की बड़ी मुश्किल में पड़ गई। क्योंकि ट्रस्टियों की कमेटी जिन पुजारियों की आदी थी, यह वैसा पुजारी न था। कमेटी तो हजार पुजारियों को निपटा चुकी थी उस मंदिर से। पुराना मंदिर था, न मालूम कितने पुजारी आए और गए। लेकिन कभी किसी पुजारी से दिक्कत न हुई थी। इस पुजारी से दिक्कत होने लगी। बड़ी मजे की बात है! कमेटी ने रामकृष्ण को बुलाया और कहा कि ऐसा नहीं चलेगा। सात दिन बाद ही नौकरी से अलग कर दिए जाओगे। यह कोई पूजा का ढंग है? क्योंकि हमने सुना है कि तुम फूल पहले सूंघते हो और फिर चढ़ाते हो। और हमने सुना है कि पहले तुम भोग खुद अपने को लगा लेते हो, फिर भगवान को लगाते हो। हद्द हो गई! नास्तिक हो?
रामकृष्ण ने कहा कि सम्हालो अपनी नौकरी! लेकिन मेरी मां जब मुझे भोजन देती थी तो पहले चख लेती थी। मैं बिना चखे नहीं चढ़ा सकता। पता नहीं खाने योग्य है भी कि नहीं! और फूल जो मैंने नहीं सूंघा, पता नहीं उसके चरणों में रखने योग्य है भी या नहीं! मैं बिना सूंघे नहीं रख सकता हूं।
ठीक पुजारी हो तो ट्रस्टियों की कमेटी मुश्किल में पड़ गई। गलत पुजारी चलते रहे तो ट्रस्टियों की कमेटी मुश्किल में नहीं पड़ी थी। निकालने को तत्पर हो गए कि बंद करो इस आदमी को! यह ठीक नहीं है।
यह जमीन, इस पर दिखाई पड़ने वाला तथाकथित धर्म, सो काल्ड रिलीजन, उसके नाम कुछ भी हों, और हम सारे लोग जो अपने को धार्मिक समझते हैं, हम धर्म को भी एक औपचारिकता, एक शिष्टाचार, एक सामाजिक व्यवहार, एक सोशल यूटिलिटी, एक सामाजिक उपयोगिता बनाए हुए हैं।
नहीं! धर्म सामाजिक उपयोगिता नहीं है। धर्म तो प्राणों की बड़ी गहरी अकुलाहट है। समाज का उससे कोई संबंध नहीं। वह एक-एक व्यक्ति की निजी प्राणों की तड़पन है। और उस तड़पन को हम झूठी बातों से हल न कर पाएंगे। उस तड़पन को हम झूठी आग से न जला पाएंगे। उस तड़पन के लिए सच्ची आग चाहिए। वह सच्ची आग प्यास से पैदा होगी। और प्यास जीवन के अनुभव को ज्ञान बनाने से पैदा होगी।
एक और तरफ से सोचने की कोशिश करें। क्योंकि यह बात अगर ठीक से समझ में
आ जाए, और मैं नहीं जानता कि आपकी जिंदगी में प्यास कहां से आए, इसलिए कई तरफ से सोच लेना जरूरी है। किसी की जिंदगी में प्यास दुख से आ सकती है--अगर वह दुख को समझ ले। और किसी की जिंदगी में प्यास अज्ञान से आ सकती है--अगर वह अज्ञान को समझ ले। किसी की जिंदगी में प्यास मृत्यु से आ सकती है--अगर वह मृत्यु को समझ ले। किसी की जिंदगी में प्यास रोजमर्रा की जिंदगी को देखने से आ सकती है--अगर वह उसकी व्यर्थता को समझ ले। कुछ कहा नहीं जा सकता, किसकी जिंदगी में प्यास कहां से आएगी। इसलिए दो-चार कोणों से समझ लेना जरूरी है। सुना है मैंने, एक बहुत अदभुत फकीर हुआ, च्वांगत्से। रात सोया तो उसने
एक स्वप्न देखा। सुबह उठा तो बहुत बेचैन था और सारे गांव के लोगों को बुला लिया कि रात बड़ी मुश्किल में पड़ गया, एक सपना देखा।
गांव के लोगों ने कहा, पागल हो? सपने हम रोज देखते हैं। सपनों से मुसीबत में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है।
लेकिन च्वांगत्से ने कहा कि नहीं, मामला ही ऐसा है कि मुश्किल में पड़
ही गया हूं, जरूरत हो या न हो, मुसीबत आ गई है। तुम कुछ सहायता कर सकते हो तो करो। रात मैंने एक सपना देखा है कि मैं तितली हो गया हूं और फूलों पर उड़ रहा हूं।
तो उन्होंने कहा, यह कोई खास बात नहीं, हम सब देख चुके ऐसे सपने। कभी
हम पक्षी हो जाते हैं, आकाश में उड़ जाते हैं।

लेकिन च्वांगत्से ने कहा, पूरी बात तो सुनो! सपने से दिक्कत नहीं आई।
अब सुबह उठ कर मुझे यह सवाल उठ रहा है कि अगर रात आदमी सोकर सपना देख सकता है कि तितली हो गया, तो तितली भी तो दिन में सोकर सपना देख सकती है कि आदमी हो गई। अब मैं इस दिक्कत में हूं कि च्वांगत्से ने सपना देखा कि तितली बन गया कि तितली सपना देख रही है कि च्वांगत्से बन गई? अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। तो कुछ रास्ता बताओ! नहीं तो मैं गया।
गांव के लोगों ने कहा, बड़ी मुश्किल बात है। लेकिन हमने कभी इस तरह सोचा नहीं।
सपने सबने देखे हैं, लेकिन सपने तक पर हमने नहीं सोचा, उस अनुभव को भी कभी ज्ञान नहीं बनाया। कितने मजे की बात है कि रात के सपने को सुबह उठ कर आप झूठ कह देते हैं कि गलत था। क्यों? क्योंकि जिंदगी और तरह की दिखाई पड़ती है, उसमें सपना गलत हो जाता है। लेकिन कभी इससे उलटा आपने सोचा कि रात जब आप सपने में जाते हैं, तो जिसे आपने दिन भर सच कहा था, वह इसी तरह झूठ हो जाता है। कभी आपने ख्याल किया कि जिसको आप जिंदगी कहते हैं, यथार्थ कहते हैं, वह सपने में उसी तरह झूठ हो जाती है जिस तरह सपना जिंदगी में झूठ हो जाता है। दोनों झूठों में कौन सा सच है, इसे कभी सोचा?
और भी एक मजे की बात है--बहुत मजे की बात है--कि रात का सपना तो दिन में थोड़ा-बहुत याद भी रह जाता है, दिन का सपना रात के सपने में बिल्कुल याद नहीं रहता। रात अगर आप सम्राट हो गए थे सपने में, तो सुबह भी थोड़ी-बहुत धुन उसकी बाकी रह जाती है कि रात सम्राट हो गया था। लेकिन दिन भर जो सम्राट रहा है, जिंदगी भर जो सम्राट रहा है, उसको भी रात के सपने में धुन नहीं रह जाती कि मैं दिन में सम्राट था।
अगर समझेंगे तो शायद पता चले कि जिसे हम जिंदगी कहते हैं, वह सपने से
भी ज्यादा सपना है। कभी आपने सोचा कि सपने में कभी भी याद नहीं आता कि जो मैं देख रहा हूं वह सपना है! और अगर याद आ जाए तो समझना सपना टूट गया। आप सो नहीं रहे, अब आप जाग गए। सपने में पता ही नहीं चलता कि जो मैं देख रहा हूं वह सपना है। कितनी बार आपने सपना देखा है--हजार बार, लाख बार, करोड़ बार--रोज सुबह जग कर पाया है कि सपना झूठा होता है। लेकिन फिर आज रात जब आप सपना देखेंगे तब वह फिर सच मालूम होगा। सपने में सच मालूम होगा। जिंदगी में हजार दफे देखे सपनों के अनुभव का कोई परिणाम नहीं हुआ! सपना फिर आज रात सच हो जाता है! और जब सपने में सपना सच मालूम होता है और झूठ नहीं मालूम होता, तो जिस जिंदगी को आप जिंदगी में सच मान रहे हैं उसे सच मानने का कोई कारण है फिर? हो सकता है उससे भी जाग कर पता चले कि वह भी झूठ है।
जिन्होंने इस जिंदगी को माया या इलूजन कहा है, उनका मतलब यह नहीं है
कि यह नहीं है। उनका कुल मतलब इतना है कि जब इससे भी कोई जाग कर देखता है तो वह हैरान हो जाता है, वह कहता है वह भी झूठ है। वह उसी तरह का एक सपना थी। बस प्रोलांग्ड ड्रीम था, बड़ा लंबा सपना था। एक कंटिन्युटी थी, एक सातत्य था उस सपने में।
अगर आदमी सपने को समझ ले तो जिंदगी सपना हो जाती है। लेकिन नहीं, उसे
भी हम नहीं देख पाते। वह च्वांगत्से ने ठीक कहा कि मैं मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं आपसे कहता हूं, आप कब मुश्किल में पड़ेंगे कि आपको सपना तकलीफ देने लगे?
मैंने और सुनी है एक कहानी। मैंने सुना है, एक सम्राट का बेटा मरणशय्या पर पड़ा है, बिल्कुल मरने के करीब है--अभी गया, अभी गया। चार रात हो गई हैं और चिकित्सक कहते हैं कभी भी जा सकता है, तो बाप जग रहा है, इकलौता बेटा है, चार रात से जग रहा है। चौथी रात चार बजे के करीब ठंडी हवाएं सुबह की आई हैं, वह अपनी कुर्सी पर सो गया। बाप की झपकी लग गई। झपकी लगी तो उसने सपना देखा कि उसके बारह लड़के हैं, बहुत सुंदर, बहुत शक्तिशाली। सारी पृथ्वी पर उसका राज्य है। बड़े आनंद में हो गया है। बड़े दुख में था अभी सपने के बाहर, एक बेटा मर रहा था। अब बड़े आनंद में हो गया है। न उस बेटे से मतलब रहा, न कुछ सवाल रहा। सपने में बड़ा प्रसन्न है। अगर उसका कोई चेहरा भी देखे तो उसकी मुस्कुराहट और उसका आनंद बाहर से भी दिखाई पड़ सकता है। बड़ा आनंदित है।

तभी उसका बेटा मर गया--बाहर वाला बेटा। भीतर के बेटे तो सब ठीक हैं, वे बारह बेटे ठीक चल रहे हैं। बाहर वाला बेटा मर गया। पत्नी चीख मार कर चिल्लाई तो उसकी नींद टूटी। नींद क्या टूटी, बारह बेटे भीतर वाले मर गए, सपना खतम हो गया, लेकिन वह राजा रोने की बजाय हंसने लगा। उसकी पत्नी ने समझा कि कहीं पागल तो नहीं हो गया! कभी दुख में आदमी हो जाता है; कभी सुख में आदमी हो जाता है। कोई भी चीज तीव्र हो जाए तो पागल हो जाता है। पत्नी घबड़ाई, हिलाया कि हंसते क्यों हैं? देखते नहीं बेटा मर गया! फिर भी वह हंसता रहा। उसकी पत्नी ने कहा, बात क्या है?
तो उसने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया।
वही मुश्किल जो च्वांगत्से को पड़ गई थी।
क्या मुश्किल है?
उसने कहा, अब मैं फिकर में पड़ा हूं कि किनके लिए पहले रोऊं? अभी जो बारह भीतर थे उनके लिए पहले रोऊं कि अभी जो एक बाहर था उसके लिए पहले रोऊं? और जब मैं भीतर के लड़कों को देखता था, तब इस लड़के का मुझे पता ही नहीं था कि है या नहीं, मरा कि जिंदा है, कोई मतलब ही न था। अगर मैं सपना ही देखता रहता और यह लड़का मर जाता तो मुझे कभी पता भी नहीं चल सकता था कि यह लड़का मर गया है। और जब भीतर के लड़कों को देखते वक्त बाहर का लड़का झूठ हो गया, और अब बाहर के लड़के को देख कर भीतर के लड़के झूठ हो गए। कौन सच है? मैं यह जानना चाहता हूं। मैं किसके लिए रोऊं? तो वह सम्राट गांव-गांव घूमने लगा पूछते हुए कि मैं किसके लिए रोऊं? वह साधुओं के पास, संन्यासियों के पास जाता, उनकी गर्दन पकड़ लेता और कहता, किसके लिए रोऊं? वह जो बाहर का लड़का मर गया उसके लिए कि वे जो भीतर के लड़के मर गए?
तो लोगों ने उस सम्राट से कहा कि इसका उत्तर सिर्फ च्वांगत्से दे सकता है, तुम उसी के पास चले जाओ। वह जिसने तितली का सपना देखा। तुम उसी झंझट में पड़ गए हो।
तो सुना है मैंने कि वह सम्राट च्वांगत्से के पास गया और च्वांगत्से
से कहा कि मैं किसके लिए रोऊं?
च्वांगत्से ने कहा, अपने लिए रोओ! और किसी के लिए रोने की कोई भी जरूरत नहीं है।
और जो आदमी अपने लिए रोना शुरू कर दे, उस आदमी की जिंदगी में धर्म का आगमन हो जाता है। या जो आदमी अपने ऊपर हंसना शुरू कर दे, उसकी जिंदगी में भी धर्म का आगमन हो जाता है। लेकिन हम दूसरों पर हंसते हैं, दूसरों पर रोते हैं, अपने को सदा बचा जाते हैं।
एकाध दरवाजे से और देखने की कोशिश करें कि यह प्यास कैसे पैदा हो सकती है? यह प्यास कैसे पैदा हो सकती है? शायद यह कहना ठीक नहीं है कि यह प्यास कैसे पैदा हो सकती है, प्यास तो शायद कहीं है, सिर्फ उकसाने की ही बात है। प्यास तो कहीं है, उकसाने की बात है।
शायद प्यास का हमें कभी-कभी बिना उकसाए भी पता चलता है। लेकिन हम उसे दबा देते हैं। कहने को हमारी संस्कृति सारी दुनिया की धार्मिक है, लेकिन धार्मिक प्यास को हम सब दबाते हैं। अगर एक बाप का बेटा चोर हो जाए तो इतना परेशान नहीं होता, जितना बेटा संन्यासी हो जाए तो परेशान हो जाता है। कहते हैं हम धार्मिक संस्कृति है। एक पति शराब पीने लगे तो पत्नी इतनी चिंतित नहीं होती, जितना पति प्रार्थना में डूब जाए तो चिंतित हो जाती है। कहते हैं हम कि धार्मिक संस्कृति है। कहने की बातें हैं। धर्म बड़ा डराता है। और डराता इसलिए है कि धर्म आदमी को बिल्कुल बदल देता है और हमारे आस-पास का कोई भी आदमी चाहता नहीं कि हम बिल्कुल बदल जाएं। शराब पीने वाला बिल्कुल नहीं बदलता, खींचा जा सकता है। लेकिन संन्यासी बिल्कुल बदल जाता है, उसे खींचा नहीं जा सकता। चोर बेटा बुरा है, लेकिन फिर भी चलाया जा सकता है। लेकिन संन्यासी बेटा बेटा ही नहीं रह जाता। चोर बेटा कम से कम बेटा तो रहता है। इसलिए हम चोर बेटे को बर्दाश्त कर लेंगे, संन्यासी बेटे से दिक्कत हो जाएगी।
चारों तरफ से हमारे भीतर अर्ज तो है, जन्म से है, जैसे बीज के भीतर छिपा है अंकुर। लेकिन अगर बीज को हम पत्थरों पर रख दें तो बीज का अंकुर नहीं निकल पाएगा। और हो सकता है बीज पूछे कि मैं अंकुरित कैसे हो जाऊं?

हम सबने अपने जीवन के बीज को पत्थरों पर रखा है कि अंकुरित न हो जाए।
तो आखिरी बात आपसे कहना चाहता हूं कि जरा अपने आस-पास पहचानना कि आपकी अर्ज को तोड़ने का, आपकी प्यास को मिटाने का जो उपक्रम है, जो बड़ा शड्यंत्र चल रहा है चारों तरफ से, उससे जरा सजग होना पड़ेगा, तो शायद प्यास जग उठे, अंकुर फूट उठे। चौबीस घंटे सब तरफ से यही चल रहा है।
अगर एक पति अपनी पत्नी से यह कहे या पत्नी अपने पति से यह कहे कि तुमसे ज्यादा मैं परमात्मा को चाहती हूं, तो झगड़ा शुरू हो जाएगा। पति चाहता है कि पत्नी उसी को परमात्मा समझे। अब यह पत्थर बन रहा है। पति समझाते रहे हैं इस दुनिया में स्त्रियों को कि हम ही परमात्मा हैं! तुम हमें ही परमात्मा समझो! पति ही परमात्मा है!
क्या पागलपन की बात है! सब्स्टीट्यूट बन रहा है पति। पत्नी भी चाहती
है कि पति यह कहे कि तेरे सिवाय, तुझसे ज्यादा किसी को नहीं चाहता। अगर काम्पिटीशन में परमात्मा भी रखा जाए तो भी पत्नी दिक्कत में पड़ जाती है कि यह प्रतियोगिता नहीं चल सकती। आप मुझे चाहते हैं या परमात्मा को, साफ-साफ बता दें। परमात्मा भी सौतेली पत्नी मालूम पड़ेगा।
तो अपने चारों तरफ देखने की कोशिश करें। प्यास को जगाने का उतना सवाल नहीं है, जितना प्यास को चारों तरफ से दबाया हुआ है, वह दबाव को देखें। देखेंगे तो कठिनाई नहीं रहेगी, उस दबाव को हटाया जा सकता है। इस दबाव की कई तरकीबें हैं। यह दबाव बहुत टेक्निकल है। इसकी बड़ी गहरी व्यवस्था है।
हर आदमी की मौत निश्चित है। निश्चित का मतलब यह नहीं है कि कोई तारीख निश्चित है। निश्चित का मतलब यह कि मौत एक सरटेंटी है, उससे बचा नहीं जा सकता। वह एक निश्चय है। हर आदमी की मौत निश्चित है। लेकिन हर आदमी उसको आशीर्वाद दिए जा रहा है कि तुम जुग-जुग जीओ। मां आशीर्वाद दे रही हैः तुम जुग-जुग जीओ। बाप कह रहा हैः तुम जुग-जुग जीओ। गुरु भी कह रहा है कि आशीर्वाद, जुग-जुग जीओ।
कोई जुग-जुग नहीं जी सकता। खतरनाक और झूठी बात बोली जा रही है। लेकिन
मन में बैठती है। और मृत्यु की जो सरटेंटी है, मृत्यु का जो निश्चय है, मृत्यु की जो अनिवार्यता है, उसको झुठलाती है। और ऐसा लगता है कि नहीं, ठीक है, जुग-जुग जी लेंगे।
कोई जुग-जुग नहीं जीएगा। कोई आशीर्वाद कभी पूरा नहीं हुआ, होगा भी नहीं। लेकिन मौत को झुठलाने के काम आ जाता है। और मौत को जितना हम झुठलाते हैं, उतना ही अमृत की खोज मुश्किल हो जाती है। पत्थर पर पड़ गया बीज।
अब झुठलाने से काम नहीं चलेगा। जिंदगी इनसिक्योरिटी है। जिंदगी बिल्कुल असुरक्षा है। यहां कुछ भी सुरक्षित नहीं है। आप यहां हैं, घर तक पहुंचेंगे, यह पक्का नहीं है। मैं यहां हूं, दूसरा शब्द भी बोल सकूंगा इसके आगे, यह पक्का नहीं है। यह बिल्कुल अनिश्चित है। लेकिन मन कहता है कि सब निश्चित है। चारों तरफ सब समझाया जाता है कि सब निश्चित है। बैंक बैलेंस निश्चित है, इंश्योरेंस कंपनी कहती है निश्चित है। सब तरफ निश्चय का धोखा खड़ा किया जा रहा है। जब कि सब अनिश्चित है, कुछ भी निश्चित नहीं है।
अगर अनिश्चय का पता चल जाए तो बीज पत्थर से हट जाएगा। अगर यह पता चल जाए, जहां सब अनिश्चित है और जहां निश्चित सिर्फ धोखा है, वहां जीवन को जो खोज रहा है वह बड़ी गलती कर रहा है, जो मैंने सुना है, एक बार मुसलमान बादशाह इब्राहिम की छत पर हुई। रात सोया था, आधी रात नींद खुली तो देखा कि कोई छप्पर पर चल रहा है ऊपर। तो पूछा चिल्ला कर कि कौन हो? छप्पर पर कौन चल रहा है?
तो ऊपर से किसी ने हंस कर कहा कि सोए रहो, परेशान मत होओ। मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोज रहा हूं।
इब्राहिम ने कहा, पागल, कहीं मकानों और महलों के छप्परों पर ऊंट खोए सुने हैं?
जोर की हंसी आई और उसने कहा कि तू मुझे पागल कहता है, लेकिन जहां तू जिंदगी खोज रहा है वहां कभी किसी को जिंदगी खोजते हुए पाया है? तो अगर जहां मृत्यु है वहां आदमी अमृत को खोजता है और जहां अनिश्चय है वहां

निश्चय को खोजे, जहां सब असत्य है वहां सत्य को खोजे, अगर इस तरह के लोग पागल नहीं तो मुझे भी पागल कहने का क्या कारण है?
इब्राहिम उठा और उसने सिपाही दौड़ाए कि इस आदमी को पकड़ो! यह आदमी कुछ मतलब की बात कहता मालूम पड़ता है।
कई बार मतलब की बात कहनी हो तो लोगों की नींद खराब करनी पड़ती है आधी रात। लेकिन वह आदमी नहीं पकड़ा जा सका। इब्राहिम दूसरे दिन बहुत चिंतित अपने दरबार में बैठा है। उसने आदमी भेजे कि सारी राजधानी खोज डालो। वह आदमी कौन है जो रात छप्पर पर ऊंट खोजता था?
उन सबने कहा कि वह तो आदमी पागल था ही, आप क्यों पागल हो रहे हैं!
इब्राहिम ने कहा, यही मैंने भी उससे कहा था। लेकिन जो जवाब उसने मुझे दिया है उससे मैं पागल हो गया हूं और वह पागल नहीं रहा है। उसकी खोज करो। बहुत खोज की गई, कुछ पता चला नहीं। लेकिन थोड़ी देर बाद दरवाजे पर बड़ा झगड़ा होने लगा। दरबान से एक आदमी कह रहा था कि मुझे इस सराय में ठहर जाने दो। वह दरबान कह रहा था, यह सराय नहीं है महाशय, यह राजा का महल है, निवास स्थान है। वह आदमी कह रहा था कि झूठ मत बोलो, मैं जानता हूं कि यह सराय है, यह धर्मशाला है, ठहर जाने दो। बात इतनी बढ़ गई कि उस दरबान ने कहा कि आप पागल तो नहीं हैं? राजा को भीतर सुनाई पड़ा कि फिर किसी आदमी से दरबान कह रहा है कि आप पागल तो नहीं हैं? राजा भागा बाहर आया, उस आदमी को भीतर लाया। उस आदमी से पूछा कि क्या बात है?
उस आदमी ने कहा कि मैं इस सराय में ठहरना चाहता हूं। आपको कोई एतराज है?
उस राजा ने कहा, पागल तो नहीं हो? यह सराय नहीं है; मेरा महल है, निवास है।
तो उस आदमी ने कहा कि मैं इसके पहले भी आया था, तब कोई दूसरा आदमी इसी सिंहासन पर बैठा था। वह कहता था यह मेरा निवास है। उसके पहले भी आया था, तब कोई और दूसरा ही आदमी बैठा हुआ था। वह भी कहता था यह मेरा निवास है।
तो उस राजा ने कहा कि वे मेरे पिता थे। और उसके पहले जब तुम आए, वे उनके
भी पिता थे।
तो उस फकीर ने कहा कि जब मैं दुबारा आऊंगा, तुम मिलोगे, यह पक्का है? इब्राहिम ने कहा कि मुश्किल बात है।
तो फिर, उसने कहा, सराय है। तुम भी ठहरे हो, मुझे भी ठहर जाने दो। इसमें बहुत लोग ठहर चुके हैं, मैं भी ठहर जाता हूं।
वह इब्राहिम उठ कर खड़ा हो गया और उसने कहा कि मिल गया वह आदमी जो रात छप्पर पर ऊंट खोज रहा था। तुम ही वह आदमी मालूम पड़ते हो। अब तुम ठहरो और मैं जाता हूं।
उस फकीर ने कहा, कहां जाते हो?
तो उस राजा ने कहा, अब घर खोजने जाता हूं। क्योंकि अब तक इस सराय को घर समझा हुआ था।
जिसे हम जिंदगी समझ रहे हैं--सुरक्षित, सिक्योर्ड, मौत नहीं है, सब ठीक है--यह बनाया हुआ जो हमारा इंतजाम है, यह जो मेक बिलीफ है, यह जो हमारी तैयारी है, यह सिर्फ धोखा है। इस धोखे को टूटने में देर नहीं लगती। यह धोखा किसी दिन टूटता है। लेकिन जब टूट जाता है, तब करने का समय नहीं बचता। अभी जब तक नहीं टूटा है, करने का समय बचा है, कुछ किया जा सकता है।
तो आखिरी बात आपसे कहता हूं, प्यास को जगाने के लिए, अपनी जिंदगी में जहां-जहां जो-जो आपको दिखाई पड़ता हो, जरा गौर से देखना--जैसा दिखाई पड़ता है, ठीक उससे उलटा उसे पाएंगे। जहां दिखाई पड़ता है कि सब ठीक है, वहां कुछ भी ठीक दिखाई नहीं पड़ेगा। और जहां दिखाई पड़ता है पैरों के नीचे चट्टानें हैं, वहां गड्ढों के सिवाय कुछ भी नहीं है। और जहां दिखाई पड़ता है जिंदगी बिल्कुल सुरक्षित है, वहां सिर्फ मौत ही सुरक्षित है, और कुछ भी सुरक्षित नहीं है।
काश हमें जिंदगी की यह असली तस्वीर--जो हमारी जिंदगी है--दिखाई पड़ जाए,
तो फिर हम सराय को छोड़ कर घर की खोज में नहीं निकलेंगे? निकलना ही पड़ेगा। कोई उपाय नहीं, निकलना ही पड़ेगा। वही खोज परमात्मा की खोज बन जाती है, क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त और कोई घर नहीं है। बाकी सब सराय है।

जिसमें पहुंच कर फिर वापस लौटना न हो वही घर है। जिसमें पहुंच कर फिर वापस खोना न हो वही घर है। जिसमें पहुंच कर फिर और कहीं पहुंचने को कोई जगह शेष न रह जाए वही घर है। जिसको पाकर फिर पाने को कुछ और बाकी न बचे वही घर है। लेकिन यह हम अनेक आयाम से, अनेक डायमेंशंस से जिंदगी को खोजें, शायद किसी कोने से आपकी प्यास जग जाए। और अगर प्यास जग जाए तो फिर क्या करें, उस संबंध में कल आपसे बात करूंगा। प्यास न जगे तब तो करने का कोई सवाल नहीं है। प्यास जगे तो कुछ किया जा सकता है। सरोवर निकट है, जो प्यासे हैं उन्हें तत्काल मिल जाएगा। जो प्यासे नहीं हैं--सरोवर बिल्कुल मकान के पीछे हो--लेकिन जो प्यासे नहीं हैं उन्हें कभी नहीं मिल सकता है।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म साधना के सूत्र
आठवां प्रवचन

रहस्य का द्वार

एक फकीर को एक सम्राट ने फांसी दे दी थी। और उस देश का रिवाज था कि नदी
के किनारे फांसी के तख्ते को खड़ा करके फांसी दे देते थे। और उस लटकते हुए आदमी को वहीं छोड़ कर लौट जाते थे। उसकी लाश नदी में गिर जाती और बह जाती। लेकिन कुछ भूल हो गई, और फकीर के गले में जो फंदा लगाया था वह बहुत मजबूत नहीं था, फकीर जिंदा ही फंदे से छूट कर नदी में गिर गया। पर किसी को पता न चला, फांसी लगाने वाले लौट चुके थे।
दस साल बाद उस फकीर को फिर फांसी की सजा दी गई। और जब उसे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया जा रहा था और सूली बांधी जा रही थी, तो उस फकीर ने कहा कि मित्रो, जरा एक बात का ध्यान रखना कि फंदा ठीक से लगाना। पिछली बार मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया था।
उन्होंने कहा, हम समझे नहीं, मतलब क्या है? कौन सी पिछली बार?
उसने कहा, यह फांसी दुबारा लग रही है। और मैं तैरना नहीं जानता हूं।
तो पिछली बार मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। नदी में गिर गया, और नदी तैर कर मुझे पार करनी पड़ी, और तैरना मुझे मालूम नहीं है। फंदा जरा ठीक से लगाना, फिर वैसी मुसीबत न हो जाए।
वे जो उसे फांसी दे रहे थे, बहुत हैरान हुए कि वह आदमी कैसा है! फांसी देने के पहले उन्होंने उससे पूछा कि तुम जीना नहीं चाहते? अच्छा तो था कि तुम भगवान से प्रार्थना करते कि फंदा थोड़ा फिर वैसा ही ढीला हो जैसा पिछली बार हुआ था!
तो उस फकीर ने कहा, दस साल जीकर देख लिया, कुछ पाया नहीं। अब दुबारा किस मुंह से भगवान से प्रार्थना कर सकता हूं?
हम सब जीकर देख लेते हैं बहुत वर्ष, कुछ पाते नहीं। लेकिन फिर भी जीने
की आकांक्षा किए चले जाते हैं। जीने की आकांक्षा को जो समझेगा ठीक से, वह जीने की आकांक्षा का दीवाना और पागल नहीं रह जाएगा--वह जो लस्ट फॉर लाइफ है। और जब तक कोई जीने की आकांक्षा से भरा है, जीने की तृष्णा से भरा है, लस्ट फॉर लाइफ से भरा है, तब तक परमात्मा के द्वार पर प्रवेश नहीं हो सकता है।
इसलिए पहला सूत्र आपको याद रखने के लिए कहता हूं वह यह कि अपनी जिंदगी में कभी सुबह, कभी सांझ रुक कर जरा देख लेना कि इस जिंदगी में पाया क्या है? सिर्फ पूछ लेना--अपने से ही, किसी और से नहीं। क्योंकि इसका उत्तर कोई दूसरा न दे सकेगा। यह अपने से ही कभी-कभी पूछते रहें कि जिंदगी में पाया क्या है?
यह प्रश्न ही धीरे-धीरे इस जिंदगी की व्यर्थता को दिखाने का कारण बन जाता है। और जब तक यह जिंदगी व्यर्थ न हो जाए, तब तक दूसरी सार्थक जिंदगी का द्वार नहीं खुलता है। इस जिंदगी की व्यर्थता का अर्थ हैः अब हम इस जिंदगी के पार होने के लिए तैयार हो गए। पहली कक्षा से विद्यार्थी दूसरी कक्षा में जाता है। उसका कुल मतलब इतना है कि अब पहली कक्षा व्यर्थ हो गई, अब उसमें सीखने जैसा कुछ भी बाकी नहीं बचा है। इस जिंदगी से हम तभी ऊपर की जिंदगी में उठ सकते हैं, जब यह जिंदगी व्यर्थ हो जाए। इससे जो सीखा जा सकता...
लेकिन इसके पहले कि पा ली गई चीज व्यर्थ हो, हम दूसरी चीज को पाने में
लग जाते हैं। हमारी डिजायर्स ओवर लैपिंग हैं। एक इच्छा पूरी नहीं हो पाती कि हम दूसरी में संलग्न हो जाते हैं। कभी मौका ही नहीं मिलता जिंदगी में कि दो इच्छाओं के बीच में खड़े होकर हम देख लें, एक विचार, पुनर्विचार कर लें, एक रिकंसिड्रेशन कर लें कि हम जो दौड़ रहे हैं, पा रहे हैं, उससे कुछ मिल रहा है कि नहीं मिल रहा है?
सुना है मैंने कि काशी के एक कुत्ते को दिल्ली की यात्रा की सनक सवार
हो गई थी। वह किसी एम.पी. का कुत्ता था, छोटा-मोटा कुत्ता नहीं था। और एम.पी. के घर में, चलो दिल्ली, चलो दिल्ली की बातें सुनते-सुनते उसका दिमाग भी

खराब हो गया हो तो कुछ बहुत आश्चर्य नहीं है। आदमियों का हो जाता है, सो वह तो कुत्ता था। एक दिन उसने अपने नेता से पूछ ही लिया कि सारी दुनिया दिल्ली जा रही है, मैं भी दिल्ली जाना चाहता हूं। रास्ता क्या है? कैसे दिल्ली पहुंचूं?
नेता का जो अपना रास्ता था, उसने उस कुत्ते को भी बता दिया। उसने कहा
कि गरीब कुत्ते मिल जाएं तो उनसे कहना कि अमीर कुत्ते तुम्हारा शोषण कर रहे हैं। और अमीर कुत्तों से बचाने के लिए सिवाय मेरे और तुम्हारा कोई सेवक नहीं है। और अमीर कुत्ते मिल जाएं तो उनसे कहना कि गरीब कुत्ते मिल कर तुम्हारी हत्या की कोशिश कर रहे हैं और मेरे सिवाय तुम्हें बचाने वाला सेवक और कोई भी नहीं है।
लेकिन कुत्ता भी होशियार था, राजनैतिक का कुत्ता था। उसने कहा, अगर दोनों एक साथ मिल जाएं?
तो नेता ने कहा, सर्वोदय की बात करना कि हम सबका उदय चाहते हैं, हम सबके सेवक हैं।
वह कुत्ता बहुत जल्दी नेता हो गया, सीक्रेट कुंजी उसके हाथ में आ गई।
और उसने दिल्ली खबर भेज दी कि अब मैं आ रहा हूं। एक महीने का अंदाज था उसे कि काशी से दिल्ली तक आने में एक महीना लग जाएगा, इसलिए एक महीने बाद की उसने खबर की कि फलां तारीख को मैं चलूंगा और एक महीने बाद फलां तारीख को दिल्ली पहुंच जाऊंगा। दिल्ली के कुत्तों को खबर की। वहां सर्किट हाउस वगैरह में इंतजाम कर लेना, उसने सब खबर कर दी।
लेकिन वह कुत्ता सात दिन में ही दिल्ली पहुंच गया! दिल्ली के कुत्ते बड़े हैरान हुए कि इतनी जल्दी यात्रा कैसे की? इतनी जल्दी आ कैसे गए?
वह कुत्ता थोड़ा ही बता पाया और मर गया। क्योंकि इतनी जल्दी जिसने यात्रा की, वह जीता हुआ मंजिल पर नहीं पहुंचता। लेकिन अपनी बात कह गया। उसने कहा कि यह यात्रा मैंने नहीं की; मैं तो महीने भर में भी शायद ही पहुंच पाता; यह तो बाकी कुत्तों ने मेरी यात्रा करवाई। एक गांव को मैं छोड़ भी न पाता कि दूसरे गांव के कुत्ते मेरे पीछे लग जाते। अपनी जान बचाने को मैं भागता। वे दूसरे गांव के बाहर तक मुझे छोड़ कर लौट भी न पाते कि दूसरे गांव के कुत्ते मेरे पीछे लग जाते। और मैं जान बचाने को भागता। मैं दिल्ली नहीं आया, मैं जान बचा रहा हूं। इतना ही कहते, सुना है मैंने, वह कुत्ता मर गया था। लेकिन बड़े राज की बात वह कह गया।
आदमी भी अपनी-अपनी दिल्लियों पर पहुंच जाता है, लेकिन एक इच्छाएं दूसरे गांव तक छोड़ भी नहीं पातीं कि दूसरे गांव की इच्छाएं पकड़ लेती हैं। और सिर्फ अपने को बचाने में आदमी दौड़ता रहता है, दौड़ता रहता है। और आखिर में कुछ बचता नहीं और कुछ मिलता नहीं।
इसलिए पहला सूत्र आपसे कहता हूंः अपने से पूछते रहना बार-बार, क्या मिल गया है इस जिंदगी में? और यह भी पूछते रहना कि क्या मिल जाएगा? क्योंकि जो कल चाहा था वही आज भी हम चाह रहे हैं, जो परसों चाहा था वही कल भी चाहा था, जो वर्ष भर पहले चाहा था वही आज भी चाह रहे हैं। जब जिंदगी भर चाहने से कुछ नहीं मिला, तो अब क्या मिल जाएगा? जिस आदमी के सामने यह प्रश्न बहुत गहरा होकर बैठ जाता है, उस आदमी की जिंदगी में बदलाहट तत्काल शुरू हो जाती है। जब ऐसा आदमी क्रोध करेगा तो पूछेगाः क्या मिल जाएगा? और यह पूछते से ही क्रोध करना मुश्किल हो जाएगा।
मेरे एक मित्र हैं, बहुत क्रोधी हैं। तो मुझसे वे पूछते थे कि मैं क्रोध से बचने के लिए क्या करूं? बड़े नुस्खे उन्होंने उपयोग कर लिए थे, लेकिन कोई काम आया नहीं था। बड़ा संयम साध चुके थे, लेकिन जितना संयम साधा उतने क्रोधी होते चले गए थे। हां, एक-दो दिन साध लेते थे, तो तीसरे दिन दस गुना होकर प्रकट हो जाता था। तो मैंने उन्हें एक कागज लिख कर दे दिया, और उस कागज में लिख दिया कि इस क्रोध से मुझे क्या मिल जाएगा? मैंने कहा, यह अपने खीसे में रख लो। दबाना मत क्रोध को, जब क्रोध आए तो इस कागज को पढ़ कर और वापस खीसे में रख लेना।
वे पंद्रह दिन बाद मेरे पास आए और उन्होंने कहा, यह तो बड़ा अजीब कागज है! इसमें कुछ रहस्य, कुछ मंत्र, कुछ जादू है?

मैंने कहा, कोई रहस्य नहीं, कोई मंत्र नहीं, कोई जादू नहीं। साधारण कागज है और हाथ की लिखावट है।
उन्होंने कहा, नहीं, जरूर कोई बात है। अब तो हालत यह हो गई है कि इसको निकाल कर पढ़ना भी नहीं पड़ता। बस हाथ खीसे की तरफ गया कि मामला एकदम विदा हो जाता है। क्योंकि जैसे ही यह ख्याल आता है--इस क्रोध से क्या मिल जाएगा? तो जिंदगी भर का तो अनुभव है कि कभी कुछ नहीं मिला। सिर्फ खोया जरूर है, मिला कुछ भी नहीं है।
और ध्यान रहे, जिस चीज से कुछ नहीं मिलता, यह मत समझना आप कि सिर्फ कुछ नहीं मिलता। जिससे कुछ नहीं मिलता उसमें कुछ खोता भी जरूर है। इस जिंदगी में या तो माइनस होता है कुछ या प्लस होता है कुछ। या तो कुछ मिलता है या कुछ खोता है, बीच में कभी नहीं होता। इस पूरी जिंदगी में या तो कुछ मिलेगा या कुछ खोएगा। और अगर आपको कुछ न मिला हो तो दूसरी बात मैं आपसे कहता हूं कि आपने कुछ खो दिया है, जिसका आपको पता भी नहीं है। ऐसा नहीं है कि हम खड़े रह जाएं। या तो हम आगे जाएंगे, या हम पीछे जाएंगे। अपनी जगह खड़े रहने की कोई गुंजाइश नहीं है।
एडिंगटन एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ। उसने अपनी आत्मकथा में लिखा है
कि आदमी की भाषा में रेस्ट नाम का शब्द सबसे झूठा है--रेस्ट, विश्राम। उसने लिखा कि मैं पूरी जिंदगी के अनुभव के बाद यह कहता हूं कि कोई चीज विश्राम में नहीं है, या तो चीजें आगे जा रही हैं या पीछे जा रही हैं। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। एट रेस्ट कोई भी चीज नहीं है।
मैं आपसे कहता हूं, या तो आप खोएंगे या आप पाएंगे। अगर आप पा नहीं रहे हैं, तो आप पूरे समय खो रहे हैं। लेकिन यह तो दूसरी बात होगी। पहले तो हमें यह पता चल जाए कि हम कुछ पा रहे हैं? हमें कुछ मिल रहा है? यह प्रश्न उठाना जरूरी है। जिस मनुष्य के मन में यह प्रश्न उठ जाता है, उस मनुष्य को परमात्मा से बहुत दिन तक दूर रखने का कोई उपाय नहीं है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों उसकी परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू हो जाएगी।
दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि जिंदगी में जो भी है, कुछ भी ठहरता नहीं है। आ भी नहीं पाता कि चला जाता है। जिंदगी एक धारा है, नदी, एक फ्लक्स, किनारे छू भी नहीं पाते कि छूट जाते हैं। आ भी नहीं पाती कि चीज चली जाती है। चीज तो चली जाती है, लेकिन हम परेशान रह जाते हैं।
एक आदमी गाली दे जाता है। गाली आती है, गूंजती है और चली जाती है। और हमारी रात भर नींद असंभव हो जाती है। गाली तो टिकती नहीं, लेकिन हम गाली पर टिक जाते हैं। जिंदगी तो एक बहाव है, लेकिन आदमी जोर से क्लिंगिंग करता है और हर चीज को पकड़ लेता है।
एक सुबह बुद्ध के ऊपर एक आदमी थूक गया। क्रोध में था, गुस्से में था, थूक दिया। बुद्ध ने अपनी चादर से अपना मुंह पोंछ लिया और उस आदमी से कहा, और कुछ कहना है?
उस आदमी ने कहा, कहना? मैंने कुछ कहा नहीं, सीधा अपमान किया है आपका! बुद्ध ने कहा, जहां तक मैं समझता हूं, तुम कुछ कहना ही चाहते हो, लेकिन शब्द कहने में असमर्थ होंगे, इसलिए थूक कर तुमने कहा है। बुद्ध ने कहा, अक्सर ऐसा होता है, कोई बहुत प्रेम में होता है तो शब्द से नहीं कह पाता तो वह गले लगा लेता है। कोई बहुत श्रद्धा में होता है, शब्द से नहीं कह पाता तो चरणों पर सिर रख देता है। कोई बहुत क्रोध में होता है, शब्द से नहीं कह पाता तो थूक देता है। मैं समझता हूं तुमने कुछ कहा है। और भी कुछ कहना है कि बात पूरी हो गई?
वह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ गया होगा। वह वापस लौट गया। रात भर सो न सका। सुबह बुद्ध से क्षमा मांगने आया। उनसे कहने लगा, मुझे माफ कर दें। बुद्ध ने कहा, किस बात की तुम माफी मांगते हो?
उसने कहा कि मैं कल आपके ऊपर थूक गया था।
बुद्ध ने कहा, न अब थूक बचा, न अब कल बचा, न अब तुम वही हो, न अब मैं वही हूं। कौन किसको क्षमा करे? कौन किस पर नाराज हो? चीजें सब बह गईं। तुम भी वही नहीं हो! क्योंकि कल तुम थूकते थे, आज तुम चरणों पर सिर रखते हो। कैसे मानूं कि तुम वही हो?

सब बह जाता है। जिंदगी एक बहाव है। इस जिंदगी में जो मकान बनाते हैं, उन्हें इस बहाव का पता नहीं है, इसलिए नदी पर मकान बनाने की कोशिश में नष्ट हो जाते हैं। लेकिन हम हर चीज को पकड़ लेते हैं जोर से। जो आदमी जिंदगी में चीजों को जोर से पकड़ रहा है, वह धारा के खिलाफ, जीवन की धारा के खिलाफ परेशान होगा। वह इतना परेशान हो जाएगा, अपने ही हाथ से।
मैंने सुना है कि सूफियों में एक कहानी है। वे कहते हैं कि एक नदी जोर
से बही जाती थी, तेज थी धार, बहाव था बाढ़ का। और दो छोटे से तिनके नदी में बह रहे थे। एक तिनका नदी में आड़ा पड़ा हुआ था और नदी से लड़ रहा था। और कोशिश कर रहा था कि नदी को आगे नहीं बढ़ने देगा। बहा जा रहा था, क्योंकि नदी को कहां पता चलेगा कि एक तिनका नदी को आड़ बन कर रोकने की कोशिश कर रहा है! लेकिन बड़ा बेचैन था, क्योंकि लड़ रहा था पूरे वक्त और हार रहा था पूरे वक्त। लड़ रहा था और हार रहा था। चेष्टा कर रहा था और डूब रहा था। संघर्ष कर रहा था और नीचे की तरफ बह रहा था। ऊपर चढ़ना चाह रहा था और नीचे की तरफ जा रहा था। नदी को कोई फर्क नहीं पड़ रहा था, लेकिन तिनका बड़ा परेशान था। दूसरा तिनका नदी में आड़ा पड़ा हुआ नहीं था, सीधा पड़ा था। नदी की धार की तरफ पड़ा हुआ था। वह दूसरा तिनका नदी के साथ बह रहा था और बड़ा आनंदित था और यह सोच रहा था मन में कि मैं नदी को बहने में सहायता दे रहा हूं। नदी को उसका भी पता नहीं था, लेकिन वह परेशान नहीं था। नदी को उन दोनों तिनकों से कोई फर्क नहीं पड़ता था, लेकिन उन दोनों तिनकों के दृष्टिकोण से उन दोनों तिनकों को बहुत फर्क पड़ रहा था।
जिंदगी की धारा में आप आड़े तिनके की तरह पड़े हैं या जिंदगी की धारा में आप सीधे तिनके की तरह पड़े हैं? अगर जिंदगी की धारा में आप बहने को राजी हैं, तो यह जिंदगी की धारा आपको परमात्मा तक पहुंचा ही देगी। अगर आप बहने को राजी नहीं हैं, तो आप बहुत परेशान होंगे। और वह परेशानी इतना धुआं बन जाएगी कि अगर परमात्मा का सागर सामने भी आ जाए तो आपको दिखाई नहीं पड़ेगा, सिर्फ अपनी हार ही दिखाई पड़ती रहेगी, अपनी असफलता ही दिखाई पड़ती रहेगी। तो दूसरा सूत्र आपसे कहता हूं वह यह कि जिंदगी में कुछ भी ठहराव नहीं
है, जिंदगी में कुछ ठहरा हुआ नहीं है। आप जिंदगी में कुछ ठहराने की कोशिश में मत पड़ जाना।
हम सब पड़े हैं कोशिश में। यह कोशिश चिंता बन जाती है। यह कोशिश विषाद
बन जाती है। यह कोशिश एंग्विश, संताप बन जाती है। यह कोशिश हमें पागल कर देती है। यह कोशिश ही हमारे व्यक्तित्व को रुग्ण और बीमार कर देती है। नहीं, जिंदगी की धारा में कुछ भी ठहरता नहीं है। इसे प्रतिपल जो स्मरण रखेगा, वह विक्षिप्त नहीं होगा, वह पागल नहीं हो जाएगा।
सुना है मैंने कि एक सम्राट ने अपने वजीर को कहा था कि कोई ऐसा सूत्र मेरे लिए ले आओ किसी ज्ञानी से, जो मेरे लिए हर समय काम पड़ सके। तो एक फकीर से वे एक सूत्र ले आए। किंतु उस फकीर ने कहा कि यह ताबीज मैं देता हूं, लेकिन सम्राट तब तक इसे न खोले जब तक कि सच में ही जरूरत न पड़ जाए। तो ताबीज लटका लिया गया, वर्षों बीत गए, जरूरत कुछ खास पड़ी नहीं सम्राट को, खोला भी नहीं।
फिर दुश्मन ने हमला किया और सम्राट हार गया। और वह अपने घोड़े पर भागा
जा रहा है। सब हार चुका है। दुश्मनों के घोड़ों की टाप पीछे सुनाई पड़ रही है, भाग रहा है। और पाता है आखिर में कि एक पहाड़ के किनारे पर पहुंच गया है, जहां आगे कोई रास्ता नहीं है, सिर्फ खड्ड है, रास्ता समाप्त हो गया है। दुश्मन की टाप पीछे सुनाई पड़ रही है, पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं है। तब उसे याद आया कि मैं वह ताबीज खोल कर देख लूं। उसने वह ताबीज खोल कर देखा, उसमें एक छोटे से कागज पर लिखा हैः यह भी बीत जाएगा। बस इतना ही लिखा हैः यह भी बीत जाएगा। दिस टू इ.ज नॉट गोइंग टु स्टे। यह भी ठहरेगा नहीं। यह भी बीत जाएगा। एकदम से उसकी समझ में नहीं आया कि क्या मतलब है? लेकिन सच में ही वह भी बीत गया। वे घोड़े की टापें, वे आवाजें जंगल में कहां खो गईं, कुछ पता न रहा।
सात दिन बाद वह सम्राट उसी राजधानी में वापस पहुंच गया, सात दिन बाद
वह अपने महल में बैठा। तब उसने उस फकीर को बुलवाया और कहा कि मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि इस ताबीज में क्या है? एक छोटा सा कागज का टुकड़ा और एक

छोटी सी बात! लेकिन अगर यह कागज का टुकड़ा न होता, तो सम्राट ने कहा कि शायद मैं उस गड्ढे में कूद कर और आत्महत्या करने की तैयारी कर रहा था। लेकिन यह सोच कर कि यह भी बीत जाएगा, मैंने कहा, थोड़ी देर और प्रतीक्षा कर लूं।
सब बीत जाता है। दुख भी बीत जाते हैं, सुख भी बीत जाते हैं। दुख में स्मरण रखना कि बीत जाएगा, तो दुख पीड़ा न देगा। सुख में स्मरण रखना कि बीत जाएगा, तो सुख अहंकार न देगा। असफलता में स्मरण रखना कि बीत जाएगी, तो चिंता न होगी। सफलता में याद रखना कि बीत जाएगी, तो पागलपन पैदा न होगा। सुख में, दुख में; छाया में, प्रकाश में; बीमारी में, स्वास्थ्य में; रात में, दिन में; जवानी में, बुढ़ापे में; जन्म में, मृत्यु में--जो याद रख सकता हैः यह भी बीत जाएगा, उसकी जिंदगी से तनाव, टेंशन्स विदा हो जाते हैं। उसकी जिंदगी में कोई तनाव नहीं रह जाता।
और जिसकी जिंदगी में तनाव नहीं है, वह परमात्मा के मंदिर की तरफ कदम बढ़ा सकता है। जिसकी जिंदगी में तनाव है, वह सिर्फ पागलखाने की तरफ कदम बढ़ाता रहता है। हम सब पागलखाने की तरफ कदम बढ़ाए चले जाते हैं। कोई जरा दरवाजे पर पहुंच गया है, कोई दरवाजे के भीतर पहुंच गया है, कोई दरवाजे से जरा दूर है, कोई सड़क पर है, कोई चौराहे पर है, लेकिन रुख, चेहरा हमारा पागलखाने की तरफ है।
विलियम जेम्स एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ। वह एक दफा पागलखाने में गया तो फिर लौट कर कभी प्रसन्न नहीं हो सका। दिन बीतने लगे, उसकी पत्नी चिंतित, उसके मित्र चिंतित। उन्होंने कहा, तुम इतने उदास क्यों हो गए हो? तो विलियम जेम्स ने कहा कि जब से मैं पागलखाने से लौटा हूं, मेरी सारी खुशी चली गई!
पर उन्होंने कहा, ऐसी क्या बात है पागलखाने में?
तो विलियम जेम्स ने कहा, पागलखाने में जिन लोगों को मैंने देखा, कल वे सभी लोग मेरे ही जैसे लोग थे। तो मुझे यह ख्याल आया कि कहीं ऐसा तो न होगा कि किसी दिन मैं भी पागलखाने में पड़ जाऊं?
उन सबने समझाया कि तुम व्यर्थ की बातों में पड़े हो। तुम क्यों पागल होने लगे?
तो विलियम जेम्स ने कहा कि उनके घर के लोग भी उनको यही समझाते, अगर वे कहते कि हम पागल तो न हो जाएंगे! तो वे कहते कि तुम पागल क्यों होओगे? कैसी बातों में पड़े हो? लेकिन वे पागल हो गए। मुझे कौन पागल होने से रोक सकेगा? क्योंकि चिंतित हूं मैं वैसा ही जैसे वे लोग कल चिंतित थे। आज उनकी चिंता की मात्रा बढ़ गई है, बस इतना ही फर्क है। परेशान हूं मैं भी जैसे वे लोग परेशान थे। उनकी परेशानी सौ डिग्री पार कर गई है। मेरी परेशानी अट्ठानबे डिग्री पर होगी, नब्बे डिग्री पर होगी। लेकिन कितनी देर लगेगी कि मैं भी सौ डिग्री के पास नहीं पहुंच जाऊंगा?
हम सब चिंतित, परेशान, तनाव से भरे हुए, पागलखाने की तरफ मुंह किए हुए हैं। परमात्मा की तरफ मुंह, पागलखाने की तरफ पीठ करने से होता है। और पागलखाने की तरफ पीठ वही कर सकता है जो जिंदगी में जरा भी तनाव नहीं पालता। पालता ही नहीं तनाव, जो टेंशन्स मोल ही नहीं लेता। चीजें आती हैं, बीत जाती हैं, वह खड़ा रह जाता है। तूफान आते हैं, बड़े वृक्ष गिर जाते हैं। क्योंकि बड़े वृक्ष बड़े तनाव पालते हैं, बड़े अकड़े होते हैं। ऊंचे होने का पागलपन और अहंकार हो जाता है। तूफान आते हैं तो बड़े वृक्ष गिर जाते हैं, छोटे घास के पौधे झुक जाते हैं। तूफान चला जाता है, पौधे वापस खड़े हो जाते हैं।
जिंदगी तूफान है, बहुत आंधियां हैं वहां। चौबीस घंटे न मालूम क्या- क्या चारों ओर हो रहा है। जो आदमी एक-एक तूफान में टूटेगा, वह आदमी टूट ही जाएगा। जो आदमी प्रत्येक तूफान में जानेगा--यह भी बीत जाएगा, वह आदमी हर तूफान के बाद फिर खड़ा हो जाएगा। और जो सैकड़ों तूफानों के बाद खड़ा हो जाता है, फिर उसे तूफान तूफान नहीं, खेल मालूम पड़ने लगते हैं। फिर तूफान घबड़ाते नहीं, लीला हो जाते हैं।
धार्मिक व्यक्ति के चित्त निर्माण में यह दूसरा सूत्र भी बहुत जरूरी
है कि हम जिंदगी में ऐसे गुजर जाएं जैसे कोई आदमी पानी से गुजरे और पानी उसके पैरों को न छुए। बड़ा मुश्किल है! पानी से गुजरेगा तो पानी तो पैरों को

छुएगा ही। लेकिन जिंदगी से जरूर आदमी ऐसे गुजर सकता है कि जिंदगी उसे न छुए। जिंदगी छूती नहीं, हम पकड़ लेते हैं।
अब बुद्ध चाहते तो पकड़ सकते थे कि यह आदमी थूक गया, इसने क्यों थूका?
अब मैं क्या करूं और क्या न करूं? और रात भर चिंतित हो सकते थे। वे पकड़ लेते।
थूक आया और गया, गाली आई और गई। पकड़ते हैं हम, जिंदगी हमें कुछ नहीं पकड़ाती। हम जोर से पकड़ लेते हैं। और हमारी पकड़, हमारी क्लिंगिंग हमारी चिंता, हमारी बेचैनी बन जाती है। और धीरे-धीरे हम इतने अशांत हो जाते हैं कि हम लोगों से पूछते फिरते हैं कि शांत कैसे हों? मेरे पास न मालूम कितने लोग आते हैं। वे कहते हैं, शांत कैसे हों?
मैं उनसे पूछता हूं कि पहले तुम मुझे बताओ कि तुम अशांत कैसे हुए? क्योंकि जब तक यह पता न चल जाए कि तुम कैसे अशांत हुए, तो शांत कैसे हो सकोगे!
एक आदमी मेरे पास लाया गया। उसने कहा, मैं अरविंद आश्रम से आता हूं। शिवानंद के आश्रम गया हूं। महेश योगी के पास गया हूं। ऋषिकेश हो आया। यहां गया, वहां गया। रमण के आश्रम गया हूं। कहीं शांति नहीं मिलती। तो किसी ने आपका मुझे नाम दिया तो मैं आपके पास आया हूं।
तो मैंने कहा, इसके पहले कि तुम निराश होकर लौट जाओ, तुम लौट जाओ पहले ही। नहीं तो तुम और लोगों से भी जाकर कहोगे कि वहां भी गया और शांति नहीं मिली। तो तुम अभी ही लौट जाओ, इसके आगे बात करनी उचित नहीं है।
उसने कहा, क्या मतलब आपका? मैं तो बड़ी आशा से आया हूं।
तो मैंने उस आदमी को कहा कि अशांति सीखने तुम किस आश्रम में गए थे? किस गुरु से अशांति सीखी? अशांति तुम सीखोगे और शांति मैं न दे पाऊंगा तो अपराधी मैं हो जाऊंगा। मैंने उस आदमी से पूछा, तुम फिकर छोड़ो शांति की, तुम मुझे यह बताओ कि तुम अशांत कैसे हुए? क्योंकि जो अशांत होने का ढंग है उसी में कुंजी छिपी है शांत होने की, और कहीं कोई शांति नहीं खोज सकता।
अशांत होते हैं हम, जिंदगी के साथ जोर से चिपक जाते हैं इसलिए अशांत होते हैं। जिंदगी को बहने नहीं देते, तिनके की तरह आड़े लड़ते हैं जिंदगी से, तो अशांत होते हैं। उस तिनके की तरह सीधे नहीं नदी में बह जाते। नहीं तो फिर अशांति का कोई कारण नहीं है। अशांत हम होते हैं, हमारा जीवन के प्रति जो ढंग है, उससे। वह जो हमारा वे ऑफ लिविंग है, उससे हम अशांत होते हैं। और शांति हम खोजते हैं कि किसी मंत्र से मिल जाए, किसी माला से मिल जाए। शांति हम खोजते हैं कि किसी के आशीर्वाद से मिल जाए। शांति हम खोजते हैं कि परमात्मा की कृपा से मिल जाए। हम अशांत होने का पूरा इंतजाम करते चले जाते हैं और शांति खोजते रहते हैं। तब यह शांति की खोज सिर्फ एक और नई अशांति बन जाती है, और कुछ भी नहीं होता।
इसलिए साधारण आदमी साधारण रूप से अशांत होता है, धार्मिक आदमी असाधारण रूप से अशांत हो जाता है। क्योंकि वह कहता है, शांति भी चाहिए। और वह जो चाहिए था सब, वह तो चाहिए ही--वह धन भी चाहिए, वह यश भी चाहिए, वह पद भी चाहिए--वह सब तो चाहिए ही, शांति भी चाहिए। उसकी फेहरिस्त में एक आयटम चाह का और बढ़ गया--शांति भी चाहिए। आगे लिखेगाः परमात्मा भी चाहिए। और उसकी अशांति और बढ़ जाएगी। इसलिए किसी घर में एक आदमी तथाकथित धार्मिक हो जाए, तो खुद तो अशांत होता है, बाकी लोगों को भी शांत रहने देने में दिक्कत डालने लगता है। सबको गड़बड़ कर देता है। शांति चाहिए, यह भी उसके लिए अशांति ही बन जाती है।
शांति चाही नहीं जा सकती, सिर्फ अशांति समझी जा सकती है। शांति को चाहा ही नहीं जा सकता, क्योंकि चाह अशांति है। इसलिए शांति को कैसे चाहिएगा? वह तो कंट्राडिक्ट्री हो जाएगी। शांति को कोई नहीं चाह सकता। शांति को डिजायर ऑब्जेक्ट नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि सब इच्छाएं अशांति पैदा करती हैं, इसलिए शांति इच्छा नहीं बन सकती। सिर्फ अशांति को कोई समझ ले और अशांत न हो, तो जो शेष रह जाता है उसका नाम शांति है। शांति एब्सेंस है। शांति सिर्फ अभाव है।
स्वास्थ्य क्या है? अगर किसी डाक्टर से पूछें जाकर--स्वास्थ्य क्या है? तो वह कहेगा--बीमारियों का अभाव। इसलिए अगर किसी डाक्टर से कहें कि

मुझे स्वास्थ्य का इंजेक्शन लगा दें! तो वह कहेगा, क्षमा करें मुझे। हम बीमारी काटने का इंजेक्शन लगा सकते हैं, स्वास्थ्य का कोई इंजेक्शन नहीं है। डाक्टर से आप कहें कि हमें स्वास्थ्य दे दीजिए! तो वह कहेगा, हम बीमारी छीन सकते हैं, स्वास्थ्य कैसे दे देंगे? हां, बीमारी नहीं बचेगी तो जो बच रहेगा वह स्वास्थ्य है।
इसलिए किसी मेडिकल साइंस की किसी किताब में--चाहे आयुर्वेद हो, और चाहे एलोपैथी हो, और चाहे होमियोपैथी हो--स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नहीं है, कोई डेफिनीशन नहीं है कि स्वास्थ्य क्या है। सिर्फ बीमारियों की परिभाषाएं हैं कि बीमारी क्या है। और जहां बीमारी नहीं होती, वहां जो शेष रह जाता है, वह स्वास्थ्य है। इसलिए स्वास्थ्य की सब परिभाषाएं निगेटिव हैं, सब नकारात्मक हैं। बीमारी जहां नहीं है, वहां स्वास्थ्य है।
अशांति के कारण जहां नहीं हैं, वहां शांति है।
और ध्यान रहे, अगर आप सोचते हों कि परमात्मा हमें शांति दे दे, तो आप बड़ी गलती में पड़ेंगे। परमात्मा से आपका संबंध ही तब होगा जब आप शांत होंगे। इसलिए परमात्मा कोई शांति नहीं दे सकता। अगर आप सोचते हों कि परमात्मा हमें शांति दे दे, तो आप बड़ी गलत कंडीशन लगा रहे हैं। परमात्मा से संबंध ही तब होता है जब आप शांत हों। और जिससे संबंध ही नहीं है, उसकी तरफ की गई प्रार्थना अंधेरे में फिंक जाती है, कहीं नहीं पहुंचती। जिससे संबंध नहीं, कम्युनिकेशन नहीं, उसके साथ प्रार्थना का संबंध नहीं बन पाता। शांत आदमी ही प्रार्थना कर सकता है।
लेकिन अब तक अशांत आदमी प्रार्थना करता रहता है। और अशांत आदमी सोचता है--हमारी प्रार्थना सुनी नहीं जा रही। वह ऐसा ही है कि टेलीफोन बिना उठाए आदमी बोले चला जा रहा है और सोचता है--दूसरी तरफ कोई सुन नहीं रहा!
मैंने सुना है कि एक आदमी ने अपने घर की कॉलबेल सुधरवाने के लिए एक मेकेनिक को बुलाया हुआ था। बाहर जो घंटी लगी है घर के भीतर बुलाने की। दो दिन बीत गए, तीन दिन बीत गए, वह मेकेनिक नहीं आया। तो उसने फिर उसे फोन किया कि तुम आए नहीं, मैं तीन दिन से रास्ता देख रहा हूं।
उसने कहा, मैं आया था, मैंने कॉलबेल बजाई थी, लेकिन किसी ने दरवाजा नहीं खोला।
अब उसको कॉलबेल सुधरवाने के लिए बुलाया हुआ था। वह सज्जन ने कॉलबेल बजाई, किसी ने नहीं सुनी इसलिए वापस लौट गए।
अधिक लोगों की प्रार्थनाएं इसी तरह की कॉलबेल पर हाथ रखना है, जो बिगड़ी पड़ी है, जो कहीं नहीं बजेगी। वे जिंदगी भर प्रार्थना करते रहें, कहीं नहीं सुनी जाएगी। फिर नाराज परमात्मा पर होंगे आप।
नाराज अपने पर हों, परमात्मा का इसमें कोई कसूर नहीं है। परमात्मा के साथ कम्युनिकेशन का, संवाद का जो पहला सूत्र है, वह शांति है। शांति के ही द्वार से हम उससे संबंधित होते हैं। या इससे उलटा कहें तो ज्यादा अच्छा होगा। अशांति के कारण हम उससे डिसकनेक्ट हो जाते हैं, अशांति के कारण हम असंबंधित हो जाते हैं। शांति के कारण हम संबंधित हो जाते हैं। शांति संबंध है, अशांति असंबंध है। बीच का तार कट गया, टूट गया।
इसलिए परमात्मा से शांति मत मांगना, शांति आप लेकर जाना उसके द्वार पर। आनंद उससे मिल सकता है, शांति आपको बनानी पड़ेगी।
इसे थोड़ा समझ लेना उचित होगा। शांति हमारी पात्रता है, आनंद उसका प्रसाद है। शांत हमें होना होगा, आनंद से वह हमें भर देगा। शांति हमारी पात्रता है, आनंद उसकी वर्षा है। तो आनंद तो प्रसाद है। आप आनंदित नहीं हो सकते, आप सिर्फ शांत हो सकते हैं। आनंद बरसेगा। ऐसा समझें, शांति हमारा पात्र है और आनंद उसकी नदी है, जिससे हम अपने पात्र में पानी को भर लाते हैं।
लेकिन आप बिना ही पात्र के नदी के पास चले गए हैं और चिल्ला रहे हैं,
और नदी से ही कह रहे हैं कि पात्र दे दे!
नदी पानी दे सकती है, पात्र आपके पास होना चाहिए। परमात्मा से लोग पात्र मांग रहे हैं। पात्र तो आपको होना पड़ेगा।
इसलिए दूसरा सूत्र आपकी पात्रता के लिए कह रहा हूंः जीवन को पकड़ें मत, बहने दें। फिर आप अशांत न होंगे। पकड़ अशांति लाती है। जिस चीज को पकड़ लेते

हैं, वही अशांति ले आती है। चाहे आप प्रेम को पकड़ लें। कल एक आदमी मित्र था, आज मित्र नहीं है, तो आप अशांत हो रहे हैं। क्यों अशांत हो रहे हैं? इतना ही क्या कम है कि वह कल मित्र था। आज भी मित्र हो, यह आपकी पकड़ है। आप कह रहे हैं, कल मित्र थे तो आज भी मित्र होना ही चाहिए। बस अब आप अशांत होंगे। इतना ही क्या कम है कि वह कल मित्र था। कल के लिए धन्यवाद दे दें और बात समाप्त हो गई। तो फिर अशांत न होंगे।
अपेक्षाएं हमारी, एक्सपेक्टेशंस हमारी पकड़े हैं। हम कहते हैं, ऐसा होना ही चाहिए।
अभी एक मित्र के घर में मैं ठहरा था। वे बड़े परेशान थे। टैं्रक्वेलाइजर पर टैं्रक्वेलाइजर ले रहे थे और नींद आती नहीं थी, और बड़े बेचैन थे, और चिकित्सकों ने कहा कि इनको तो अब शायद बिजली के शॉक देने पड़ेंगे। पुराने मित्र थे, उनके घर मैं गया था। तो मैंने पूछा कि बात क्या है?
तो वे कहने लगे, बड़ा नुकसान लग गया। कोई पांच लाख रुपये का नुकसान लग गया।
मुझे कुछ पता नहीं था। मैंने उनकी पत्नी से पूछा कि ये ठीक कह रहे हैं? उसने कहा कि एक लिहाज से तो ठीक कह रहे हैं। लेकिन दूसरे लिहाज से ठीक नहीं कह रहे हैं। इनसे पूछिए, लाभ कितना हुआ?
तो मैंने उनसे पूछा, लाभ कितना हुआ?
उन्होंने कहा, लाभ क्या कुछ खास नहीं हुआ, एक लाख रुपये का ही लाभ हुआ। पांच लाख का नुकसान हो गया।
वे सज्जन छह लाख रुपये की आशा बांधे हुए थे कि छह लाख का लाभ होगा। पांच लाख का नुकसान हो गया, क्योंकि लाख का ही लाभ हुआ। अब उनकी नींद हराम हो गई है, अब वे परेशान हुए जा रहे हैं। तब मुझे पता चला कि उनकी हानि जो है वह बड़ी अदभुत है। लेकिन हम सब की हानियां भी ऐसी ही हैं। हम सब की हानियां ऐसी ही हैं। हम जो एक्सपेक्ट करते हैं, उतना पूरा नहीं होता तो हानि लगती है।
एक आदमी से रास्ते पर मैं आशा करता हूं कि वह नमस्कार करे। नहीं करता, दुख शुरू हो गया। लेकिन मुझे क्या हक है कि मैं अपेक्षा करूं कि वह नमस्कार करे? नमस्कार न करे, दुख हो गया। अगर वह पत्थर मार दे तो और दुख हो गया। लेकिन उसने पत्थर ही मारा, चट्टान नहीं पटक दी, यही कोई कम है?
बुद्ध का एक शिष्य था, पूर्ण काश्यप। जब उसकी शिक्षा पूरी हो गई तो बुद्ध ने उससे कहा कि अब तुम जाओ और मेरे संदेश को लोगों तक पहुंचा दो।
तो उस पूर्ण ने कहा कि मैं सूखा नाम की एक जगह है बिहार में, वहां जाना चाहता हूं।
बुद्ध ने कहा, वहां मत जा, वहां के लोग अच्छे नहीं हैं।
तो पूर्ण ने कहा, जहां के लोग अच्छे हैं, वहां जाकर भी मैं क्या करूंगा? जहां लोग अच्छे नहीं हैं, वहीं जाने की आज्ञा दें। वहीं मेरी जरूरत भी है। चिकित्सक की जरूरत है कि बीमारों में जाए, शिक्षक की जरूरत है कि अज्ञानियों में जाए। तो मेरी जरूरत वहां है, साधु की जरूरत वहां है जहां असाधु हों। तो मुझे वहां जाने दें।
बुद्ध ने कहा, तू जा जरूर, लेकिन मेरे तीन सवालों का जवाब देता जा। पहला तो यह कि अगर वहां के लोग तुझे गालियां दें, अपमानजनक शब्द बोलें, तो तेरे मन को क्या होगा?
उसने कहा, मेरे मन को होगा कि लोग बहुत अच्छे हैं, क्योंकि सिर्फ गालियां देते हैं, मार-पीट नहीं करते, इतना ही क्या कम है!
बुद्ध ने कहा, और अगर वे मार-पीट ही करने लगें, तो तेरे मन को क्या होगा?
तो उसने कहा, मेरे मन को होगा कि लोग बहुत अच्छे हैं, सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते। मार डाल भी सकते हैं।
बुद्ध ने कहा, बस आखिरी सवाल और कि अगर वे तुझे मार ही डालें, तो मरते क्षण में, आखिरी क्षण में तेरे मन को क्या होगा?

तो उस पूर्ण ने कहा कि मेरे मन को होगा कि अच्छे लोग हैं, उस जीवन से छुटकारा दिला दिया जिसमें कोई भूल-चूक हो सकती थी, जिसमें कोई भटकाव हो सकता था, कोई गलती हो सकती थी।
अब ऐसे आदमी को अशांत आप नहीं कर सकते। और ऐसा आदमी ही शांति का पात्र
बन जाता है। और ऐसे आदमी की जिंदगी में ही परमात्मा के आनंद की वर्षा होती है।
इसलिए दूसरा सूत्र आपसे कहता हूंः जीवन में कुछ भी पकड़ें मत। अपेक्षा में भी मत पकड़ें, तथ्य में भी मत पकड़ें, आकांक्षा में भी मत पकड़ें। पकड़ने के कारण सिवाय दुख के और कभी कुछ भी नहीं मिला है, न मिल सकता है।
लेकिन हम जोर से पकड़े चले जाते हैं। हर चीज पकड़े चले जाते हैं। और तब अपने चारों तरफ इतने पकड़ का जाल बुन लेते हैं कि दुख ही दुख, अशांति ही अशांति जीवन को घेर लेती है। फिर सिर्फ हम एक राख के एक ढेर रह जाते हैं जिसमें अशांति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है।
तीसरी बात आपसे कहूं। और ये तीन सूत्र अगर आप ख्याल में ले लें तो आप परमात्मा की फिकर छोड़ सकते हैं, क्योंकि फिर परमात्मा आपकी फिकर कर लेता है। परमात्मा को बिल्कुल फिर आप भूल सकते हैं, क्योंकि फिर परमात्मा आपको नहीं भूल सकता है। पहला सूत्र, दूसरा, अब तीसरा मैं आपसे कहूं। तीसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं और वह यह कि जो हमें दिखाई पड़ता है, जो हमें सुनाई पड़ता है, जो हमारी समझ में आता है, उतना ही सब कुछ नहीं है। बहुत कुछ है जो हमें दिखाई नहीं पड़ता। बहुत कुछ है जो हमें सुनाई नहीं पड़ता। बहुत कुछ है जो हमारी समझ में नहीं आता। उचित भी यही है। हमारी समझ की भी सीमा है, आंख की भी सीमा है, कान की भी सीमा है। हम सीमित हैं। लेकिन मनुष्य अपनी सीमा को अस्तित्व की सीमा मान लेता है, तब कठिनाई शुरू हो जाती है। वह कहता है, जो मुझे दिखाई पड़ता है वही सत्य है। तब जो दिखाई नहीं पड़ता, उसे वह असत्य कहने लगता है। वह कहता है, जो मुझे सुनाई पड़ता है वही है, जो नहीं सुनाई पड़ता वह नहीं है। और बहुत कुछ है जीवन में जो सुनाई नहीं पड़ता है और है। बहुत कुछ है जीवन में जो हाथ की पकड़ में नहीं आता है और है। लेकिन हम साधारणतः अपनी सीमाओं को जीवन की सीमाएं समझ लेते हैं।
जिस आदमी ने अपनी सीमाओं को जीवन की सीमाएं समझा, उसी आदमी को मैं अधार्मिक आदमी कहता हूं। उसे चाहे नास्तिक कहें, उसे चाहे हम मैटीरियलिस्ट कहें, भौतिकवादी कहें, कोई भी नाम दे दें। जिस आदमी ने अपनी सीमाओं को जीवन की सीमा समझा, उसे मैं अधार्मिक आदमी कहता हूं। यह ऐसे ही है जैसे बूंद अपनी सीमा को सागर की सीमा समझे। हम बूंद से ज्यादा नहीं हैं। हम अपनी सीमा को जगत पर न थोपें।
इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि जो आपको दिखाई पड़े, कहना, वहां तक मुझे दिखाई पड़ता है; आगे होगा, मुझे दिखाई नहीं पड़ता। जो मेरी हाथ की पकड़ में आता है, वह मेरी पकड़ में आता है; आगे मेरी पकड़ में नहीं आता, होगा कि नहीं होगा, मैं कोई निर्णय नहीं ले सकता हूं।
क्यों यह तीसरा सूत्र आपसे कह रहा हूं?
क्योंकि परमात्मा आपके द्वार में प्रवेश करता है रहस्य के मार्ग से, मिस्ट्री के मार्ग से। हमने अपनी जिंदगी में सब रहस्य बंद कर लिया है। रहस्य है ही नहीं कहीं। सब चीजें हमें मालूम हैं; हालांकि कुछ भी मालूम नहीं है। सब हमें पता है; हालांकि कुछ भी पता नहीं है। डाक्टर हजारों बीमारों को ठीक कर रहा है। फिर भी उसे पता नहीं है कि वह क्या है जो स्वास्थ्य है। उसे कुछ भी पता नहीं है। लाखों मरीजों को मरने से बचा रहा है या मरने में सहयोग दे रहा है। लेकिन उसे कुछ भी पता नहीं है कि वह क्या है जो जीवन है।
एक छोटी सी घटना मुझे आती है याद। एडीसन एक गांव में गया हुआ था। और गांव के स्कूल में एक प्रदर्शनी भरी है और गांव के स्कूल के बच्चों ने बहुत से खेल-खिलौने बनाए हैं। एडीसन ने तो एक हजार आविष्कार किए। विज्ञान के इतने आविष्कार किसी दूसरे आदमी ने नहीं किए। और इलेक्ट्रिसिटी का तो वह सबसे बड़ा ज्ञाता था। तो उस गांव के स्कूल में गया है देखने। बूढ़ा आदमी-- और जब ज्ञानी, बूढ़ा, सच में ज्ञानी होता है, तो बच्चों से भी, और बच्चे भी कुछ कर रहे हैं, इससे भी सीखने चला जाता है। सोचा कि पता नहीं बच्चों ने

क्या किया है? वह गया। अब बच्चे क्या करते? कहीं नाव बनाई हुई है छोटी सी, बिजली से चलती है। मोटर बनाई है, ट्रेन बनाई है। वह पूछने लगा बच्चों से। उसे कोई जानता नहीं उस गांव में कि वह एडीसन है। वह बच्चों से पूछने लगा कि यह कैसे चल रही है?
तो उन बच्चों ने कहा, इलेक्ट्रिसिटी से चल रही है।
तो उसने पूछा, व्हाट इ.ज इलेक्ट्रिसिटी? बिजली क्या है?
तो उन बच्चों ने कहा कि यह तो हम न बता सकेंगे। हम तो सिर्फ बटन दबा कर इसको चला कर बता सकते हैं। लेकिन हमारा शिक्षक है, वह ग्रेजुएट है। हम उसको बुला लाते हैं, वह शायद आपको बता सके। वह शिक्षक बी.एससी. है, वह आ गया। उसको पूछा, यह बिजली क्या है?
तो उसने कहा, बिजली! बिजली एक प्रकार की शक्ति है।
उसने कहा कि फिर भी वह शक्ति क्या है?
तो उसने कहा, यह तो आप जरा कठिन सवाल पूछते हैं, यह मुझसे नहीं बन सकेगा। हमारा प्रिंसिपल डी.एससी. है, वह डाक्टर ऑफ साइंस है, उसको हम बुला लाते हैं।
वह डाक्टर ऑफ साइंस आ गया। उनको किसी को पता नहीं है कि सामने जो आदमी खड़ा है वह एडीसन है। वह पूछता है कि बिजली क्या है? तो वह जो डी.एससी. है, प्रिंसिपल, वह बताता है बिजली कैसे पैदा होती है।
तो वह कहता है, मैं यह नहीं पूछता कि कैसे पैदा होती है, मैं यह पूछ रहा हूं कि जो पैदा होती है वह क्या है?
तो वह डाक्टर बताता है, बिजली कैसे काम करती है। हाउ इट वर्क्स।
तो वह एडीसन कहता है, मैं यह नहीं पूछा कि वह कैसे काम करती है। मैं यह पूछता हूं, वह क्या है जो काम करती है?
उसने कहा, आप बड़े कठिन सवाल पूछ रहे हैं, इनका बड़ा मुश्किल है।
तो वह बूढ़ा एडीसन हंसने लगा, उसने कहा, घबड़ाओ मत, मैं एडीसन हूं और मैं
भी नहीं जानता कि बिजली क्या है! मैं भी इतना ही बता सकता हूं--कैसे काम करती है, कैसे पैदा होती है। मैं भी नहीं जानता कि बिजली क्या है!
यह आदमी धार्मिक आदमी हो सकता है। इसकी जिंदगी में रहस्य का द्वार खुला है। लेकिन हम? हम सब तरफ से रहस्य का द्वार बंद कर लेते हैं। सब चीजें, ऐसा लगता है, हमें मालूम हैं। जिस आदमी को ऐसा लगता है सब मालूम है, वह क्लोज्ड हो गया, बंद हो गया। उसके दरवाजे, द्वार, खिड़कियां, सब बंद हो गए। अब परमात्मा कहीं से भी कोशिश करे, तो उसने रंध्र भी नहीं छोड़ी है कि उसमें प्रवेश कर जाए।
मिस्ट्री धर्म है। रहस्य धर्म है।
इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं कि प्रतिपल रहस्य को खोजते रहना। सुबह सूरज निकले तो भी खोजना कि रहस्य कहां है? रात तारे निकलें आकाश में तो भी खोजना कि रहस्य कहां है? बच्चे की आंखें चमकें तो भी खोजना कि रहस्य कहां है? स्त्री का चेहरा सुंदर मालूम पड़े तो भी खोजना कि सौंदर्य का रहस्य कहां है? फूल खिले तो भी खोजना कि रहस्य कहां है? पक्षी गीत गाएं तो भी खोजना कि रहस्य कहां है?
यह पूरी जिंदगी चारों तरफ बड़ी अज्ञात ध्वनियों से भरी है। यह पूरी जिंदगी चारों तरफ बड़े अज्ञात पदचापों से भरी है। यह पूरी जिंदगी में चारों तरफ रहस्य ही रहस्य है। हम अंधे हैं, हम कान बंद किए बैठे हैं। हम ज्ञानी हैं, हम क्लोज्ड हैं, हमने द्वार-दरवाजे बंद कर लिए हैं। यहां हर चीज रहस्य है--मिट्टी का एक कण, सूरज की एक किरण, फूल का खिलना--सब रहस्य है। लेकिन हम बिल्कुल बंद हैं।
जो आदमी इस तरह बंद है, क्लोज्ड माइंड है, उस आदमी की जिंदगी में कैसे परमात्मा प्रवेश करे? द्वार खुला चाहिए।
तीसरा सूत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि आपकी जिंदगी रहस्य को खोजने में समर्थ हो जाए। और आप अगर हर जगह रहस्य को देखने लगे और ऐसी जगह आपको रोज-रोज मिलने लगे जहां आपका ज्ञान काम न पड़े, जहां आपका ज्ञान गिर जाए, जहां आपकी समझदारी व्यर्थ हो जाए, जहां आपकी बुद्धि इनकार कर दे आगे जाने से, तो आप समझना कि जगह-जगह से परमात्मा से आपके संबंध होने शुरू हो गए। परमात्मा का जो पहला अनुभव है, वह रहस्य की भांति ही प्रवेश करता है। उसकी

जो पहली प्रतीति है, उसकी जो पहली पुलक है, उसका जो पहला स्पर्श है, वह रहस्य का स्पर्श है।
हमारी यह जो दुनिया है, जितने हम सभ्य होते चले गए हैं, उतनी ही रहस्य
से दूर आती चली गई है। इस दुनिया के अधार्मिक होने का कारण और कुछ भी नहीं है, हम धीरे-धीरे रहस्य से दूर आते चले गए हैं। और अब हमने एक अपने चारों तरफ जो सभ्यता का जाल बनाया है, वह आदमी का बनाया हुआ है, इसलिए उसमें कोई रहस्य नहीं है। सीमेंट की सड़क में क्या रहस्य हो सकता है? हमारी बनाई हुई है। सीमेंट के बड़े मकानों में क्या रहस्य हो सकता है? चंडीगढ़ के मकानों में बहुत रहस्य नहीं हो सकता। आदमी के अपने बनाए हुए हैं, ढाले हुए हैं। न्यूयार्क की सड़कों में रहस्य क्या हो सकता है? बड़े कारखाने में, मशीनों के बीच रहस्य क्या हो सकता है? जो भी आदमी ने बनाया है, उसमें रहस्य नहीं हो सकता। क्योंकि जो आदमी ने ही बनाया है, उसमें रहस्य का सवाल कहां है! जिसे हम बना सकते हैं, वह रहस्य नहीं है। इसलिए जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ी है, वैसे-वैसे प्रकृति और जगत और विश्व का जो रहस्य है, उसके और हमारे बीच दीवाल खड़ी हो गई है।
लंदन में पिछली बार बच्चों का एक सर्वे किया गया। तो दस लाख बच्चों ने
यह कहा कि उन्होंने गाय नहीं देखी है। सात लाख बच्चों ने यह कहा कि उन्होंने खेत नहीं देखा है। सात लाख बच्चे, उन्होंने खेत नहीं देखा है! जिस बच्चे ने खेत नहीं देखा है, इस बच्चे की जिंदगी में परमात्मा आसान होगा? बहुत मुश्किल हो जाएगा। सब आदमी का बनाया हुआ इंतजाम है। आदमी का बनाया हुआ इंतजाम मेकेनिकल डिवाइस है, उसमें रहस्य नहीं है, उसमें मिस्ट्री नहीं है। परमात्मा का एक बीज भी टूटे तो रहस्य है और आदमी एटम बम भी फोड़ डाले तो रहस्य नहीं है।
तो जिंदगी में रहस्य की खोज। सुबह उठ जाएं, जब अभी आखिरी तारे डूबने
को हैं। कुछ न करें। जरूरत नहीं कि किसी मस्जिद में जाएं। मस्जिद आदमी की बनाई हुई है, बहुत रहस्य नहीं है। जरूरत नहीं कि किसी मंदिर में जाएं। मंदिर आदमी का बनाया हुआ है, बहुत रहस्य नहीं है। जरूरत नहीं कि किसी आदमी की बनाई हुई प्रतिमा के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो जाएं। आदमी की बनाई हुई प्रतिमा में बहुत रहस्य नहीं है। सुबह जब आखिरी तारे डूबते हों, तब हाथ जोड़ कर उन तारों के पास बैठ जाएं और उन तारों को डूबते हुए, मिस्ट्री में खोते हुए देखते रहें। और आपके भीतर भी कुछ डूबेगा, आपके भीतर भी कुछ गहरा होगा। सुबह से उगते हुए सूरज को देखते रहें। कुछ न करें, सिर्फ देखते रहें। उगने दें। उधर सूरज उगेगा, इधर भीतर भी कुछ उगेगा। खुले आकाश के नीचे लेट जाएं और घंटे दो घंटे, सिर्फ आकाश को देखते रहें, तो विस्तार का अनुभव होगा। कितना विराट है सब, आदमी कितना छोटा है! फूल को खिलते हुए देखें, चिटकते हुए, उसके पास बैठ जाएं, उसके रंग और उसकी सुगंध को फैलते देखें। एक पक्षी के गीत के पास कभी रुक जाएं, कभी किसी वृक्ष को गले लगा कर उसके पास बैठ जाएं। और आदमी के बनाए मंदिर-मस्जिद जहां नहीं पहुंचा सकेंगे, वहां परमात्मा का बनाया हुआ रेत का कण भी पहुंचा सकता है। वही है मंदिर, वही है मस्जिद।
लेकिन आदमी बड़ा होशियार है, वह अपने लिए भी मकान बनाता है, परमात्मा
के लिए भी मकान बना देता है। कहता है, हम इधर रहेंगे, तुम इधर रहो। कभी भी जरूरत होगी, आ जाएंगे, मिल लेंगे, दो बात कर लेंगे, ताला डाल कर वापस चले जाएंगे कि कहीं भाग भी न जाओ। एक नौकर रख देंगे, एक पुजारी बिठा देंगे, वह तुम्हारी पूजा भी कर देगा, अगर हमें फुर्सत न मिली तो वह फूल चढ़ा देगा। धर्म को हमने फॉर्मल, औपचारिक बनाया हुआ है।
परमात्मा सब तरफ मौजूद है। ऐसा नहीं कह रहा हूं कि मंदिर में मौजूद नहीं है। लेकिन जिसे सब जगह दिखाई पड़ेगा, उसे मंदिर में भी दिखाई पड़ सकता है। लेकिन जिसे सिर्फ मंदिर में होने का ख्याल है, उसे कहीं भी दिखाई नहीं पड़ सकता। वह असंभव है। वह असंभव है।
जिंदगी चारों तरफ से उसकी खबर दे रही है। उत्सुकता चाहिए, रहस्य का भाव चाहिए, आश्चर्य का बोध चाहिए। रुक कर ठहर कर देखने की क्षमता चाहिए।
एक परसेप्शन चाहिए, एक दृष्टि चाहिए।

यह तीसरा सूत्र आपसे कहता हूंः रहस्य को स्मरण रखें और दिन में दस-पांच बार कोई न कोई जगह खोज लें, जहां से रहस्य से आपका संबंध हो जाए। एक बच्चा मुस्कुरा रहा है रास्ते पर, तो खड़े हो जाएं दो क्षण, उसकी हंसी को देख लें। किसी की आंख से आंसू टपक रहा है, तो दो क्षण रुक जाएं, उसके आंसू को टपकते देख लें। जिंदगी में चारों तरफ न मालूम कितनी महत्वपूर्ण घटनाएं प्रतिपल घट रही हैं। लेकिन हम आदी हो गए हैं, हैबिचुअल हो गए हैं, उनकी तरफ देखते ही नहीं, बस भागे चले जा रहे हैं--कोई अपनी दुकान जा रहा है, कोई अपने मंदिर जा रहा है, कोई बाजार जा रहा है, कोई आश्रम जा रहा है--भागे जा रहे हैं। और जिंदगी चारों तरफ पुकार रही हैः कहां भागे जा रहे हो? जिसे तुम खोज रहे हो वह यहां है!
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूं।
मैंने सुना है कि सुबह एक मंदिर में एक आदमी आया। अभी सुबह सूरज निकलने में देर है, लेकिन पक्षियों ने धीमे-धीमे गीत गाने शुरू कर दिए हैं। उसने मंदिर का द्वार खोल लिया। वह मंदिर की मूर्ति के सामने हाथ जोड़ कर बैठ गया और वह कहने लगा कि परमात्मा, तू कहां है? मुझे दर्शन दे!
एक फकीर भी उस मंदिर में एक कोने में दुबका हुआ रात भर पड़ा रहा था। वह आदमी चिल्लाता रहा भगवान के सामने कि मुझे दर्शन दे, तू कहां है? मुझे दर्शन दे, तू कहां है? वह फकीर बाहर निकला और उस आदमी को हिलाया और कहा कि पागल, बाहर पक्षी चिल्ला कर कह रहे हैं--यहां है! बाहर खिलने वाले फूल कह रहे हैं--यहां है! बाहर निकलने वाला सूरज कह रहा है--यहां है! तू सुनता क्यों नहीं?
उस आदमी ने कहा, मेरी पूजा में बाधा मत डालो! नास्तिक मालूम पड़ते हो। हटो यहां से, मुझे अपनी पूजा करने दो।
वह फिर अपनी पूजा करने लगा--हे भगवान, तू कहां है? मुझे दर्शन दे!
जो आदमी कहता है--हे भगवान, तू कहां है? मुझे दर्शन दे! उसे दर्शन नहीं
हो सकेंगे। क्योंकि जो पूछता है--व्हेयर? वह गलत बात पूछ रहा है। क्योंकि जो एवरीव्हेयर है, उसके बाबत व्हेयर-व्हेयर नहीं किया जा सकता। कहां है? जो यह पूछ रहा है, वह बात ही गलत पूछ रहा है। धार्मिक आदमी पूछता है कि हे परमात्मा, तू कहां नहीं है? धार्मिक आदमी नहीं पूछता--कहां है? वह तो जैसे- जैसे खोजता है, वैसे-वैसे पाता हैः सब जगह वही है।
और जिस दिन सब जगह उसकी पगध्वनि सुनाई पड़ती है, उसका स्वर सुनाई पड़ता है, उस दिन ही आप मिट जाते हैं। उस दिन ही आप समाप्त हो जाते हैं। उस दिन ही गई बूंद, हो गई सागर। और ऐसा नहीं है कि बूंद जब सागर में खोती है तो बूंद का कुछ खोता है। नहीं, बूंद जब सागर में खोती है तो बूंद सिर्फ सागर को पा लेती है। खोती कुछ भी नहीं, सिर्फ पाती है।
कबीर के एक वचन से अपनी बात पूरी कर दूं। कबीर ने कहीं कहा है किः हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
खोजते-खोजते कबीर खो गया। बड़ी मजे की बात है! निकला था खोजने और खोजने में खो गया! खोजते-खोजते कबीर खो गया।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।
और बूंद जो है वह समुद्र में गिर गई, अब उसे कैसे खोजा जाए?
लेकिन कुछ दिनों बाद कबीर ने अपने मित्रों को बुला कर कहा कि बदल लो,
वह बात गलत थी। वह सूत्र बदल लो।
मित्रों ने कहा, बड़ा सुंदर सूत्र हैः
हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।
मित्रों ने कहा, बड़ा सुंदर सूत्र है।
कबीर ने कहा, बदलो। क्योंकि वह बूंद की तरफ से लिखा गया था। तब तक मुझे सागर का पता नहीं था। अब सागर की तरफ से लिखना है, क्योंकि अब मुझे बूंद का पता नहीं है। तो कबीर ने सूत्र बदलवा दिया और दूसरा सूत्र लिखवाया। और दूसरा सूत्र हैः
हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।।

समुद्र बूंद में समा गया, अब कैसे निकाला जाए? पहला सूत्र थाः बूंद समुद्र में समा गई, अब कैसे निकाली जाए? पहले सूत्र में तो बूंद निकाली भी जा सकती है, लेकिन दूसरे सूत्र में बड़ी मुश्किल हो गई, और मुश्किल हो गई, क्योंकि समुद्र बूंद में समा गया।
जब पहली दफे व्यक्ति परमात्मा का अनुभव करता है तो ऐसा ही लगता है-- बूंद समुद्र में समा गई। लेकिन दूसरे ही क्षण पता चलता है कि नहीं, भूल हो गई, यह तो समुद्र ही बूंद में समा गया है।
ये तीन सूत्र आपसे कहता हूं। इन सूत्रों को थोड़ा जीवन में फैलाएं। और
आप अचानक पाएंगे कि रोज-रोज परमात्मा आपका पड़ोसी होता चला जा रहा है। रोज-रोज आप उसके मंदिर में प्रवेश करने लगे हैं। रोज-रोज-रोज परमात्मा होने लगा और आप मिटने लगे। और एक दिन आ जाएगा, जिस दिन आप कह सकेंगे कि मैं नहीं हूं, तू ही है। और जिस दिन कोई आदमी यह कह पाता है--मैं नहीं हूं, तू ही है-- उसी दिन फिर मृत्यु न रही, उसी दिन फिर दुख न रहा, उसी दिन फिर चिंता न रही। उसी दिन सब समाप्त हुआ। उसी दिन सब नया, अमृत, आनंद, सत्य का प्रारंभ है। मेरी इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

धर्म साधना के सूत्र
नौवां प्रवचन

जीवन की वीणा का संगीत

मेरे प्रिय आत्मन्!
जैसे कोई बड़ा बगीचा हो, बहुत पौधे हों, लेकिन फूल एक भी न खिले, ऐसा ही मनुष्य का समाज हो गया है। मनुष्य बहुत हैं, लेकिन सौंदर्य के, सत्य के, प्रार्थना के कोई फूल नहीं खिलते। पृथ्वी आदमियों से भरती चली जाती है, लेकिन दुर्गंध से भी, सुगंध से नहीं। घृणा से, क्रोध से, हिंसा से, लेकिन प्रेम और प्रार्थना से नहीं। कोई तीन हजार वर्षों में आदमियों ने पंद्रह हजार युद्ध लड़े। ऐसा मालूम पड़ता है कि सिवाय युद्ध लड़ने के हमने और कोई काम नहीं किया। तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध बहुत होते हैं। प्रतिवर्ष पांच युद्धों की लड़ाई। और अगर किसी एक संबंध में विकास हुआ है, तो वह यही कि हमने आदमियों को मारने की कला में अंतिम स्थिति पा ली है।
आज जमीन पर कोई पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। यह आश्चर्य की बात है कि पचास हजार उदजन बम जरूरत से बहुत ज्यादा हैं, सात गुने हैं। तीन अरब आदमी हैं, तीन अरब आदमियों को मारने के लिए सात गुनी तैयारी हमने कर रखी है। पच्चीस अरब आदमी हों तो इतने बम उनको भी मार सकेंगे सुविधा से। लेकिन एक-एक आदमी को हमने सात-सात बार मारने का इंतजाम किया है कि कोई भूल-चूक से बच न जाए। वैसे एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, लेकिन शायद बच जाए तो दुबारा हम मार सकें। फिर भी बच जाए तो हमने सात बार मारने के इंतजाम कर रखे हैं। सरप्लस अरेंजमेंट है आदमी को मारने के लिए।
पचास हजार उदजन बम इतने बम हैं कि यह पृथ्वी बहुत छोटी है, इसे मिटाने
के लिए वे बहुत ज्यादा हैं। हिरोशिमा और नागासाकी में जो एटम गिरा था, उस समय लोगों ने सोचा था--इससे खतरनाक और कोई ईजाद न हो सकेगी। लेकिन बीस ही साल में उदजन बम और सुपर बम्स ने एक अजीब हालत पैदा कर दी, और वह यह कि आज हिरोशिमा और नागासाकी में गिरा हुआ बम बच्चों का खिलौना हो गया, उसका कोई मूल्य ही नहीं रह गया। एक लाख आदमी एक बम ने मारे थे, वह अब बच्चों का खिलौना है। क्योंकि अब हमारे पास जो बम हैं, उनकी सीमा, उनकी शक्ति बहुत ज्यादा है। यह पूरे इतिहास में आदमी ने यही अर्जित किया है--विनाश और मृत्यु की इतनी तीव्र आकांक्षा ही अर्जित की है। तो शक होता है कि आदमी कहीं न कहीं बीमार है, अस्वस्थ है, रुग्ण है। स्वस्थ मनुष्य जीना चाहता है, अस्वस्थ मरना चाहता है।
और ध्यान रहे, जब मरने की आकांक्षा बहुत प्रबल हो या मारने की, तो उसका
एक ही अर्थ होता है कि हमारा मन कहीं बीमार हो गया। कहीं कुछ साइकोपैथालाजिकल, कहीं कोई मनोरोग हमको पकड़े हुए है। जीने में आनंद कम हो गया है, मारने में, मिटाने में आनंद ज्यादा हो गया है। स्युसाइडल, आत्मघाती प्रवृत्ति मनुष्य की बढ़ती चली गई है। अब हम उस जगह हैं, जहां किसी भी दिन हम अपने को समाप्त कर ले सकते हैं।
आइंस्टीन से मरने के कुछ दिन पहले किसी ने पूछा था कि तीसरे महायुद्ध
के संबंध में आपका क्या ख्याल है? तो आइंस्टीन ने कहा था कि तीसरे के संबंध में मैं कुछ भी न कह सकूंगा, चौथे के संबंध में जरूर कुछ कह सकता हूं। उस आदमी ने पूछा, आप क्या बात कर रहे हैं? तीसरे के संबंध में नहीं कहेंगे तो चौथे के संबंध में कैसे कहेंगे? तो आइंस्टीन ने कहा, चौथे के संबंध में एक बात निश्चित कही जा सकती है कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा। क्योंकि तीसरे के बाद किसी आदमी के बचने की कोई उम्मीद नहीं है कि चौथा भी हो सके। लेकिन तीसरे के संबंध में कुछ भी कहना मुश्किल है।
यह जो हम मृत्यु के कगार पर आदमी को खींच कर ले गए हैं, इसके पीछे क्या कारण होगा?
सबसे पहली बात मुझे यह दिखाई पड़ती है कि आदमी के जीवन में आनंद, जिसको ब्लिस कहें, वैसे क्षण कम हो गए हैं। जीवन दुख की लंबी कहानी हो गया है। और अगर इतना दुख हो जीवन में तो एक अनिवार्य परिणाम पैदा होता है--दुखी आदमी दूसरे को भी दुख देने के लिए आतुर हो जाता है। और ठीक भी है, जो मेरे पास है

वही मैं दूसरे को भी दे सकता हूं। यदि मैं दुखी हूं तो मैं दुख ही दे सकता हूं, और कोई उपाय भी नहीं है। और हम सब दुखी हैं। हमारे चेहरे पर दिखाई पड़ने वाली मुस्कुराहटें बहुत झूठी हैं। सच तो यह है कि हमने मुस्कुराहटों का आविष्कार भीतर के दुख को छिपाने के लिए ही किया हुआ है। हम ऊपर से हंसते रहते हैं, इससे यह भ्रम न पैदा हो जाए कि हम सुखी लोग हैं। सारी दुनिया में हंसी के कहकहे फूटते हैं।
एक बार ऐसा हुआ कि बुद्ध से एक सम्राट मिलने गया और उसने बुद्ध से पूछा, आप कभी हंसते भी हैं या नहीं?
तो बुद्ध ने कहा, अब भीतर दुख ही न रहा तो अब हंसी की भी कोई जरूरत न रही, क्योंकि हंसी दुख को छिपाने के लिए ही थी। हंसते थे ऊपर से ताकि भीतर का दुख भूल जाए।
नीत्शे से किसी ने पूछा था एक बार कि तुम बहुत हंसते हो, बहुत खुश मालूम होते हो।
नीत्शे ने कहा, यह बात ही मत छेड़ो। मैं इसलिए हंसता रहता हूं कि कहीं रोने न लगूं। फुर्सत नहीं रहनी चाहिए। अगर बाकी जगह मिल गई बीच में तो रोना आ सकता है। आंसू न आ जाएं, इसलिए हंसने में शक्ति और समय लगाता रहता हूं।
क्या आपको पता है कि जैसे-जैसे मनुष्य का दुख बढ़ा है, एक और अदभुत चीज बढ़ी है, वह है मनोरंजन के साधन। कभी आपने सोचा कि मनोरंजन के साधन दुखी आदमी ईजाद करता है। सुखी आदमी इतने सुख में होता है कि मनोरंजन के साधन की उसे जरूरत नहीं होती, वह सुखी होता है। साधन की जरूरत तब पड़ती है जब हम भीतर सुखी नहीं रह जाते। फिर शराब की जरूरत है, फिर सेक्स के नये-नये आविष्कार करने पड़ेंगे, फिर फिल्में खोजनी पड़ेंगी, फिर टी.वी. और रेडियो खोजना पड़ेगा, संगीत खोजना पड़ेगा। और ये भी धीरे-धीरे बासे हो जाएंगे, तो फिर मैस्कलीन है, मारिजुआना है, एल एस डी है, और कुछ खोजना पड़ेगा। लेकिन वे भी सब बासे हो जाते हैं, वे भी सब पुराने हो जाते हैं। आदमी का दुख इतना है कि वह सब तरह की हंसी की कोशिश के बाद भी उसे मिटा नहीं पाता, वह दुख अपनी जगह रह जाता है। और भीतर जब बहुत दुख घिर जाए, तो स्वभावतः हम दूसरों को दुख देने में रस लेने लगते हैं।
जब कोई आदमी आनंदित होता है, तो दूसरे को सुख देने में रस लेता है। असल में आनंदित आदमी की एक ही कसौटी है कि अगर आप दूसरे के सुख में सुखी हो सकें तो आप आनंदित आदमी हैं। और यदि आप दूसरे को सुखी करने में सुखी हो सकें, तो आप आनंदित आदमी हैं। और अगर आप दूसरे को दुख में देख कर रस पाते हों और दूसरे को सुख में देख कर दुख पाते हों, तो आप दुखी आदमी हैं।
बड़ी अदभुत है आदमी की मनोदशा! जब वह किसी को दूसरे को दुख में देखता है
तो बहुत सहानुभूति प्रकट करता है, बहुत सिम्पैथेटिक मालूम होता है। और उससे ऐसा भ्रम पैदा होता है कि दूसरे के दुख में वह दुखी हो रहा है। लेकिन कभी आपने ख्याल किया? जब कोई आदमी किसी के प्रति सहानुभूति प्रकट करता है तो उसकी आंखों में एक रस भी दिखाई पड़ता है कि वह बहुत आनंद भी ले रहा है। असल में दूसरे के प्रति सहानुभूति, सिम्पैथी दिखाने में भी एक बड़ा मजा है। क्योंकि जिसके प्रति हम सहानुभूति दिखाते हैं वह नीचा हो जाता है, हम ऊपर हो जाते हैं। लोग तलाश में रहते हैं कि कब आपको सहानुभूति दिखलाने का मौका मिले।
अगर आपके मकान में आग लग गई है तो लोग सहानुभूति दिखाने आएंगे। लेकिन
ये वे ही लोग हैं कि अगर आपने बड़ा मकान बना लिया होता तो ईर्ष्या से भर गए होते। यह गणित बड़ा अजीब मालूम पड़ता है! जो लोग मकान के बड़े होने से ईर्ष्या से भरते थे, वे मकान के जल जाने से दुखी नहीं हो सकते। वे दुख दिखा रहे होंगे, दुख प्रकट कर रहे होंगे, लेकिन भीतर उनके दुख नहीं हो सकता। क्योंकि जब वे किसी के मकान को बड़ा होते देख कर खुश न हुए थे, तो छोटा होते देख कर दुखी कैसे हो सकते हैं?
मैं एक घर में ठहरता था। उन मित्र ने एक बहुत बड़ा मकान बनाया था। जब मैं उनके घर ठहरा था पहली बार, तो सुबह से सांझ तक वे घूम-फिर कर मकान को बीच में ले आते थे। कुछ भी बात होती, मकान बीच में आ जाता। कभी उनका स्विमिंग पूल बीच में आता, कभी उनके बाथरूम बीच में आते, कभी उनका बगीचा और

लॉन बीच में आता। और तीन दिन वहां था, तो मुझे ऐसा लगा कि मुझे उन्होंने वहां अपने मकान के संबंध में बात करने के लिए बुलाया हुआ है। दुबारा भी ठहरा था एक बार, तब भी वही मकान की बातचीत चली थी। मुझे ऐसा लगा था कि शायद मकान ज्यादा महत्वपूर्ण है, मकान का मालिक बहुत कम महत्वपूर्ण है; क्योंकि अपने संबंध में उन्होंने कोई बात न की थी, मकान की ही बात की थी। फिर तीसरी बार उनके घर मैं मेहमान हुआ, तो उन्होंने मकान की बात न उठाई। मैं तो पहले से ही डरा हुआ था कि अब मकान आया, अब मकान आया। लेकिन वह मकान नहीं आया, सांझ हो गई, रात होने लगी, तो मैंने उनसे पूछा कि मकान के संबंध में बात कब करिएगा?
तो उन्होंने कहा, छोड़िए, जाने दीजिए।
मैंने देखा नहीं था कि बात क्या है, पड़ोस में एक दुर्घटना हो गई थी, पड़ोस में एक और बड़ा मकान बन गया था। दूसरे दिन सुबह जब मैं उठा तब मुझे दिखाई पड़ा कि कारण क्या है। वे मेरे साथ बगिया में घूमते थे, मैंने कहा कि आप मकान की बिल्कुल बात नहीं करते! वही मकान है, स्विमिंग पूल वही है, बगीचा और अच्छा हो गया है, फूल और ज्यादा खिल गए हैं।
उन्होंने कहा कि आप बात ही मत करिए मकान की। जब से यह पड़ोस में मकान बड़ा खड़ा हो गया है, मन बड़ा उदास हो गया है, बड़ा दुखी हो गया है। लेकिन कोई फिकर न करिए, वर्ष दो वर्ष में इससे भी बड़ा मकान खड़ा कर लेंगे। तब तक मकान की बात करनी ठीक नहीं।
मगर पड़ोस के मित्र मुझे बुला कर ले गए और उन्होंने मकान की बात की। मैंने कहा, कब तक जारी रखिएगा मकान की बात? पड़ोस में कोई बड़ा मकान बन जाए तो मुश्किल हो जाएगी।
हम दूसरे के सुख में जरा भी सुखी नहीं हो पाते हैं। इसलिए दूसरे के दुख में जब हम दुख दिखलाते हैं तो वह झूठा होता है, वह डिसेप्टिव होता है। और हम हंसते चले जाते हैं। वे हंसियां हमने सब ऊपर से इकट्ठी कर ली हैं। हमने चेहरे बना लिए हैं। एक चेहरा हमारा असली है, जो हम भीतर दबाए रखते हैं। शायद जिसे हम भी न पहचानें, अगर मिल जाए। अगर वह आदमी, जो मैं असली में हूं, मिल जाए मुझे तो मैं भी न पहचानूं। क्योंकि इतने दिन से उससे मुलाकात नहीं हुई, कोई बात नहीं हुई। और एक चेहरा हमने बना रखा है। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि अगर एक कमरे में दो आदमी मिलते हों, तो
दो आदमी नहीं मिलते, कम से कम छह आदमी मिलते हैं। अगर मैं आपसे किसी कमरे में मिल रहा हूं, तो एक तो मैं हूं जो मैं हूं, और एक वह रहेगा जो मैं आपको दिखला रहा हूं, और एक वह रहेगा जो आप मुझको समझ रहे हैं। और आप भी तीन, मैं भी तीन, छह आदमी की बातचीत चलेगी। और असली आदमी तो बहुत पीछे छूट जाएंगे, नकली आदमी आगे आकर बात करते रहेंगे।
न मालूम कितनी शक्लें हमने खड़ी कर रखी हैं जो झूठी हैं। लेकिन समाज रोज दुखी होता चला गया है।
असल में सुखी आदमी की एक ही शक्ल होती है, क्योंकि सुखी आदमी के पास छिपाने को कुछ भी नहीं होता। दुखी आदमी को बहुत शक्लें ईजाद करनी पड़ती हैं, क्योंकि अपना दुख छिपाना पड़ता है। उसे बताने का कोई अर्थ भी नहीं है। उसे किसी से कहने से कोई प्रयोजन भी नहीं होता।
एक यहूदी फकीर है लिएबमेन, उसने एक संस्मरण लिखा है। उसने लिखा है कि मैं सारे लोगों को देखता। रास्ते पर जो भी दिखाई पड़ता, हंसता हुआ दिखाई पड़ता। जो भी मिलता, मौज में दिखाई पड़ता। किसी से मैं पूछता कि कहिए, क्या हाल हैं? वह कहता कि सब ठीक है, बड़े आनंद हैं। और मैं भीतर देखता तो सिवाय दुख के कुछ भी न पाता। लोग, जिससे भी पूछो, तो वह कहता, बहुत मजे में हैं। एक अकेला मैं ही दुखी था, सारे लोग मजे में थे। तो मैंने एक दिन रात भगवान से प्रार्थना की कि मुझसे नाराजगी क्या है? सारे लोग खुश हैं। जिससे पूछो वही कहता है सब ठीक है। एक मैं ही गलत आदमी हूं, एक मैं ही परेशान हूं। तो मैं तुझसे ज्यादा नहीं मांगता, मैं तुझसे इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि तू किसी भी अनजान आदमी का दुख मुझे दे दे और मेरा दुख उसे दे दे, मैं तैयार हूं। इस गांव में किसी भी आदमी का दुख लेने को मैं तैयार हूं। मेरा दुख बदल दे।

रात लिएबमेन ने एक सपना देखा। वह सपना बहुत अदभुत है। उसने सपना देखा
कि रात जैसे उसकी प्रार्थना सुन ली गई है। और एक बहुत बड़ा भवन है और गांव भर में एक आवाज गूंजी है कि सब लोग अपनी-अपनी दुख की गठरियां बांध कर अपने- अपने कंधों पर लेकर उस भवन में पहुंच जाएं।
तो लिएबमेन तो सबसे पहले भागा। उसने सोचा कि शायद दूसरे तो पहुंचेंगे
ही नहीं, क्योंकि उनके पास कोई दुख ही नहीं है, वे सब अच्छे हैं। लेकिन उसने देखा कि लोग उससे भी तेजी से भागे चले जा रहे हैं। जिनसे उसने सुबह पूछा था कि कहो, कैसे हो? और जिन्होंने कहा था कि अच्छे हैं। वे भी बड़े-बड़े गट्ठे लिए हुए भागे जा रहे हैं। उसे बड़ी हैरानी हुई! गांव में एक आदमी नहीं है, सारा गांव भागा है अपनी-अपनी गठरियां लेकर। उस भवन में सारे लोग पहुंच गए हैं। देख कर वह हैरान है। गांव का मेयर भी है, गांव का पुजारी भी है, गांव का संन्यासी, महात्मा भी है। सारे लोग हैं! सारे लोगों के पास दुख की गठरियां हैं! और बड़ी हैरानी यह कि जितनी बड़ी गठरी वह लिए हुए है, उससे छोटी गठरी किसी के पास दिखाई नहीं पड़ती!
फिर दूसरी आवाज हुई कि सारे लोग अपने-अपने दुख के गट्ठरों को खूंटियों पर टांग दें। सारे लोगों ने दौड़ कर अपनी-अपनी दुख की गठरियां खूंटियों पर टांग दीं। और फिर आवाज हुई कि अब जिसको जो गठरी चुननी हो वह अपनी चुन ले। लिएबमेन ने लिखा है कि मैं घबड़ा कर भागा--दूसरे की गठरी की तरफ नहीं, अपनी गठरी की तरफ--कि कोई और न उठा ले। क्योंकि कम से कम अपने दुख पहचाने हुए तो हैं। अनजान, अपरिचित लोगों के दुख, और गठरियां छोटी नहीं मालूम पड़तीं, बड़ी ही मालूम पड़ती हैं। उसने घबड़ाहट में दौड़ कर अपनी गठरी उठा ली कि कहीं कोई और न उठा ले। लेकिन वह और भी चकित हुआ, सबने अपनी-अपनी गठरियां उठा ली थीं! सभी ने दौड़ कर उठा ली थीं! क्योंकि सभी को यह डर लगा था कि कोई दूसरा न उठा ले। क्योंकि कल तक दूसरे की नकली शक्ल देखी थी। अपना दुख देखा था, दूसरे की हंसी देखी थी। आज वह सब झूठ हो गया था।
आदमी इतने दुख में है! और इसलिए हम एक-दूसरे को दुख देने के नये-नये रास्ते खोजते रहते हैं। रिलीजन के नाम पर खोज लेते हैं, धर्म के नाम पर खोज लेते हैं सताने के रास्ते, टार्चर करने के रास्ते। पॉलिटिक्स के नाम पर खोज लेते हैं, राजनीति के नाम पर खोज लेते हैं। हम कोई भी बहाने से किसी को सताने का रास्ता खोज लेते हैं। हमें आदमी को मारना है, तो आदमी को मारना बहुत मुश्किल पड़ेगा, हिंदू को मारना आसान है, मुसलमान को मारना आसान है। तो फिर हम हिंदू-मुसलमान होकर रास्ते खोज लेते हैं। हिंदू-मुसलमान न रह जाएं तो सिक्ख-हिंदू भी लड़ सकते हैं। सिक्ख-हिंदू न रह जाएं तो गुजराती- मराठी लड़ेगा। गुजराती-मराठी न रह जाएं तो उत्तर भारत और दक्षिण भारत के लोग लड़ेंगे। और कोई भी न रह जाए तो आप सोचते हैं शांति से आप घर में बैठ जाएंगे? पति-पत्नी लड़ेंगे। बाप-बेटे लड़ेंगे। गुरु-शिष्य लड़ेंगे।
लड़ाई चाहिए। दूसरे को दुख देने का उपाय चाहिए। दूसरे को सताने का, टार्चर करने की व्यवस्था चाहिए। और ऐसा नहीं है कि बुरे लोग ही सताते हैं दूसरों को। जिनको हम अच्छे लोग कहते हैं, वे भी अच्छे ढंग निकाल लेते हैं सताने के। अच्छे ढंग भी होते हैं।
अब एक महात्मा है, वह लोगों को समझा रहा है कि उपवास करो, क्योंकि भूखे मरे बिना परमात्मा न मिलेगा। अब वह लोगों को सताने के लिए अच्छा रास्ता खोज रहा है। बहुत रिलीजस टेक्नीक से वह लोगों को सताने जा रहा है। वह लोगों से कह रहा हैः सिर के बल खड़े हो जाओ, क्योंकि पैर के बल खड़े होना ठीक नहीं है। सिर के बल खड़े होने से परमात्मा मिलता है।
अब परमात्मा ने यह गलती नहीं की, उसने आदमी को पैर के बल खड़ा किया। महात्मा समझा रहे हैं कि सिर के बल खड़े होने से मिलेगा। लेकिन जब सिर के बल कुछ नासमझ खड़े हो जाते हैं, तो महात्मा सुखी होना शुरू हो जाता है। उसने दूसरों को दुख देना शुरू कर दिया। उसने टार्चर करने के रास्ते खोज लिए। जिनको हम अच्छे लोग कहते हैं, वे भी सताते हैं। हां, उनका सताना थोड़ा खतरनाक होता है। क्योंकि वे अच्छे कारणों से सताते हैं। वे आपके हित में ही आपको सताते हैं। तब बड़ी मुश्किल हो जाती है।
हिटलर से बचना बहुत आसान है। गांधी से बचना बहुत मुश्किल है। क्योंकि हिटलर तो सीधा दुश्मन की तरह सताता है। गांधी तो आपके हित में सताते हैं।

हिटलर आपकी छाती पर छुरा रख देता है। गांधी अपनी छाती पर छुरा रख लेते हैं। वे कहते हैं, मैं मर जाऊंगा अगर मेरी न मानी। इसको वे अहिंसा कहते हैं।
दूसरे को मारना हिंसा है, अपने को मारना अहिंसा कैसे हो जाएगा? अगर मैं आपकी छाती पर छुरा रख कर कहूं कि मेरी बात मान लें, तो यह हिंसा है और क्रिमिनल एक्ट है। और मैं अपनी छाती पर छुरा रख कर कहूं कि मैं मर जाऊंगा, आग लगा कर जल जाऊंगा, तो मैं महात्मा हो जाऊंगा। यह भी क्रिमिनल एक्ट है, यह भी हिंसा है। लेकिन यह अच्छे ढंग की हिंसा है, इसमें दूसरे आदमी को हम बड़ी तरकीब से सता रहे हैं। अगर मैं आपके दरवाजे पर बैठ जाऊं और कहूं कि भूखा मर जाऊंगा अगर मेरी बात न मानी, तो मेरी बात गलत हो तो भी मेरी यह जो अच्छे ढंग की हिंसा है यह आपको मजबूर कर देगी, आपको सता डालेगी।
बुरे आदमी सता रहे हैं, अच्छे आदमी सता रहे हैं। हम सब एक-दूसरे को सताने में लगे हुए हैं। और हमने ऐसी तरकीबें खोज रखी हैं कि पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि हम कैसे-कैसे सता रहे हैं। अगर आप किसी एक स्त्री को प्रेम करते हैं, तो आप बहुत जल्दी उसे सताना शुरू कर देते हैं। एक स्त्री अगर आपको प्रेम करती है, तो बहुत जल्दी, पता नहीं चलता, कब उसने आपको सताना शुरू कर दिया। हम एक-दूसरे की गर्दन को दबा लेते हैं। जिन्हें हम प्रेम करते हैं, उनकी गर्दन पर भी फांसी बन जाते हैं।
बेटों को बाप सता लेते हैं, जब वे छोटे होते हैं। बच्चे कमजोर होते हैं, बाप ताकतवर होते हैं। लेकिन बहुत जल्दी नाव उलट जाएगी, बच्चे ताकतवर हो जाएंगे, बाप बूढ़े हो जाएंगे। फिर बच्चे सताना शुरू कर देंगे। बुढ़ापे में बच्चे सता रहे हैं, क्योंकि अब वे ताकतवर हो गए हैं। बाप ने सता लिया है जवानी में। बच्चे कमजोर थे, सताना आसान था। जब जो सता सकता है, एक-दूसरे को सता रहा है। हम सब एक-दूसरे को परेशान कर रहे हैं। कुछ लोगों ने तो खोज की है कि सताने वाले नये-नये रास्ते खोजते रहते हैं।
औरंगजेब ने अपने बाप को बंद कर दिया था। और जब बाप को उसने लाल किले में बंद कर दिया तो दस-पांच दिन के बाद बाप ने उसे खबर भेजी कि यहां अकेले में मेरा मन नहीं लगता है, अगर तुम तीस लड़के मुझे दे दो तो मैं उन्हें पढ़ाने का काम करूं तो मेरा मन लग जाए।
औरंगजेब ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि मेरे बाप को दूसरों को सताने के बिना इतना बेमानी लगता था जीना कि उसने तीस लड़के मांग लिए, उनके बीच डंडा लेकर वह बादशाह बन कर बैठ गया और उनको सताना शुरू कर दिया, उनको शिक्षा देने लगा।
इस संबंध में बहुत खोज-बीन चलती है कि बहुत से लोग जो धंधा चुनते हैं,
उस धंधे में भी उनकी वृत्ति काम करती है। वे सताने का धंधा चुन सकते हैं, सताने की व्यवस्था चुन सकते हैं।
यह जो आदमी है दुख से भरा हुआ, यह जो आदमी एक-दूसरे को सताए चला जा रहा
है और जिसने इस सारी पृथ्वी को नरक बना दिया है... ऐसा कि मैंने सुना है कि एक आदमी मरा। उसकी पत्नी एक प्रेतात्मविद के पास गई, एक भूत-प्रेत बुलाने वाले के पास गई। और उसने कहा कि मैंने सुना है कि तुम प्रेतात्माओं से बात करवा देते हो। मैं जरा अपने पति के संबंध में खबर लेना चाहती हूं। तो उसने उसके पति की आत्मा को बुलाया। उसकी पत्नी ने पूछा कि आप मजे में तो हैं? उसने कहा, मैं बहुत ही बहुत मजे में हूं, एकदम आनंद में हूं।
तो उसकी पत्नी ने कहा, और स्वर्ग के संबंध में और कुछ खबरें बताओ!
उसने कहा, स्वर्ग? तुम गलत समझीं, मैं नरक में आ गया हूं।
उसकी स्त्री ने कहा कि नरक में हो और मजे में हो?
तो उसने कहा, अब पृथ्वी से नरक बहुत सुंदर और स्वस्थ और शांत और आनंदपूर्ण है। अब पृथ्वी से नरक बहुत सुखद है। मैं तो तुलना में कह रहा हूं कि जहां से आया हूं मर कर वहां से नरक बहुत सुखद है। स्वर्ग का मुझे कोई पता नहीं। मैं नरक में आया हुआ हूं। लेकिन मैं तुझे खबर कर दूं कि नियम बदल गए हैं। पहले जो लोग पृथ्वी पर गुनाह करते थे वे नरक भेज दिए जाते थे, अब नरक में जो लोग गुनाह करते हैं वे पृथ्वी पर भेज दिए जाते हैं।

यह जो इतने दुख से भरा हुआ मनुष्य है, इसमें कैसे फूल खिलें? इसकी जिंदगी में आशीर्वाद कैसे प्रकटे? इसके जीवन में आनंद की झलक कैसे आए? किरण कैसे आए?
और अगर आनंद की झलक न आ पाए, तो आदमी जीया और न जीया बराबर हो गया। जीना
और न जीना बराबर हो गया। और अगर आनंद की झलक न आ पाए तो जीवन से जो हमें मिल सकता था, वह हम ले ही न पाए। पौधा लगा जरूर, लेकिन फूल न खिले। दीया ले आए घर में जरूर, लेकिन कभी उसमें ज्योति न जली। एक वीणा खरीद ली और घर में टिका दी, लेकिन कभी उसके तारों पर हाथ न गए और कभी संगीत पैदा न हुआ।
बहुत लोग ऐसे ही हैं, जिन्होंने अपने घरों में वीणा को रख लिया है, लेकिन उससे कभी संगीत पैदा नहीं होता।
वीणा अकेली संगीत पैदा नहीं कर सकती है। और जन्म ले लेना काफी नहीं है, जन्म के बाद एक और जन्म भी चाहिए। जन्म के बाद एक और नया जन्म भी चाहिए।
एक जन्म तो मिलता है मां-बाप से और एक जन्म स्वयं अपने को देना पड़ता है।
जन्म के साथ जीवन नहीं मिलता, सिर्फ वीणा मिलती है, संगीत नहीं मिलता।
संगीत तो सीखना पड़ता है।
लेकिन एक बहुत दुर्घटना की बात है कि आदमी और सब सीखता है, सिर्फ जीवन नहीं सीखता। गणित सीखेगा; गणित के बिना भी चल सकता है। भूगोल सीखेगा; भूगोल के बिना भी चल सकता है। केमिस्ट्री और फिजिक्स सीखेगा; उनके बिना भी चलता रहा है। सब सीख लेगा, जिंदगी में जो भी है, सब सीख लेगा, एक चीज भर छोड़ देगा--जिंदगी कैसे जी जाए? आर्ट ऑफ लिविंग, उतना भर छोड़ देगा। उसके लिए कोई स्कूल नहीं, कोई विद्यालय नहीं, कोई शिक्षक नहीं। उसमें कोई उत्सुक ही नहीं।
उसका कारण है कि हमने यह मान लिया है कि जीवन हमें मिल ही गया, अब और क्या करना है? वीणा घर ले आए, अब संगीत के लिए और क्या करना है? वीणा तो मिल गई, तो संगीत भी मिल गया।
वीणा में संगीत नहीं है। वीणा केवल अवसर बन सकती है संगीत के जन्म का। जन्म में जीवन नहीं है, जन्म केवल अवसर बन सकता है जीवन को खिलने का। जीवन के संगीत को तो सीखना पड़ेगा, अलग से ही सीखना पड़ेगा। वह कला अलग से ही हमें सीखनी पड़ेगी।
मेरी दृष्टि में, जिसे मैं धर्म कहता हूं, वह धर्म जीवन की कला है, वह आर्ट ऑफ लिविंग है। लेकिन जिसे हम आज तक धर्म कहते हैं, वह तो जीवन की कला नहीं मालूम होता, बल्कि वह तो ऐसा मालूम पड़ता है कि जीवन से हारे हुए लोग, जीवन से चूक गए लोग, जीवन को खो चुके लोग, रुग्ण, बीमार, विक्षिप्त, ऐसे लोग जीवन की निंदा कर रहे हैं उस धर्म में। अब तक जिसे हमने धर्म कहा है, वह बहुत गहरे में जीवन की निंदा है, कंडेमनेशन है, जीवन का विरोध है। वह लाइफ निगेटिव है, लाइफ अफरमेटिव नहीं है। जिसे हम अब तक धर्म कहते रहे हैं, दस-पांच लोगों को छोड़ दें मनुष्य के इतिहास में--कोई एक कबीर, कोई एक नानक, कोई एक बुद्ध, कोई एक कृष्ण, कोई एक क्राइस्ट-- आदमी की अंगुलियों पर नाम गिन जाएं, उनको छोड़ दें। उनको छोड़ कर बाकी जो भी हमें धर्म दिखाई पड़ता है-- मंदिर वाला, मस्जिद वाला, कुरान वाला, गीता वाला--वे सब के सब धर्म मनुष्य के जीवन की निंदा कर रहे हैं। और जब धर्म जीवन की निंदा करते हों, तो वे जीवन को जीने की कला क्यों सिखाएं? जब धर्म निंदा करते हों, तो वे जीवन से मुक्त होने की कला सिखाते हैं। वे कहते हैं कि मरो कैसे। वे कहते हैं कि असली चीज मरने के बाद है, मौत के बाद है।
अब तक के हमारे सारे धर्म, पृथ्वी को बदलने की, पृथ्वी को ट्रांसफार्म करने की फिकर में नहीं हैं। वे कहते हैं कि पृथ्वी तो बेकार है, असार है। जीवन, असली जीवन तो मरने के बाद है। किसी स्वर्ग में, किसी मोक्ष में, किसी बैकुंठ में, वहां असली जीवन है। यह जीवन तो एक सराय है, यह जीवन तो एक वेटिंग रूम है स्टेशन का, वहां हम थोड़ी देर बैठे हैं, हमारी ट्रेन आएगी और हम चले जाएंगे।
अब आप वेटिंग रूम में कभी ध्यान किए हैं? वेटिंग रूम को देख कर पता चलता है कि हर आदमी वहां बैठ कर उसे गंदा कर रहा है--छिलके फेंक रहा है, थूक रहा है, पान फेंक रहा है। और अगर उससे कहिए, तो वह कहेगाः यह वेटिंग रूम है, कोई हमारा घर है! दो मिनट यहां हैं और चले जाएंगे। उसके पीछे आने वाला भी

यही करेगा; उससे आगे आने वाला भी यही करेगा। तो वेटिंग रूम अगर गंदगी बन जाए तो आश्चर्य तो नहीं है। और वेटिंग रूम में अगर दुर्गंध उठने लगे और वहां बैठना मुश्किल हो जाए तो आश्चर्य तो नहीं है।
पिछले पांच हजार वर्षों से निरंतर, जिसको हम धर्मगुरु कहते हैं, पुरोहित कहते हैं, पंडित कहते हैं, वह जीवन को कह रहा हैः यह एक सराय है, यह एक वेटिंग रूम है। इसे छोड़ कर जाना है। इसे सुंदर बनाने की कोई जरूरत नहीं है। यह सुंदर बन भी नहीं सकता। वह यह भी कह रहा है कि यहां सुख संभव ही नहीं है, यहां दुख ही संभव है। यहां सुख मिल ही नहीं सकता।
और ध्यान रहे, अगर पांच हजार साल तक निरंतर इस बात का प्रचार किया जाए
कि जीवन में सुख मिल ही नहीं सकता, तो सुख मिलना बंद हो जाएगा। इसलिए नहीं कि जीवन में सुख नहीं मिल सकता, बल्कि इसलिए कि पांच हजार वर्ष के प्रचार का परिणाम होता है।
मैंने सुना है कि एक अमेरिकी विश्वविद्यालय में एक मनोवैज्ञानिक एक छोटा सा प्रयोग कर रहा था। वह यह जानना चाहता था कि प्रचार का क्या परिणाम होता है? उसने गणित की एक कक्षा में, एम.ए. की मैथेमेटिक्स की एक क्लास को, जहां कोई पचास लड़के थे, दो हिस्सों में बांट दिया। पच्चीस लड़कों को एक कमरे में ले गया, पच्चीस को दूसरे में ले गया।
पहले नंबर के पच्चीस के समूह को, तख्ते पर उसने एक सवाल लिखा। सवाल लिखने के पहले उसने कहा कि सुन लो ठीक से, यह सवाल तुमसे हो नहीं सकेगा। जो लड़के आगे रीढ़ झुका कर बैठ कर देख रहे थे कि तख्ते पर क्या है, वे अपनी कुर्सियों से टिक गए। जब हल ही नहीं हो सकेगा तो बात खतम हो गई! और उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो हल न हो सकेगा तो दे किसलिए रहे हैं? तो उस प्रोफेसर ने कहा कि दे रहा हूं सिर्फ इसलिए कि मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या पचास में से तुममें से कोई एकाध युवक भी ठीक दिशा में भी शुरू कर सकता है? हल तो हो नहीं सकता, लेकिन राइट मेथड की शुरुआत भी अगर कोई कर दे तो वह भी चमत्कार है। क्योंकि बड़े-बड़े गणितज्ञ हार गए, यह सवाल हल होने वाला सवाल नहीं है। वह सवाल लिखता कम है, समझाता ज्यादा है कि यह हल होने वाला सवाल नहीं है। वह आधा सवाल लिखता है और फिर कहता है कि तुम ज्यादा परेशान मत होओ, यह हल होगा नहीं, यह हल हो सकता नहीं। यह सवाल बहुत ही कठिन है। शायद दुनिया में आइंस्टीन जैसे एकाध-दो लोग कोई इसे हल कर सकते। लेकिन अब आइंस्टीन भी मर गया है, अब कुछ आशा नहीं है। तुम कोशिश करो।
उन लड़कों ने कलमें उठाई हैं, लेकिन कलमों के साथ उनकी आत्मा नहीं रह
गई है। हाथ हैं सिर्फ, आत्मा तो पीछे हट गई है। क्योंकि जो हल ही नहीं हो सकता हो तो चित्त ने साथ छोड़ दिया। वे सवाल हल कर रहे हैं, जानते हुए कि हल नहीं हो सकता।
वह उन्हें छोड़ कर दूसरे कमरे में गया है। वही सवाल उसने बोर्ड पर लिखा है। और उन लड़कों से उसने कहा है कि यह सवाल बहुत सरल है। मैं आशा नहीं करता कि तुममें एक भी विद्यार्थी होगा जो इसे हल न कर पाए, सभी हल कर लेंगे। जो कुर्सियों से टिक कर बैठे थे, वे भी आगे सरक आए। लेकिन एक युवक ने पूछा कि जब सभी हल कर लेंगे तो दे किसलिए रहे हैं? तो उसने कहा, हम सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि क्या एकाध विद्यार्थी इस कक्षा तक भी ऐसा आ गया है जिससे यह सवाल हल न हो पाए? इससे नीचे की कक्षाओं में लड़कों ने यह सवाल हल कर लिया है। सिर्फ यह जानना चाहते हैं कि क्या कोई एकाध लड़का ऐसा भी आ गया है जिससे इतना सरल सवाल न बन सके?
वे भी सवाल हल करने में लग गए हैं। उनकी आत्माएं पूरी उनके साथ हैं।
और बड़ी अदभुत बात हुईः उस पहली कक्षा में पच्चीस में से केवल तीन विद्यार्थी कर पाए, बाईस विद्यार्थी नहीं कर पाए; और दूसरी कक्षा में से तेईस विद्यार्थी कर पाए, सिर्फ दो विद्यार्थी नहीं कर पाए। यह इतना बड़ा फर्क कैसे पैदा हुआ? ये एक ही कक्षा के विद्यार्थी हैं और एक सा सवाल है। पांच हजार साल से निरंतर मनुष्य को समझाया जा रहा हैः जीवन दुख है, जीवन असार है, जीवन पाप का फल है, जीवन से छूट जाना है, मुक्त हो जाना है, किसी भांति अब दुबारा जीवन में नहीं आना है।
रवींद्रनाथ मर रहे थे। तो एक मित्र ने जाकर रवींद्रनाथ से कहा कि अब छोड़ो ये कविताएं! वे मरते वक्त भी लिख रहे थे। कहा, छोड़ो ये कविताएं! क्यों

अपना समय गवां रहे हो? अब तो भगवान से प्रार्थना करो कि दुबारा जन्म न मिले।
रवींद्रनाथ ने कहा कि ऐसी प्रार्थना मैं न कर सकूंगा। क्योंकि मैंने
तो उसके जीवन में इतना आनंद जाना, इतना संगीत, इतना सौंदर्य कि मैं एक ही प्रार्थना करता रहूंगा मरते वक्त कि अगर मुझे अयोग्य न पाया हो, तो एक बार और जीवन में भेज देना। अगर अयोग्य ही पाया हो तब बात अलग है। तेरा जीवन बहुत अदभुत था। तो मरते क्षण में परमात्मा को धन्यवाद देता हुआ मरूंगा कि तूने मुझे एक मौका दिया! अपात्र को, जिसकी कोई हैसियत न थी कि क्यों जीवन में आए, उसे भी तूने जीवन दिया! और अगर तूने थोड़ा भी पाया हो कि मेरी योग्यता है कुछ, तो एक मौका और देना। यही प्रार्थना करते हुए मरूंगा। निश्चित ही रवींद्रनाथ जीवन को और तरह से ले रहे हैं। लेकिन पांच हजार साल के इतिहास में धर्मगुरुओं ने जीवन को निंदा के स्वर में ही लिया है, उसका विरोध ही किया है, उसे किसी तरह नष्ट कर डालने की ही बात की है। इसका परिणाम हुआ। आज जो मनुष्य इतना दुखी है, उसमें इन सबकी शिक्षाओं
का हाथ है। इसके दो परिणाम हुए। एक तो यह हुआ कि हमने यह स्वीकार कर लिया कि जीवन दुख है। और जब हमने यह स्वीकार कर लिया कि जीवन दुख है, तो हमने सुख के द्वार खोलने की यात्रा बंद कर दी, हमने सुख की खोज बंद कर दी। ज्यादा से ज्यादा एक ही रास्ता रह गयाः जीवन दुख है तो ज्यादा से ज्यादा दुख को भूलने का उपाय कर लो, इतना काफी है। शराब पी लो तो दुख भूल जाता है, मिटता नहीं। सिनेमा देख लो, एक नर्तकी का नृत्य देख लो, तो थोड़ी देर के लिए दुख भूल जाता है, मिटता नहीं। ये जरा बुरे ढंग के भुलावे हैं। अच्छे ढंग के भुलावे हैंः भजन-कीर्तन करो, झांझ-मजीरा पीटो, नाचो-चिल्लाओ। उसमें भी दुख भूल जाता है, मिटता नहीं है। तो आदमी ने अच्छे और बुरे ढंग के नशे खोजे हैं। क्योंकि हमें एक बात तो पक्की हो गई है कि जीवन में आनंद असंभव है, जीवन में आनंद हो ही नहीं सकता।
मैंने एक कहानी सुनी है, पता नहीं कहां तक सच है। मैंने सुना है, स्वर्ग के एक रेस्तरां में एक दिन तीन बड़े अजीब लोगों का मिलना हो गया। बुद्ध, कनफ्यूशियस और लाओत्से, वे तीनों एक दिन स्वर्ग के एक रेस्तरां में मिल गए। पता नहीं यह कहां तक सच है। पता नहीं किसी पुराण में अभी तक यह बात लिखी गई या नहीं लिखी गई। और जब वे तीनों एक टेबल के किनारे बैठ कर गपशप करने लगे, तो एक अप्सरा हाथ में जीवन-रस को भरे हुए एक कलश ले आई। और उसने बुद्ध के पास आकर कहा, जीवन-रस लाई हूं, चखेंगे?
बुद्ध ने फौरन आंख बंद कर ली। उन्होंने कहा, व्यर्थ है, असार है; कुछ अर्थ नहीं, कुछ सार नहीं। आंख ही बंद कर ली।
कनफ्यूशियस ने आधी आंख खुली रखी, आधी बंद रखी। क्योंकि वह गोल्डन मीन
को मानता था, मध्य, कभी भी एक्सट्रीम पर नहीं जाना। न पूरी आंख खोलना और न पूरी बंद करना। उसने आधी आंख से धीरे से देखा और कहा कि चख कर देख लेता हूं, पीऊंगा नहीं। क्योंकि पीना एक अति हो जाएगी, नहीं चखूंगा तो भी एक अति हो जाएगी। चखे लेता हूं। उसने चखा और कहा, बेस्वाद है।
लाओत्से ने पूरी की पूरी सुराही हाथ में ले ली और पी गया। और जब वह पूरा पी गया तो नाचने लगा। उससे पूछा कि कैसा लगा जीवन? लाओत्से ने कहा, बिना पूरा पीए पता नहीं चल सकता। और बुद्ध से उसने कहा, तुमने आंख ही बंद कर ली, तो तुम्हारा निर्णय सही नहीं हो सकता। क्योंकि बिना जाने आंख बंद कर ली। कनफ्यूशियस से कहा, तुमने सिर्फ चखा। और जब तक जीवन नसों में न पहुंच जाए, खून न बन जाए और रग-रग, रेशे-रेशे में न दौड़ने लगे तब तक पता कैसे चलेगा? जीभ से चखने से कुछ पता चलने वाला है? जीभ तो द्वार है, तुमने द्वार से ही लौटा दिया। और लाओत्से नाच रहा है और वह यह कह रहा है कि पूरे जीवन को पी लो तो जीवन का आनंद उपलब्ध होता है।
लेकिन लाओत्से जैसी बात कहने वाले लोग पृथ्वी पर बहुत कम हुए हैं। पृथ्वी पर जिन लोगों ने शिक्षाएं दीं, वे वे लोग हैं जो जीवन के विरोध में खड़े हैं।
कुछ कारण है, उनके जीवन के विरोध में खड़े होने का भी कुछ कारण है। कारण यही है कि उन्होंने वीणा को संगीत समझ लिया। फिर वीणा से संगीत पैदा न हुआ। उन्होंने कहा, तोड़ दो, किसी मतलब की नहीं है।

लेकिन उन्हें यह ख्याल ही नहीं है कि वीणा संगीत पैदा नहीं करती। वीणा सिर्फ संगीत को पैदा करने के लिए मौका बन सकती है। संगीत उतर सकता है। कुछ और भी करना पड़ेगा।
जीवन को अगर हमने मान लिया कि मिल गया जन्म के साथ, तो भूल हो गई। इस भूल को तोड़ देने की जरूरत है। और अगर यह भूल टूट जाए किसी के जीवन में, तो जीवन में इतना आनंद है कि जिसका हिसाब लगाना और जिसकी गणना करना और जिसे तौलना असंभव है। और जीवन के आनंद को जो अनुभव करता है, वही परमात्मा को भी अनुभव कर पाता है। क्योंकि परमात्मा यानि जीवन की गहराई। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है कि कहीं बैठा है और कभी आपको मिला जाएगा। जीवन की जितनी गहराई में हम उतर जाते हैं, उतना हम परमात्मा के निकट हो जाते हैं। जीवन से जितने दूर हम खड़े रह जाते हैं, उतने ही परमात्मा से दूर रह जाते हैं।
अब यह बड़ी उलटी बात है कि सारे धर्मों ने हमें जीवन से दूर रखा, परिणामतः हमें परमात्मा से भी दूर रखा है। यह बात उलटी मालूम पड़ सकती है कि हमारे सारे महात्मा किसी न किसी अर्थों में परमात्मा के दुश्मन सिद्ध हुए हैं। क्योंकि वे यह कहते हैंः जीवन को जीओ ही मत। जीवन को जीना भी गुनाह है। भागो, जीवन से बचो, एस्केप करो। इसलिए जहां-जहां जीवन हो, वहां- वहां से भाग जाओ। जहां-जहां जीवन में गहरे उतरने का द्वार दिखे, वहां-वहां से भागो, वहां रुकना मत। कहीं जीवन बुला न ले, कहीं जीवन आमंत्रण न दे दे। इसलिए जंगल में भगाया है धर्मों ने, मनुष्यों को मनुष्यों से तोड़ा है, पत्नियों को पतियों से तोड़ा है, बेटों को बाप से तोड़ा है, बाप को बेटों से तोड़ा है, धर्म ने जीवन से तोड़ने के सारे उपाय किए हैं आदमी को।
जब कि मेरी समझ में सच्चा धर्म जीवन से जोड़ेगा, तोड़ेगा नहीं। क्योंकि अगर कहीं कोई परमात्मा है, तो निश्चित ही वह मृत्यु की शक्ल में नहीं हो सकता, वह जीवन की शक्ल में ही हो सकता है। और कहीं अगर कोई परमात्मा है, तो हम उसे अपनी जीवन-धारा की गहराई में उतर कर ही पहचान सकते हैं, अपनी ही नसों में उसे बहता हुआ अनुभव कर सकते हैं, अपनी ही श्वासों में उसे डोलता हुआ अनुभव कर सकते हैं, अपनी ही आंखों से उसे देखता हुआ अनुभव कर सकते हैं और अपने ही हाथों से उसे प्रेम करता हुआ जान सकते हैं। अगर किसी दिन परमात्मा से कोई मिलना होगा, तो वह जीवन की विराट धारा की तरह होता है। वह कहीं बैठे हुए किसी सिंहासन पर... हमने राजाओं की शक्लों में परमात्मा को गढ़ लिया है, बिठा दिया है सिंहासनों पर और मुकुट बांध दिए हैं। कहीं ऐसा कोई परमात्मा नहीं है। ऐसा कहीं कोई परमात्मा नहीं है जो हमें मिल जाएगा और हाथ जा.ेड कर हम उसके द्वार पर खड़े हो जाएंगे और वह हम पर कृपा कर देगा। परमात्मा हमारे भीतर चौबीस घंटे बह रहा है। हम परमात्मा की लहरें हैं। लेकिन लहर अगर गहरे में चली जाए तो सागर हो जाती है, क्योंकि लहर के नीचे सागर मौजूद है। और लहर अगर बाहर ही देखती रहे तो लहर ही रह जाती है, फिर वह सागर नहीं हो पाती।
कभी सागर के किनारे जाकर देखें, तो लहरें दिखाई पड़ती हैं, सागर दिखाई नहीं पड़ता। आपने कभी सागर देखा? नहीं देखा। सागर तो दिखाई पड़ता ही नहीं, लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। लहरें ही दिखाई पड़ती हैं, सागर तो दिखाई पड़ता नहीं; सागर तो गहरे में छिपा है, ऊपर तो लहरें हैं। और लहरें भी अगर देख सकती हों अपने बाहर, तो लहरें भी समझती होंगी--पड़ोस की लहर मुझसे अलग है। क्योंकि जब पड़ोस की लहर उठती है तब मैं गिर रही हूं और जब मैं उठती हूं तब पड़ोस की लहर गिर जाती है, तो हम दोनों एक नहीं हो सकते। पड़ोसी मर जाता है, मैं जिंदा हूं, तो हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं? अभी पड़ोसी जवान है और मैं बूढ़ा हूं, तो हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं? पड़ोसी स्वस्थ है, मैं बीमार हूं, तो हम दोनों एक कैसे हो सकते हैं? अगर एक लहर भी अपने चारों तरफ देखती होगी, तो कोई लहर गिरती है, कोई उठती है, तो कैसे मान सकती है कि ये सब लहरें एक हैं?
नहीं, लहर कभी नहीं मानेगी, लहर नहीं मान सकती कि हम एक हैं। लहर कहेगी, मैं अलग हूं। और लहर अगर सागर को खोजने निकल जाए तो मुश्किल में पड़ जाएगी। वह अगर पूछने लगे चांद-तारों से कि सागर कहां है? पूछने लगे किनारे पर खड़े हुए दरख्तों से, पूछने लगे लोगों से कि सागर कहां है? तो लहर मुश्किल में पड़ जाएगी। क्योंकि सागर लहर के भीतर है, सागर लहर के नीचे है।

बड़े मजे की बात है, सागर तो बिना लहर के हो सकता है, लहर बिना सागर के नहीं हो सकती। लहर सिर्फ एक हिस्सा है, सागर की छाती पर उठ गया हिस्सा है, और कुछ भी नहीं। अभी गिर जाएगा, सागर हो जाएगा।
हम सब भी लहरें हैं अस्तित्व के सागर में; परमात्मा के सागर में हम सब
भी लहरें हैं। कहां खोज रहे हैं हम परमात्मा को? जिसे हम खोज रहे हैं वह हमारे भीतर हर घड़ी मौजूद है। लेकिन धर्मों ने एक झूठा परमात्मा खड़ा किया है, जिसे खोजना पड़ता है। वह हमारे भीतर नहीं, वह हम सबके साथ मौजूद नहीं, वह कहीं दूर है, उसके लिए यात्रा करनी पड़ती है।
निश्चित ही कुछ कारण है। अगर परमात्मा इतना निकट है जितना सागर और लहर, अगर परमात्मा इतना ही निकट है, तो फिर धर्मगुरु की बीच में कोई जरूरत न रह जाएगी। बीच के एजेंट और दलालों को विदा कर देना पड़ेगा। दलाल की जरूरत होती है जब दूर से संबंध बनाने पड़ते हैं। तब बीच में मीडियम की जरूरत पड़ती है। परमात्मा और आदमी के बीच में पुरोहित को खड़े होने की जगह नहीं है, इतनी भी जगह नहीं है। वह लहर और सागर के बीच में कहां पुरोहित को खड़ा करिएगा? वहां कहीं कोई जगह नहीं है। और अगर पुरोहित बीच में खड़ा हो गया, तो सागर और लहर को जोड़ेगा नहीं, तोड़ेगा। अगर बीच में, सागर और लहर के बीच में कोई पुरोहित खड़ा हो गया, तो सिर्फ लहर को सागर से तोड़ेगा, जोड़ेगा नहीं। क्योंकि बीच में कोई भी चीज तोड़ेगी, जोड़ेगी कैसे?
परमात्मा और आदमी के बीच पुरोहित ने तोड़ने वाले का काम किया है, जोड़ने वाले का काम नहीं किया। क्योंकि यहां इतनी ही निकटता है जितनी सागर और लहर की है। लेकिन हम उसे कहीं और खोज रहे हैं। दूर खड़ा किया है। क्योंकि अगर दूर न हो परमात्मा तो कौन पूछेगा मार्ग? अगर दूर न हो परमात्मा तो कौन पूछेगा विधि? कौन पूछेगा साधन? अगर दूर न हो परमात्मा तो गुरु कौन बनाएगा? अगर दूर न हो परमात्मा तो गाइड कौन खोजेगा? परमात्मा को दूर रखना एकदम जरूरी है, अन्यथा बीच से सारा व्यवसाय, सारा धंधा खो जाएगा। पुरोहित का ट्रेड सीक्रेट जो है, उसका जो राज है धंधे का, वह यही है कि परमात्मा को दूर रखो। और परमात्मा निकट है, इसलिए झूठा परमात्मा ही दूर हो सकता है, उसे खड़ा कर लिया गया है। फिर निश्चित ही हजार तरह के पुरोहित हैं, इसलिए हजार तरह के परमात्मा हैं। हिंदू का अपना परमात्मा है, मुसलमान का अपना है, ईसाई का अपना है।
अब परमात्मा भी इतने! इतने प्रकार के!
मैंने सुना है, एक फकीर हुआ, अबी यजीद। वह एक रात सोया। वह रात सोया तो उसने एक स्वप्न देखा। बहुत दिन से चाहा था कि कभी परमात्मा की नगरी में पहुंच जाए, तो वह पहुंच गया। वह परमात्मा की नगरी में पहुंच गया है। बड़े दीये जले हैं, बड़ी रोशनी है, बड़े फुलझड़ी और पटाखे फूट रहे हैं। उसने पूछा कि क्या है? तो किसी ने कहा, आज परमात्मा का जन्मदिन है। उसने कहा, बड़ा अच्छा हुआ। हजारों-लाखों लोग सड़क से निकल रहे हैं। उसने कहा कि परमात्मा की शोभा-यात्रा, प्रोसेशन निकलने वाला है। वह भी किनारे खड़ा हो गया है। सबसे पहले एक बहुत बड़े रथ पर सवार एक बहुत महिमावान व्यक्ति दिखाई पड़ा। उसने पड़ोस में खड़े हुए लोगों से पूछा, क्या यही परमात्मा हैं? तो पड़ोस के लोगों ने कहा, नहीं, ये ईशु मसीह हैं। परमात्मा नहीं हैं ये, ये जीसस क्राइस्ट हैं। और लाखों-करोड़ों लोग जीसस के पीछे हैं और "जीसस जिंदाबाद!" के नारे लगा रहे हैं। फिर वह जुलूस आगे बढ़ गया। पीछे एक और बड़े शानदार रथ पर सवार कोई है, बहुत महिमाशाली। पूछा उसने, ये परमात्मा हैं? तो किसी ने कहा कि नहीं, ये राम हैं। और पीछे हिंदू हैं, वे राम का जय-जयकार कर रहे हैं। और फिर ऐसा ही जुलूस बढ़ता गया, और रात गहरी होने लगी--और बुद्ध भी निकले और महावीर भी निकले और नानक भी निकले और सारे अदभुत लोग निकले और उनके पीछे उनके भक्तों की जमात भी निकली। और फिर रास्ते सुनसान हो गए और देखने वाले लोग चले गए।
उस फकीर ने कहा, लेकिन अभी तक परमात्मा तो निकला नहीं! और तब एक बहुत
ही गरीब से घोड़े पर सवार एक बूढ़ा आदमी निकला। लेकिन अब पूछने को भी कोई न था, उसने उसी बूढ़े आदमी से पूछा कि क्या आप तो परमात्मा नहीं हो? उसने कहा, मैं ही हूं। उस फकीर ने कहा, आपके साथ कोई दिखाई नहीं पड़ रहा? तो उस परमात्मा ने कहा, लोग बंट गए हैं। कुछ राम के साथ हो गए हैं, कुछ कृष्ण के,

कुछ क्राइस्ट के। मेरे साथ कोई भी नहीं है। मैं बिल्कुल अकेला पड़ गया हूं। यह घोड़ा ही मेरे साथ है, यह भी कई बार कहता है कि जाने दो, किसी और की सवारी बन जाने दो। बस यह एक घोड़ा मेरे साथ है, यह भी बहुत बार कहने लगता है, जाने भी दो, कोई आगे-पीछे भी नहीं दिखाई नहीं पड़ता। दूसरे घोड़े बहुत मजा ले रहे हैं, कोई क्राइस्ट का घोड़ा है, कोई राम का घोड़ा है, कोई बुद्ध का घोड़ा है। मुझे जाने दो! यह घोड़ा ही एक है, और तो मेरे साथ कोई भी नहीं है। तुम यहां कैसे खड़े रह गए? बड़ी अनहोनी घटना! तुम यहां खड़े कैसे रह गए?
घबड़ाहट में उस फकीर की नींद खुल गई है और उसको पसीने की बूंदें आ गई हैं, उसकी छाती धड़क रही है। वह भागा हुआ पास-पड़ोस में गया। उसने कहा, मैंने एक बहुत बुरा सपना देखा! जिससे भी उसने कहा, उसी ने कहा कि बड़ा बुरा सपना है। फकीर होकर ऐसे सपने नहीं देखना चाहिए। ये भले आदमी के सपने नहीं हैं। यह क्यों तुमने सपना देखा? तुम तो कम से कम मोहम्मद के आदमी हो, मुसलमान हो, तुम्हें तो कम से कम मोहम्मद के जुलूस में शामिल हो जाना चाहिए था। यह सपना अच्छा नहीं है। तुम रुके ही क्यों परमात्मा के लिए? एक ही परमात्मा है, और उस एक ही परमात्मा का एक ही पैगंबर है--मोहम्मद। तुम उसके साथ क्यों न हो लिए? पता नहीं वह बूढ़ा धोखा तो नहीं दे गया, पता नहीं किस तरह का आदमी था! हमेशा आथेंटिक, बल्कि जिसको कहना चाहिए प्रॉपर चैनल, ठीक-ठीक प्रामाणिक रास्ते से जाना चाहिए था। मोहम्मद से पूछना चाहिए था। तुम सीधे क्यों पूछ लिए उस बूढ़े से? पता नहीं उस बूढ़े ने धोखा न दे दिया हो? पता नहीं वह बूढ़ा कौन था? कभी ऐसा मत जाना, सदा मोहम्मद से पूछ कर जाना। असली परमात्मा की खबर मोहम्मद को है।
वह फकीर बड़ी मुश्किल में पड़ गया। वह जिससे भी पूछा, उसी ने कहा कि तुमने बड़ा गलत सपना देखा।
अगर वह फकीर मुझे मिल जाता तो मैं उससे कहता, तुमने सपना देखा ही नहीं, तुमने सत्य ही देखा। यह सपना नहीं, यह सत्य है।
ऐसे ही आदमी बंट गए हैं और परमात्मा के साथ कोई भी नहीं है। और जिसे परमात्मा के साथ होना है, उसे सब तरह के बंटाव छोड़ देने पड़ेंगे। जिसे परमात्मा के साथ होना है, उसे बीच के पुरोहित को नमस्कार कर लेनी होगी कि आप जाएं। मेरे और उसके बीच कोई फासला नहीं है। और अगर मेरे और उसके बीच फासला है, तो दुनिया की कोई ताकत उस फासले को पूरा कर भी नहीं सकती है। या तो फासला नहीं है। और अगर फासला है तो पूरा होने का कोई उपाय नहीं है। कैसे पूरा करिएगा? अगर परमात्मा और मेरे बीच फासला है तो कैसे पूरा होगा? अगर मेरे और उसके बीच फासला है तो एक ही तरह से हो सकता है कि उसने ही चाहा हो। और अगर परमात्मा ने ही फासला चाहा है तो फासला मिटाना असंभव है। या तो फासला है तो मिटेगा नहीं। और नास्तिक ठीक कहते हैं कि बात छोड़ो परमात्मा की, कोई परमात्मा नहीं है। और या फिर फासला नहीं है, तो आस्तिक गलत कहते हैं कि बीच में पुरोहित को लेना पड़ेगा।
नहीं, फासला नहीं है। हम उसकी ही लहर हैं। असल में परमात्मा शब्द की बात ही बंद कर देनी चाहिए। उसकी बातचीत से ही फासला पैदा हो जाता है। ऐसा लगता है कि कोई दूर, कोई अलग। नहीं, जीवन की धारा का ही वह नाम है, जीवन ही! अच्छा हो कि हम परमात्मा का अब आगे आने वाली दुनिया में नाम लेना बंद कर दें और कहें जीवन। और कहें कि पूरे जीवन को जी लेने की कला धर्म है। और पूरे जीवन को, टोटल, समग्र को जान लेना परमात्मा को जान लेना है।
निश्चित ही अगर ऐसा धर्म विकसित हो तो वह इस पृथ्वी का धर्म होगा। ऐसा धर्म विकसित हो तो वह जीवन की निंदा नहीं करेगा। क्योंकि जीवन को जानना हो तो निंदा नहीं की जा सकती है। और अगर ऐसा धर्म होगा जो जीवन की संगीत और जीवन की वीणा को बजाना चाहेगा, तो निश्चित ही वह जीवन की वीणा को छोड़ कर भाग जाने के लिए, एस्केपिज्म के लिए नहीं कहेगा। असल में अगर दुनिया धार्मिक हो, तो न वहां गृहस्थ होंगे, न वहां संन्यासी होंगे, वहां ऐसे गृहस्थ होंगे जो संन्यासी भी हैं। अगर दुनिया ठीक से धार्मिक हो, तो वहां संन्यासी और गृहस्थ जैसी दो चीजें न होंगी, वहां ऐसे गृहस्थ होंगे जो संन्यासी भी हैं। वहां जीवन ही संन्यास है। वहां जीवन के भीतर, जीवन के बीच और जीवन के पार होने की कला होगी।

लेकिन इस पुरानी दुनिया ने आदमी को दो हिस्सों में इस तरह तोड़ दिया कि जिसको परमात्मा को खोजना है वह जीवन को छोड़ कर जाए। और ध्यान रहे, जो जीवन को छोड़ कर जाएगा, वह परमात्मा को कभी नहीं खोज सकता। और उस पुराने धर्म ने यह भी कहा कि जिसको जीवन में रहना है, वह कभी परमात्मा को न खोज सकेगा। जो छोड़ कर गया, वह खोज न पाया। और जो जीवन को छोड़ कर नहीं गया, वह निराश है। वह कहता है कि जीवन में रहते हुए परमात्मा को कैसे खोज सकेंगे? दोनों स्थितियों में नुकसान हुआ है, दोनों स्थितियों में धर्म की हानि हुई है। अगर हम जगत को धार्मिक देखना चाहते हों--और ध्यान रहे, अगर जगत धार्मिक न हो तो आदमी कभी आनंदित नहीं हो सकता, शांत नहीं हो सकता, संगीतपूर्ण नहीं हो सकता--अगर हम जगत को धार्मिक देखना चाहते हैं, तो हमें धर्म की पूरी परिभाषा बदलनी पड़ेगी। हमें धर्म का पूरा भवन बदलना पड़ेगा। हमें धर्म की बिल्कुल ही एक नये आयाम में, एक नये डायमेंशन में यात्रा शुरू करनी पड़ेगी। ऐसा धर्म जो जीवन-विरोधी नहीं, जीवन को स्वीकार करता है, जीवन का प्रेमी है।
एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात को मैं पूरा करूंगा।
मैंने सुना है, जापान में एक सम्राट था। वह रात अपने घोड़े पर सवार होकर गांव में घूमता रहता। सर्द रातें थीं, ठंड के दिन थे, और बहुत जोर से सर्दी पड़ती थी। घर के बाहर कोई रात में मिलता भी न था। लेकिन एक फकीर एक वृक्ष के नीचे ठिठुरता रहता। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, सम्राट ने खबर लगाई कि यह आदमी कौन है? वजीर खबर लाए कि बहुत अदभुत आदमी है, साधारण आदमी नहीं है। तो सम्राट चौथे दिन उसके पास गया, घोड़े से उतरा और उस फकीर के पैर पड़े और कहा कि बड़ी कृपा होगी, यहां क्यों पड़े हैं? हम पर कृपा करें और महल में चले चलें!
कहा तो उसने यह जरूर, लेकिन अचेतन में, अनकांशस में अपने भीतर वह यही सोच रहा था कि संन्यासी जरूर इनकार कर देगा। क्योंकि संन्यासी की परिभाषा ही यही है कि जो इनकार कर दे। ऊपर से निमंत्रण दिया उसने, लेकिन बहुत गहरे में वह जानता था कि संन्यासी इनकार कर देगा। लेकिन उसे पता न था कि यह संन्यासी बहुत और तरह का संन्यासी है। सम्राट ने यह कहा, उस संन्यासी ने कहा, जैसी मर्जी। उठ कर वह घोड़े पर बैठ गया। अभी सम्राट नीचे ही था। सम्राट के मन में बड़ी शंका और संदेह उठ गया। सम्राट ने सोचा, यह कैसा संन्यासी हुआ! क्योंकि संन्यासी तो वह है जो जीवन को ठुकराए। मैंने कहा, महल में चले चलो। उसने एक बार भी न कहा कि मैं संन्यासी हूं, मैं महल में न जाऊंगा। वह तो बैठ ही गया है घोड़े पर।
मजबूरी थी, निमंत्रण दे दिया था, अब वापस लेना भी बहुत कठिन था। सम्राट को पैदल ही घोड़े की लगाम पकड़ कर महल तक लौटना पड़ा। संन्यासी शान से घोड़े पर बैठा रहा। घर पहुंच गया। सम्राट ने अच्छे से अच्छे भवन में उसे ठहराया, श्रेष्ठतम व्यवस्था की। उसने सब स्वीकार कर लिया। मखमल की गद्दियां थीं, वह विश्राम करने लगा। उस सम्राट ने कहा, कैसे गलत आदमी को मैं निमंत्रण दे आया! क्योंकि संन्यासी तो वह है जो जीवन को ठुकराए। असल में सम्राट इसीलिए तो संन्यासी के चरणों में सिर झुकाता है। क्योंकि सम्राट जिसे नहीं ठुकरा पाता है, उसे इसने ठुकरा दिया है। यह कैसा संन्यासी है?
लेकिन एकदम हिम्मत न पड़ी। छह महीने बीत गए। छह महीने के बाद एक दिन सुबह-सुबह संन्यासी बगीचे में घूमता था, उस सम्राट ने आकर कहा कि महाराज, एक सवाल पूछना है। मन में एक संदेह उठता है।
संन्यासी ने कहा, बड़ी देर लगाई पूछने में! संदेह तो उसी रात उठ गया था।
छह महीने लग गए हिम्मत जुटाने में? बड़े कमजोर आदमी मालूम पड़ते हो। बोलो क्या संदेह है?
उस सम्राट ने कहा, नहीं, संदेह नहीं, ऐसा सवाल मन में बार-बार उठता है
कि अब मुझ में और आप में फर्क क्या रह गया?
उस संन्यासी ने कहा, तो जवाब चाहिए? तो अच्छा हो कि जहां यह संदेह उठा
था हम वहीं चलें।
सम्राट ने कहा, उससे क्या मतलब है?
उसने कहा कि नहीं, वहीं ठीक होगा।

वे चले, गांव के बाहर पहुंचे, वह वृक्ष भी आ गया। सम्राट ने कहा, अब बता दें।
उस संन्यासी ने कहा, थोड़ा और चलें। वैसे मैं बता ही रहा हूं।
सम्राट ने कहा, मैं कुछ समझ नहीं रहा। आप कुछ बोलते नहीं।
उसने कहा, मैं बता ही रहा हूं। उस दिन भी बिना बोले बता दिया था। संदेह मेरे बिना बोले ही उठ गया था। जवाब भी मिल सकता है। जरा नदी पार हो लें।
सम्राट नदी भी पार कर लिया, दुपहर होने लगी, संन्यासी से कहा कि अब बता दें।
उसने कहा, थोड़े और चले चलें।
उसने कहा, लेकिन अब जाना मुश्किल है, मेरे राज्य की सीमा आ गई।
उस संन्यासी ने कहा, लेकिन हमारी कोई सीमा नहीं है। थोड़ा और आगे चलें।
उस सम्राट ने कहा, अब मैं न जा सकूंगा, दुपहर घनी हो रही है, लोग मुझे खोजने लगेंगे।
उस संन्यासी ने कहा, मुझे खोजने वाला कोई भी नहीं है। उसने कहा, थोड़े
और चलें।
सम्राट ने कहा, बस, जवाब देना हो तो दे दें।
उस संन्यासी ने कहा, यही है मेरा जवाब कि अब मैं आगे जाता हूं। मेरे साथ चलते हैं?
सम्राट ने कहा, मैं कैसे चल सकता हूं? मेरा महल, मेरी संपत्ति, मेरी सारी व्यवस्था। मैं कैसे चल सकता हूं?
तो उस संन्यासी ने कहा, फर्क समझ में आया? मैं जा रहा हूं।
उस सम्राट ने फिर पैर पकड़ लिए। उसने कहा, मेरा संदेह मिट गया। कैसे परम ज्ञानी को मैंने खो दिया! छह महीने आपका मैंने कोई सत्संग ही न किया! क्योंकि मैंने सोचा कि आप तो भोगी हैं। चलें वापस!
उस संन्यासी ने कहा, मैं फिर चल सकता हूं, घोड़े पर फिर बैठ सकता हूं, लेकिन संदेह फिर उठ जाएगा। अब तुम मुझे जाने दो। अब तुम मुझे जाने दो। मुझे कोई कठिनाई नहीं है लौटने में। क्योंकि नीम के वृक्ष के नीच जितना परमात्मा के मैं निकट था, तुम्हारे महल की गद्दियों पर जरा भी दूर न हुआ। और भीख मांग कर जब सुबह मैं भिक्षा-पात्र में भोजन लाता था, तब जितना प्रसन्न और आनंदित था, तुम्हारे घर बहुत सुस्वादु भोजन पाकर कुछ दुखी न हुआ। और परमात्मा यहां भी था, परमात्मा वहां भी था। अब तो मैं जहां भी जाऊं, वहीं वही है। और ध्यान रहे कि तुम्हारे महल को मैं इनकार भी कर सकता था, लेकिन परमात्मा के महल को कैसे इनकार करता? तुम समझे कि तुम्हारे महल में ले जा रहे हो। हम समझे कि उसका निमंत्रण आया तो जाना ही पड़ेगा। तुम्हारे घोड़े पर जो सवार हो गया था, तुम्हारे निमंत्रण की वजह से नहीं। तुमने ही कहा होता तो बात ही अलग थी। लेकिन वही कह रहा था, उसने ही बुलाया था, तो चले गए। अब आज वही कह रहा है कि अब जाओ, जवाब दो, दूर होकर बताओ कि फासला क्या है, तो अब हम जाते हैं।
एक ऐसा धर्म चाहिए जो जीवन के बीच संन्यास को संभव बना दे। यह हो सकता
है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। मनुष्य के मन को नई दिशा देने की बात है। कहीं कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन हजारों साल की गलत शिक्षा तोड़नी जरूरी हो गई है। अतीत ने जो हमें सिखाया है उसे छोड़ना पड़े, ताकि भविष्य में जो हम सीख सकें उसका जन्म हो सके। अतीत की धूल से मुक्त हो जाना जरूरी है, ताकि भविष्य के नये सूरज हमें दिखाई पड़ने लगें।
आदमी को इतने दुख में डालने का कारण है, जीवन की वीणा से संगीत पैदा नहीं हो सका। जीवन की वीणा से बहुत संगीत पैदा हो सकता है, लेकिन जीवन को स्वीकार करना पड़े और जीवन को मानना पड़े कि बहुत आनंद छिपा है वहां। एक बार यह हमारे मन का भाव हो जाए कि जीवन में आनंद छिपा है, तो जीवन से आनंद का फूट पड़ना कठिन नहीं है। लेकिन अगर हमने मान ही रखा हो कि जीवन में आनंद के कोई झरने नहीं हैं, तो फिर जीवन के झरने सूख जाते हैं।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। हो सकता है कोई बात ठीक लग जाए। जरूरी नहीं है। हो सकता है कोई बात आपके मन के किसी कोने में छिपे किसी तार को छू ले। हो सकता है आप जीवन की कला को खोजने में लग जाएं। हो सकता है जीवन की वीणा को रखे न बैठे रहें। और किसी दिन उससे कोई संगीत पैदा हो सके। तो

प्रभु के मंदिर में वही संगीत पहली प्रार्थना बनता है, जो हम अपनी जीवन की वीणा पर बजाते हैं। बाकी कोई संगीत उसकी प्रार्थना नहीं है। जीवन की वीणा पर जो संगीत हम पैदा कर देते हैं, वही प्रभु के मंदिर की प्रार्थना बनता है।
ये थोड़ी सी बातें इसी आशा में कहीं कि शायद, शायद कुछ पता नहीं, बीज पड़ जाता है भूमि में, वर्षों बीत जाते हैं, फिर कभी वर्षा आती है, बूंदें पड़ती हैं और बीज अंकुरित हो जाता है। कुछ बातें मैंने कहीं, हो सकता है कोई बीज कहीं पड़ जाए। किसी दिन प्रभु की वर्षा हो, कुछ अंकुरित हो जाए।

धर्म साधना के सूत्र
दसवां प्रवचन

प्रेम ही परमात्मा है

सागर के तट पर एक मेला भरा था। बड़े-बड़े विद्वान इकट्ठे थे उस सागर के किनारे। और स्वभावतः उनमें एक चर्चा चल पड़ी कि सागर की गहराई कितनी होगी? और जैसी कि मनुष्य की आदत है, वे सब सागर के किनारे बैठ कर विवाद करने लगे कि सागर की गहराई कितनी है? उन्होंने अपने शास्त्र खोल लिए। उन सबके शास्त्रों में गहराई की बहुत बातें थीं। कौन सही है, निर्णय करना बहुत मुश्किल हो गया। क्योंकि सागर की गहराई तो सिर्फ सागर में जाने से पता चल सकती है, शास्त्रों के विवाद में नहीं, शब्दों के जाल में नहीं। विवाद बढ़ता गया। और जितना विवाद बढ़ा, उतना निर्णय मुश्किल होता चला गया। असल में निर्णय लेना हो तो विवाद से बचना जरूरी है। निर्णय न लेना हो तो विवाद से ज्यादा सुगम और कोई रास्ता नहीं।
लेकिन भूल से उस मेले में दो नमक के पुतले भी पहुंच गए थे। उन्होंने
उन विवाद करने वाले लोगों को कहा कि रुको, हम कूद कर पता लगा आते हैं कि सागर कितना गहरा है। लेकिन उन विवादियों ने कहा, सागर में जाने की जरूरत क्या है जब कि शास्त्र हमारे पास हैं और शास्त्रों में गहराई लिखी है! और हमारे शास्त्र में ईश्वर ने लिखी है। और सभी के शास्त्रों का ख्याल था कि उनके शास्त्र ईश्वर ने लिखे हैं। लेकिन फिर भी एक नमक का पुतला कूद गया। तो वह सागर में गया-- गहरे, और गहरे, और गहरे। लेकिन जितना गहरा गया, उतना एक नई मुश्किल शुरू हो गई। गहराई का तो पता चलने लगा, लेकिन पुतला मिटने लगा। नमक का पुतला था, पिघलने लगा। फिर गहराई में पहुंच भी गया, लेकिन तब लौटने का कोई उपाय न बचा। वह तो पिघल कर पानी हो चुका था। वह तो नमक का पुतला था, सागर में खो गया। सागर की गहराई जान ली, लेकिन बताए कैसे? सागर की गहराई ही नहीं जानी, सागर के साथ एक हो गया। और जब तक कोई एक न हो जाए, तब तक गहराई जान भी कैसे सकता है? लेकिन बताए कैसे?
सागर के तट के लोगों ने कहा, हमने पहले ही कहा था, शास्त्र में खोजना चाहिए। सागर में और भी कई लोग पहले कूद कर खो चुके हैं, गहराई की कोई खबर नहीं लाता। शास्त्र ही अच्छे हैं, कोई खोता तो नहीं। शास्त्र को पढ़ो, विवाद करो, निर्णय करें। पहले ही कहा था, वह नमक का पुतला पागल था।
वे फिर अपने विवाद में पड़ने लगे, तो उसके दूसरे मित्र ने, नमक के दूसरे पुतले ने कहा, थोड़ा रुको। मैं अपने मित्र को खोज लाऊं। तो दूसरा पुतला मित्र को खोजने गया। मित्र तो नहीं मिला, खुद ही खो गया। हालांकि खुद के खोते ही मित्र मिल गया। मित्र मिलता ही तब है जब कोई खुद को खोने की क्षमता जुटा लेता है। उसके पहले कोई मित्र मिलता नहीं। मित्रता का अर्थ ही खुद का खोना है। खो गया, मित्र भी मिल गया, सागर भी मिल गया, गहराई भी पता चल गई। और सुना है मैंने कि वे दोनों लहरों-लहरों में चिल्लाने लगे कि ऐसी है गहराई! ऐसी है गहराई!
लेकिन वे तट पर बैठे हुए लोग अपने शास्त्रों में फिर खो चुके थे। वे अपने शास्त्रों की फिर बात कर रहे थे। लहरों की कौन सुने! सागर की कौन सुने! बल्कि कई बार वे पंडित कहते थे, इन सागर की लहरों के शोरगुल के कारण हमारे विवाद में बड़ी बाधा पड़ती है। अच्छा हो कि हम सागर से जरा दूर चले चलें और वहां हम अपने शास्त्रों में विवाद करें। यहां सागर बड़ी बाधा डालता है। सागर, जो कि कह रहा था कि गहराई कितनी है! सागर, जो कि बुलाता था कि आओ और जान लो! उन पंडितों ने कहा, हटो इस सागर से, शोरगुल मचाता है, हमारे विवाद में बाधा पड़ती है। सागर की गहराई का पता लगाने के लिए वे बेचारे सागर के तट को छोड़ कर दूर चले गए। मैंने सुना है, अब भी वे अपने शास्त्रों को खोल कर विवाद कर रहे हैं। वे सदा करते रहेंगे।
पंडित सदा शास्त्र को खोल कर ही बैठे-बैठे समाप्त हो जाता है। उसे सत्य का कभी कोई पता नहीं लगता। पापी भी पहुंच जाते हैं सत्य तक, पंडित नहीं पहुंच पाते। क्योंकि पापी विनम्र तो होता है कम से कम। रो तो सकता है परमात्मा के सामने, डूब तो सकता है परमात्मा में। दीन तो होता है, असहाय तो

होता है, गिड़गिड़ा तो सकता है, घुटने तो टेक सकता है। पंडित का अहंकार भारी है, पंडित का अहंकार चुनौती दे सकता है, विवाद कर सकता है, लड़ सकता है, लेकिन परमात्मा तक कभी भी नहीं पहुंच सकता। सुना नहीं ऐसा कि कोई पंडित कभी परमात्मा के पास पहुंच गया हो। और अगर कभी पहुंचा होगा तो जाकर उसने पहले तो परमात्मा को चुनौती दी होगी कि गलत हो तुम, हमारे शास्त्र में और ढंग से लिखा है।
मैं आपसे कहना चाहूंगा, परमात्मा को जानना हो तो पंडित से बचना। पंडित से बड़ा शत्रु नहीं है परमात्मा के रास्ते पर। वह पंडित किसका है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हिंदू का है, मुसलमान का है, सिक्ख का है, जैन का है, ईसाई का है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। पंडित पंडित है। सारे पंडित एक जैसे हैं। उनकी किताबें अलग होंगी, उनके शब्द अलग होंगे, उनके सिद्धांत अलग होंगे, लेकिन पंडित का मन, वह जो पंडित का माइंड है, वह सदा एक सा है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह शब्दों पर जीता है, सिद्धांतों पर जीता है, सत्यों से दूर रहता है। क्यों? क्योंकि सत्य की पहली मांग यह है कि अपने को मिटाओ तो आओ। और पंडित अपने को मिटाने को कभी राजी नहीं। पंडित कहता है कि मेरे पास जो है वह है सत्य। और सत्य की मांग है कि मिटो तुम, आओ मेरे पास, तो ही सत्य को जान सकते हो। पंडित सत्य को अपने बगल में खड़ा करता है। जिसे सत्य को जानना हो, उसे खुद ही सत्य के बगल में जाकर खड़ा होना पड़ता है। सत्य को अपने बगल में खड़ा नहीं किया जा सकता। सत्य को मुट्ठी में नहीं बांधा जा सकता। सत्य का कोई दावा नहीं किया जा सकता। और न ही सत्य के लिए कोई विवाद संभव है, और न सत्य के लिए कोई शास्त्रार्थ संभव है। असल में सत्य के लिए तर्क की कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन पंडित तर्क का भरोसा रखता है। वह कहता है, तर्क करेंगे और सत्य को खोज लेंगे।
तो उसका भरोसा ऐसा ही है जैसा मैंने सुना है--एक बाउल फकीर हुआ है। एक छोटे से गांव में से गुजरता था अपना तंबूरा बजाता हुआ। लोगों से कहता था कि प्रेम ही परमात्मा है। लोगों से कहता था, परमात्मा तक जाना हो तो प्रेम में डूब जाओ।
एक वैष्णव पंडित उसके पास गया और उस वैष्णव पंडित ने कहा, प्रेम कितने प्रकार का होता है, पता है?
उस बाउल फकीर ने कहा कि सुनो, यह भी मजे की बात! प्रेम के भी कहीं कोई प्रकार होते हैं? या तो प्रेम होता है या नहीं होता। प्रेम के कोई प्रकार होते हैं?
लेकिन उस पंडित ने कहा, नासमझ, फिर तूने शास्त्र नहीं पढ़े। हमारे शास्त्र में पांच प्रकार लिखे हुए हैं। तो सुन, हम तुझे शास्त्र से सुनाते हैं। उसने शास्त्र से अपना पन्ना खोला, पढ़ कर सुनाया कि प्रेम के पांच प्रकार होते हैं। सारे तर्क और दलीलें दीं कि प्रेम इतने प्रकार का होता है, इतने प्रकार का होता है। जब सारी दलीलें समझा चुका तो बंद किया शास्त्र को और पूछा उस फकीर से, कैसा लगा?
तो वह फकीर फिर नाचने लगा अपने तंबूरे को बजा कर। उसने कहा, ऐसा लगा-- उसने एक गीत गाया। वह गीत बहुत अदभुत था। उसने अपने गीत में कहा कि मुझे ऐसा लगा, जैसा एक बार एक माली को लगा था, जो अपने एक सुनार मित्र को फूलों को देखने बुला लाया था। एक माली के बगीचे में फूल आए थे गुलाब के, जुही के, चंपा के। मित्र था एक सुनार, कहा कि कभी आओ, फूल खिले हैं। मित्र ने कहा, आऊंगा। लेकिन साथ में सोने के कसने का पत्थर भी ले आया। वह फूलों को कस-कस कर देखने लगा। उसने एक-एक फूल कस कर फेंका। कहा, सब झूठा है, कोई सच्चा नहीं, कसौटी पर कोई उतरता नहीं। तो उस फकीर ने कहा कि जैसा उस दिन उस माली को लगा था--सोने के कसने के पत्थर पर फूल को कसते हो! ऐसा ही आज मुझे लगा-- प्रेम को और तर्क के प्रकारों पर कसते हो! ऐसा ही लगा जैसा उस माली को लगा था।
परमात्मा से तर्क का कोई संबंध नहीं है। बुद्धि वहां नहीं जाती। वहां जाता है हृदय, वहां जाता है प्रेम। और प्रेम को कैसे विवाद से तय करें? प्रेम को कैसे निर्णय करें? प्रेम को तो जाना जा सकता है, प्रेम को जीया जा सकता है, प्रेम में डूबा जा सकता है। परमात्मा को पाया भी जा सकता है,

लेकिन परमात्मा की दावेदारी नहीं की जा सकती। क्योंकि दावेदारी बुद्धि का काम है और पाना हृदय का काम है।
इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। इस बात को बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। आंख से हम देखते हैं, कान से नहीं देखते। और अगर कान को कभी तय करना पड़े कि प्रकाश है या नहीं, तो कान क्या करेगा? कान बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। यही होगा कि वह कहेगा, नहीं, कोई प्रमाण नहीं है, कभी मैंने प्रकाश को बजते नहीं सुना। कान कहेगा, बजे तो मैं जानूं। क्योंकि कान सिर्फ ध्वनियों को जान सकता है।
आंख को अगर कभी ध्वनि को जानने के लिए मौका पड़ जाए और अगर कान कभी आंख
से कहे कि ध्वनि सुनी है कभी? सुना है कभी सितार? आंख कहेगी, कैसी झूठी बात करते हो, मैंने कभी संगीत का दर्शन नहीं किया! और जब तक दर्शन न हो, तब तक मैं कैसे मान लूं? आंख इनकार कर देगी।
आंख की अपनी दुनिया है जानने की, कान की अपनी दुनिया है जानने की। ऐसे
ही बुद्धि की अपनी दुनिया है जानने की, हृदय की अपनी दुनिया है जानने की। बुद्धि की दुनिया से हृदय की दुनिया का कोई भी संबंध नहीं।
लेकिन लोग परमात्मा को सिद्ध करने के लिए दलीलें देते हैं। इस दुनिया में दो तरह के नास्तिक हैं। एक वे जो कहते हैं, ईश्वर है, हम सिद्ध करके बता देंगे। जैसे कि उनके सिद्ध करने पर ईश्वर का होना निर्भर है। जैसे ये सिद्ध न करेंगे तो बेचारा ईश्वर नहीं हो जाएगा। अगर ये कहीं चूक गए, भूल-चूक हो गई, ईश्वर मरा। इनके तर्क पर निर्भर है उसका होना! एक वे हैं जो कहते हैं, हम सिद्ध कर देंगे कि ईश्वर है। इन्हीं के ही उत्तर में दूसरा नास्तिक पैदा हुआ है। वह कहता है, हम सिद्ध कर देंगे कि ईश्वर नहीं है। और असल में सिद्ध करने वाला ही ईश्वर को कभी नहीं पा सकता--चाहे वह पक्ष में सिद्ध करता हो, चाहे विपक्ष में सिद्ध करता हो। क्योंकि सिद्ध होता है बुद्धि से और अनुभव होता है हृदय से। हृदय से कुछ सिद्ध नहीं होता। हृदय से कुछ भी सिद्ध नहीं होता।
इसलिए जिन्होंने परमात्मा को जाना है, वे वे लोग नहीं हैं जो कहते हैं
कि हम सिद्ध कर देते हैं। जिन्होंने परमात्मा को नहीं जाना, वे लोग हैं जो कह रहे हैं कि हम सिद्ध कर देंगे। और इन्हीं नासमझों ने, ईश्वर को सिद्ध करने वाले पंडितों ने, नास्तिक पैदा किए हैं। नहीं तो नास्तिक कभी पैदा नहीं होते। ध्यान रहे, जब कोई बहुत जोर से कहेगा, ईश्वर है और सिद्ध करेगा, तो सब तरह के तर्क खंडित किए जा सकते हैं। ऐसा कोई भी तर्क नहीं है जो खंडित न किया जा सके। तर्क दुधारी तलवार है, वह एक ही साथ दोनों तरफ काटती है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, सिर्फ कुशल आदमी चाहिए, तर्क कुछ भी सिद्ध करता है। और तर्क जिसको सिद्ध करता है, उसको असिद्ध भी कर सकता है।
मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ा तार्किक हुआ यूनान में। उसने एक स्कूल खोल रखा था। उस स्कूल में वह लोगों को तर्क करना सिखाता था--कैसे तर्क करें? वह इतना कुशल शिक्षक था कि वह अपने विद्यार्थियों से आधी फीस तो पहले दिन लेता था और आधी फीस, कहता था, जिस दिन तुम तर्क में किसी से विवाद जीत जाओ उस दिन दे देना। और भरोसा इतना पक्का था कि उसका विद्यार्थी सदा जीत जाता है। इसलिए आधी फीस वह बाद में ले लेता था।
एक युवक स्कूल में आया, उसने आधी फीस चुका दी और उसने अपने गुरु से कहा
कि ध्यान रखिए, आधी फीस मैं कभी नहीं चुकाऊंगा। उसके गुरु ने कहा, जब तुम तर्क कहीं भी जीतोगे तो आधी फीस तुम्हें चुकानी पड़ेगी। और बिना जीते तुम रह नहीं सकते, क्योंकि मैं तुम्हें ऐसी कला सिखा रहा हूं। उसने कहा, मैं कोई विवाद ही नहीं करूंगा। मगर आधी फीस नहीं चुकाऊंगा। लेकिन गुरु ने कहा, फिकर मत करो। जो तर्क का इतना बड़ा गुरु है, वह तुमसे फीस भी निकाल ही लेगा। लेकिन वर्ष पर वर्ष बीतने लगे, वह आधी फीस नहीं आई। क्योंकि उस युवक
ने कोई तर्क ही न किया। यहां तक कि कोई अगर दिन को भी कहता कि रात है, तो वह कहता, है। क्योंकि कौन झंझट करे? अगर कहे कि दिन है और तर्क हो जाए और जीत जाए तो गुरु की फीस चुकानी पड़े। गुरु भी परेशानी में पड़ गया, क्योंकि वह विवाद ही नहीं करता था। वह जो भी उससे जो कहता, वह कहता कि बिल्कुल राजी हूं, यही है, इसमें इंच भर फर्क नहीं है। आखिर गुरु ने उस पर अदालत में एक मुकदमा चलाया। और मुकदमे में उसने यह कहा कि इस लड़के ने आधी फीस मेरी नहीं

चुकाई है, यह आधी फीस मुझे वापस चाहिए। क्योंकि उसके गुरु ने कहा कि अगर अदालत कह देगी कि आधी फीस लेने के तुम हकदार नहीं, क्योंकि तुम्हारा विद्यार्थी अभी कोई तर्क नहीं जीता। तो मैं उससे वहीं फीस मांगूंगा कि पहला मुकदमा तू जीत गया मेरे खिलाफ, फीस वापस लौटा दे। अगर मैं हार गया तो भी वापस ले लूंगा फीस। और अगर मैं जीत गया तो अदालत से कहूंगा कि फीस दिलवा दे। और अगर हार गया तो विद्यार्थी से कहूंगा, तू जीत गया पहला मुकदमा, मुझे फीस दे दे।
लेकिन उसे पता नहीं कि विद्यार्थी भी उसी से सीखा था। उसने कहा, चलाओ मुकदमा। अगर मैं जीत जाऊंगा, तो मैं अदालत से कहूंगा कि अब मैं फीस नहीं दे सकता, आप मेरी रक्षा करें। और अगर मैं हार जाऊंगा, तो मैं कहूंगा, पहला ही मुकदमा हार गया, अब फीस कैसी? पहली ही लड़ाई हार गया!
तर्क दुधारी तलवार है, वह दोनों तरफ काम करता है। इसलिए तर्क से दुनिया में न कुछ सिद्ध होता है, न कुछ असिद्ध होता है। तर्क सिर्फ खिलवाड़ है, जिम्नेस्टिक है। जिन लोगों को कुछ काम नहीं है, बैठ कर बुद्धि से खेल करते रह सकते हैं। ताश के पत्तों का खेल है, बनाओ और मिटाओ। इसलिए दुनिया में आज तक कोई तर्क जीत नहीं पाया। न हिंदू का, न मुसलमान का, न ईसाई का, न जैन का, न बौद्ध का, किसी का तर्क जीत नहीं पाया। कोई तर्क नहीं जीत सकता, क्योंकि उससे उलटा तर्क दिया जा सकता है।
परमात्मा तर्क का खेल नहीं है। परमात्मा कुछ और दिशा है।
मुझसे लोग आकर कहते हैं--दो दिन से आया हूं--मुझसे लोग आकर कहते हैं कि
आप दस्तखत करके दे दें कि ईश्वर है या नहीं, आप क्या मानते हैं?
मैंने उनसे कहा कि मैं ईश्वर का सर्टिफिकेट देने वाला कौन हूं? और मेरे हां कहने से वह हो जाएगा? और मेरे न कहने से नहीं हो जाएगा? तो बड़ा कमजोर है। जिसको मेरी गवाही की जरूरत पड़ती हो, ऐसे ईश्वर का कोई मतलब नहीं है। फिर मैं कौन हूं? मैं कौन हूं जो उसके लिए हां और न कहूं? और ईश्वर के लिए कभी भी, जो जानता है, वह हां नहीं कह सकेगा कि है। क्यों? क्योंकि जिसे भी हम कह सकते हैं है, उसी को कह सकते हैं जो नहीं है भी हो सकता हो। हम कह सकते हैं टेबल है, क्योंकि कल टेबल नहीं हो सकती है। हम कह सकते हैं आदमी है, क्योंकि कल आदमी नहीं था और कल फिर नहीं हो सकता है। जो भी है, उसके नहीं होने की संभावना है। इसलिए ईश्वर को है कभी भी नहीं कह सकते, क्योंकि उसके नहीं होने की कोई संभावना नहीं है। वह "नहीं" कभी नहीं हो सकता, इसलिए है कहना बहुत खतरनाक है। है कहने में खतरा छिपा है। इसलिए जो भी जोर से कहेगा--है, वह नहीं है को निमंत्रण भिजवा रहा है। कोई न कोई कहेगा--नहीं है। अगर आस्तिक नासमझी छोड़ दे, तो नास्तिक की नासमझी आज छूट जाए।
लेकिन आस्तिक अपनी नासमझी दोहराए चले जाता है। वह कहता है, हम सिद्ध करेंगे। तो नास्तिक के मन में भी जोश पैदा करता है, वह कहता है, हम भी सिद्ध कर देंगे कि नहीं है। और एक नास्तिक को आस्तिक अभी तक सिद्ध नहीं करवा पाया कि है और न करवा पाएगा।
उसका कारण है। उसका कारण है कि है ईश्वर के संबंध में इररेलेवेंट है। ईश्वर के संबंध में है नहीं कहा जा सकता, असंगत है। क्यों? क्योंकि है ईश्वर का गुण नहीं है। है और ईश्वर का एक ही मतलब होता है, वे पर्यायवाची हैं। ऐसा कहना कि गॉड इ.ज, ईश्वर है, पुनरुक्ति है। क्योंकि जो है उसी का नाम ईश्वर है। ईश्वर है, इसमें दोनों एक ही बातें हैं। है का मतलब भी ईश्वर होता है और ईश्वर का मतलब भी है होता है। इसलिए ईश्वर है कभी भी नहीं कहा जा सकता। जो है वही ईश्वर है, तो ईश्वर है कभी भी नहीं कहा जा सकता। यह रिपीटीशन है, यह पुनरुक्ति है।
तो मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप लिख कर दे दें, ईश्वर है या नहीं? अगर वे ज्यादा जिद्द ही करें, तो है तो बिल्कुल नहीं कहा जा सकता। लेकिन उनकी जिद्द तोड़ने को जरूर कहा जा सकता है कि नहीं है। उसके कारण हैं।
मैंने सुना है, एक दिन बुद्ध एक गांव में प्रविष्ट हुए। और गांव के द्वार पर ही एक आदमी ने पूछा, ईश्वर है? मैं आस्तिक हूं। आप क्या कहते हैं? बुद्ध ने कहा, बिल्कुल नहीं है। कौन ने कहा तुमसे? पागल हो गए हो? कैसा ईश्वर? देखा है कभी?

वह आदमी बहुत घबड़ा गया। बुद्ध आगे बढ़े। दोपहर को एक दूसरा आदमी आया मिलने और उसने कहा, मैं नास्तिक हूं और मैं मानता हूं ईश्वर नहीं है। आपका क्या ख्याल है?
बुद्ध ने कहा, ईश्वर नहीं है? पागल हो गए हो? ईश्वर के सिवाय तो कुछ है
ही नहीं, वही है। किसने तुमसे कहा ईश्वर नहीं है? उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। जो भी है, वही है।
लेकिन बुद्ध के साथ एक भिक्षु था, वह मुश्किल में पड़ गया, उसने दोनों उत्तर सुन लिए। उसने सुबह भी सुन लिया था कि नहीं है। दोपहर को सुना कि है। वह बहुत घबड़ाया। उसने कहा, यह तो मुसीबत हो गई। यह बुद्ध कैसा आदमी है! सांझ, उसने कहा, जब लोग छंट जाएंगे, तब पूछ लूंगा।
लेकिन सांझ तक मुश्किल कम न हुई, और बढ़ गई। सांझ को एक तीसरा आदमी आया
और उसने कहा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। आपका क्या ख्याल है?
बुद्ध चुप रह गए। उन्होंने कहा, मेरा कोई ख्याल ही नहीं है।
रात जब सोने लगे तो उस भिक्षु ने कहा, सुनिए अभी सो मत जाइए। मैं सो न पाऊंगा रात भर। मुझे मुश्किल में डाल दिया। सुबह कहते हैं, नहीं है। दोपहर कहते हैं, है। सांझ कहते हैं, कुछ भी नहीं कहूंगा, चुप रह जाता हूं। आप मेरे प्राण लेना चाहते हैं? मैंने तीनों उत्तर सुन लिए, सही क्या है?
बुद्ध ने कहा, तुझे तो एक भी उत्तर न दिया गया था, तूने सुना क्यों? जिनको उत्तर दिए गए थे, उनके लिए थे। तू क्यों बीच में आया? तूने क्यों सुना?
उसने कहा, लेकिन मेरे पास कान हैं, मैं मौजूद था, मुझे सुनाई पड़ गया।
अब मैं बहुत मुश्किल में पड़ गया हूं। सही क्या है?
बुद्ध ने कहा, सही सिर्फ एक बात है। सुबह जो आदमी आया था, वह आस्तिकता
से भरा हुआ था। विश्वास से भरा हुआ था कि ईश्वर है। पता नहीं था उसे, अन्यथा मुझसे पूछता नहीं। पूछता सिर्फ वही है जिसको पता नहीं है।
मेरे पास जो आते हैं पूछने कि ईश्वर है या नहीं? उनको बेचारों को पता नहीं है। दूसरों से पूछते फिर रहे हैं। सर्टिफिकेट, गवाही लेते फिर रहे हैं। उनको खुद को कुछ पता नहीं है। पता होता तो मैं उनके पास पूछने जाता, वे मेरे पास क्यों पूछने आएं?
बुद्ध ने कहा, वह जो आदमी सुबह आया था, उसे पता बिल्कुल नहीं है। वह सिर्फ मेरी गवाही मांग रहा था। उसका अंधा विश्वास है, उसका ख्याल है, मान लिया है कि ईश्वर है। वह चाहता था बुद्ध भी कह दें कि है, तो उसकी हिम्मत और बढ़ जाए, उसका अंधापन और गहरा हो जाए। तो मैं उसका अंधापन गहरा नहीं कर सकता था। मैंने कहा, नहीं। क्योंकि मैं आदमी का अंधापन तोड़ना चाहता हूं। दोपहर जो आदमी आया था, उसने बिना जाने मान लिया था कि ईश्वर नहीं है। वह मेरी गवाही चाहता था कि बुद्ध भी कह दें नहीं है, तो पक्का हो जाए अपनी जड़ता में। मुझे उसकी भी जड़ता तोड़नी थी। तो मैंने कहा, है। सांझ जो आदमी आया था, अभी उसकी कोई भी जड़ता नहीं थी। उसे पता ही नहीं था कि है या नहीं। तो मैंने उससे कहा, मैं कुछ न कहूंगा, चुप रह जाऊंगा। और तुझसे भी कहता हूं, बिल्कुल चुप रह जा, तो तू जान लेगा--है या नहीं।
मेरे साथ भी मित्रों को तकलीफ पड़ती है, वे मेरी बात नहीं समझ पाते। उनको कठिनाई जो हो जाती है वह यह कि वे गवाहियां ढूंढ रहे हैं अपने अंधे विश्वासों के लिए, अपनी अंधी धारणाओं के लिए गवाहियां ढूंढ रहे हैं। वे चाहते हैं मैं भी गवाही दे दूं उनकी, उनके अहंकार को मैं भी पुष्टि दे दूं।
मैं कह दूं कि बिल्कुल ठीक आप मानते हो।
मैं आखिरी आदमी हूं जमीन पर जो किसी से कहूंगा कि आप ठीक मानते हो।
असल में मानना कभी ठीक होता ही नहीं। मानना ही गलत होता है। इसे समझ लें।
ठीक मानना और गलत मानना, ऐसा नहीं होता। मानना ही गलत होता है। जानना ठीक होता है, मानना गलत होता है। मानने का मतलब ही है कि अंधे हैं हम, मान लिया है। आंख वाला सूरज को मानता नहीं, जानता है। अंधा आदमी मानता है कि होगा।
अंधा आदमी जानता नहीं।
हम परमात्मा की तरफ अंधों की तरह व्यवहार कर रहे हैं, आंख वाले की तरह नहीं। माने हुए बैठे हैं कि है। कोई माने हुए बैठा है कि नहीं है। इन दोनों

में फर्क नहीं है। इनके अंधेपन में फर्क है, इनके मानने में कोई फर्क नहीं है। आस्तिक भी अंधे हैं, नास्तिक भी अंधा है।
धार्मिक आदमी न आस्तिक होता, न नास्तिक होता। धार्मिक आदमी अंधा नहीं होता। धार्मिक आदमी आंख खोल कर देखता है। और जब देखता है तो वह जो पाता है, वह इतना विराट है कि न हां में समाता, न न में समाता। वह इतना विराट है कि न आस्तिक कह पाता, न नास्तिक निषेध कर पाता। वह इतना विराट है कि सारी दुनिया के धर्म चिल्लाते रहते हैं, लेकिन उसका छोर भी पता नहीं चल पाता। वह इतना विराट है कि आदमी सब तरफ से खोजता है, खोजते-खोजते खुद खो जाता है, उसको पूरा बांध नहीं पाता। जो जानता है इसलिए वह हां और न से चुप्पी साध जाएगा।
मुझसे कोई पूछता है, है या नहीं?
मुझसे मत पूछें। जीवन में आंख खोल कर देखें। होगा तो जरूर मिल जाएगा। नहीं होगा तो यह पता चल जाएगा कि नहीं है। लेकिन हम अजीब लोग हैं। हम छपे अक्षर के बड़े अंधे भक्त हैं। हम जिंदगी को न देखेंगे, हम किताब को देखेंगे और मान लेंगे।
रामकृष्ण कहते थे कि एक आदमी उनके पड़ोस में रहता था। उसके पड़ोस में किसी के मकान में आग लग गई। वह सुबह-सुबह रामकृष्ण से मिलने आया था, तो रामकृष्ण ने पूछा कि मैंने सुना है कि रात तुम्हारे पड़ोस में आग लग गई? उसने कहा, पता नहीं, मैंने सुबह अखबार में देखा, अखबार में तो कुछ खबर नहीं।
तो रामकृष्ण कहते थे, मजेदार आदमी है! पड़ोस में आग लगी, उसने सुबह अखबार में देखा कि लगी कि नहीं। पड़ोस में न देख सका जाकर आग, अखबार में देखा। उसने कहा, अखबार में खबर छपती तो पता चलता कि है या नहीं।
छपे अक्षर के लिए हम बिल्कुल पागल हैं। परमात्मा चारों तरफ मौजूद है, लेकिन हमें छपे अक्षर में चाहिए किताब में कि है या नहीं। किसी की किताब में लिखा है, नहीं है; किसी की किताब में लिखा है, है। अब बड़ा मुश्किल है। किताबें आदमियों को लड़ा रही हैं। जड़ किताबें जिंदा आदमी को लड़ा रही हैं। मरीमराई किताबें जिंदा आदमी को कटवा रही हैं। जिनका कोई मूल्य नहीं है, चार आने में बाजार में बिकती हैं, उनके पीछे लाखों आदमी जिंदा मर जा सकते हैं। आश्चर्यजनक है यह!